GREEN SKILL DEVELOPMENT PROGRAMME (GSDP)

Certificate Course in
Plantation Techniques and Utilization
of Renewable Energy in Arid Zone

GOVERNMENT OF INDIA

**MINISTRY OF ENVIRONMENT,
FOREST AND CLIMATE CHANGE (MoEF&CC),
NEW DELHI**

शुष्क क्षेत्र में वृक्षारोपण तकनीकें और नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग

जय प्रकाश सिंह

राकेश शरण त्रिपाठी

सुरेन्द्र पूनिया

अर्चना वर्मा

तीर्थ दास

संगीता गोयल

मयूर भाटी

मरूस्थलीय पर्यावरण सूचना केन्द्र

भा.कृ.अ.नु.प. - केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान

जोधपुर 342003 (राज.)

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
जोधपुर - 342 003 (राजस्थान), भारत
ICAR-Central Arid Zone Research Institute
(Indian Council of Agricultural Research)
Jodhpur - 342 003 (Rajasthan), India

डॉ. ओम प्रकाश यादव
निदेशक
Dr. O.P. Yadav
Director

प्राक्कथन

भारत का शुष्क क्षेत्र देश के भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 12% है। शुष्क क्षेत्रों में पेड़ और पौधे पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने और लोगों की आजीविका को बेहतर बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बहुवर्षीय काष्ठीय पादप प्रजातियाँ शुष्क क्षेत्र में पारम्परिक कृषि पद्धति का अभिन्न अंग रही हैं। वर्तमान में बदलती जलवायु के कारण भी वृक्षारोपण पर बल दिया जा रहा है। दूसरी ओर शुष्क क्षेत्र में नवीकरणीय ऊर्जा का प्रचुर भंडार है एवम् इसका उपयोग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पौधरोपण और नवीकरणीय ऊर्जा की उपयोगिता को देखते हुए इस क्षेत्र में इन विषयों पर ज्ञान और कौशल को प्राप्त कर अनेक प्रकार के रोज़गार अवसर प्राप्त किये जा सकते हैं।

इसको ध्यान में रखते हुए गत वर्ष की भांति पर्यावरण, वन एवम् जलवायु परिवर्तन मंत्रालय (भारत सरकार) द्वारा चलाये जा रहे हरित कौशल विकास कार्यक्रम के अंतर्गत संस्थान में स्थित मरुस्थलीय पर्यावरण सूचना केंद्र (ENVIS) के अंतर्गत "शुष्क क्षेत्र में वृक्षारोपण तकनीकें एवं नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग" (*Plantation Techniques and Utilization of Renewable Energy in Arid Zone*) विषय पर एक माह का हरित कौशल विकास प्रशिक्षण (14 सितम्बर से 14 अक्टूबर, 2019) कार्यक्रम का आयोजन किया जा रहा है।

इस एक माह के प्रशिक्षण कार्यक्रम में नर्सरी तकनीकें, पौधरोपण एवम् नवीकरणीय ऊर्जा से सम्बंधित विभिन्न विषयों पर व्याख्यान एवम् प्रायोगिक कार्यक्रम तथा क्षेत्र भ्रमण का आयोजन किया जायेगा। वृक्षारोपण तकनीक और नवीकरणीय ऊर्जा पर विभिन्न विषय विशेषज्ञों द्वारा दिए गए व्याख्यान को संकलित कर प्रकाशित किया जायेगा। मुझे विश्वास है कि प्रशिक्षुओं के लिए यह संकलन अत्यधिक लाभदायक साबित होगा जिसे वे भविष्य में संदर्भित कर सकते हैं। इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन एवम् हरित कौशल विकास कार्यक्रम को आयोजित करवाने के लिए काजरी मरुस्थलीय पर्यावरण सूचना केंद्र के सभी अधिकारी एवम् कर्मी इस पाठ्यक्रम से जुड़े सभी विशेषज्ञों को बधाई देता हूँ।

दिनांक: 9 जनवरी, 2019 **(ओम प्रकाश यादव)**

दूरभाष नं./Telephone No.: +91-291-2786584, फैक्स नं./Fax No.: +91-291-2788706 (का. / Off.)
+91-291-2788484 (नि. / Res.)
वेबसाईट/website : www.cazri.res.in ई–मेल/e-mail : director.cazri@icar.gov.in opyadav21@yahoo.com

आमुख

शुष्क क्षेत्र में कम एवम् अनियमित वर्षा व अधिक जल मांग, निम्नस्तर की भूमिगत जल उपलब्धता को देखते हुए यहाँ के प्राकृतिक संसाधनो का संरक्षण बहुत ही महत्वपूर्ण है। यहाँ की विषम जलवायुवीय परिस्थितियों में स्थानीय पादप प्रजातियों का पोषण सुरक्षा व शुष्क पर्यावरण संतुलन में अपना विशेष महत्व रहा है। इस क्षेत्र का भूमि व जलवायु के गुणों के आधार पर विवेकसंगत उपयोग करना कृषि क्षेत्र में विकास के लिए महत्वपूर्ण है। यहाँ की स्थानीय पादप प्रजातियों का फसल सस्यन में समावेश जैसे कृषि चरागाह, कृषि वानिकी एंव कृषि उद्यानिकी आदि प्रजातियों का विकास करके प्रति इकाई फसलोत्पादन बढ़ाने एवम् सूखा व अकाल की स्थिति में कृषि उत्पादन निश्चितता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

नवीकरणीय ऊर्जा की दृष्टि से यह क्षेत्र विपुल संभावना वाला है। विश्व स्तर पर सौर ऊर्जा एक पर्यावरण हितैषी ऊर्जा स्त्रोत के रूप में उभरा है। भविष्य में ऊर्जा के गहराते संकट के मद्देनजर सौर ऊर्जा के उपयोग हेतु कम लागत व अधिक क्षमता वाले यंत्रों तथा उपकरणों का विकास और उनका व्यवसायिक स्तर पर उपयोग इस क्षेत्र के लिए अति महत्वपूर्ण है।

शुष्क क्षेत्र के इन दोनों महत्वपूर्ण आयामों यथा पौधरोपण व नवीकरणीय ऊर्जा से न केवल रोजगार सृजन के लिए वरन् पादप संपदा के संरक्षण को देखते हुए पर्यावरण, वन एंव जलवायु मंत्रालय (भारत सरकार) के हरित कौशल विकास कार्यक्रम (जी.एस.डी.पी.) के अंर्तगत गतवर्ष की भांति एक माह के पाठ्यक्रम "शुष्क क्षेत्र में वृक्षारोपण तकनीकें एंव नवीकरणीय ऊर्जा उपयोग" *(Plantation Techniques and Utilization of Renewable Energy in Arid Zone)* का चयन किया गया। इस प्रकाशन में विभिन्न विशेषज्ञों के व्याख्यानों का संकलन कर सरल भाषा में जानकारी देने का प्रयास किया गया है। इस पाठ्यक्रम की वित्तीय सहायता के लिए हम पर्यावरण, वन एंव जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के पर्यावरण सूचना प्रणाली सचिवालय (एनविस सेक्रेट्रीएट) के विशेष आभारी है जिससे यह कार्यक्रम क्रियान्वित किया गया। हम डा. ओ. पी. यादव, निदेशक, भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर का आभार प्रकट करते हैं। जिन्होने हमारा मार्गदर्शन तथा उत्साहवर्धन किया एंव समय समय पर बहुमूल्य सुझाव दिये। हम अपने सभी विषय विशेषज्ञों के व्याख्यान प्रस्तुतिकरण व प्रयोगात्मक कार्य एंव लेखनीय सहयोग के प्रति विशेष आभार व्यक्त करते हैं।

इस प्रकाशन के टंकण सहायता में काजरी मरूस्थलीय पर्यावरण सूचना केन्द्र के श्री कर्मवीर सिंह भाटी (डेटा एंट्री ऑपरेटर) को धन्यवाद देते हैं। हमें विश्वास है कि यह प्रकाशन सभी प्रशिक्षणार्थियों के लिए ज्ञानवर्धक एंव लाभकारी रहेगा।

जयप्रकाश सिंह

राकेश शरण त्रिपाठी

सुरेन्द्र पूनिया

अर्चना वर्मा

तीर्थ दास

संगीता गोयल

मयूर भाटी

अनुक्रमणिका

क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	शुष्क क्षेत्र में वृक्षों की पौधशाला तकनीक *अर्चना वर्मा और शीरन के*	1-7
2.	पौधशाला का निर्माण एवं प्रबंधन *शिरन के, कमलेश पारीक एंव अर्चना वर्मा*	8-12
3.	बागवानी पौधशाला की स्थापना ले–आउट एंव प्रबंधन *अकथ सिंह एंव पी. आर मेघवाल*	19-27
4.	पौधों में प्रवर्धन के सिद्धान्त और विधियाँ *पी. आर. मेघवाल एंव दलपत सिंह*	28-38
5.	शुष्क क्षेत्र में बगीचा स्थापना एंव प्रबंधन *पी. आर. मेघवाल एवं अकथ सिंह*	39-50
6.	शुष्क क्षेत्रों के प्रमुख फलवृक्षों का कायिक प्रवर्धन *अकथ सिंह एंव पी. आर मेघवाल*	51-57
7.	शुष्क क्षेत्र में हाईटेक सब्जी उत्पादन *प्रदीप कुमार*	58-65
8.	कैर की पौधशाला प्रबंधन, रोपण एंव महत्व *एच. आर. मेहला, जे. पी. सिंह एवं धीरज सिंह*	66-70
9.	मेंहदी की उन्नत खेती *एम.बी. नूर मौहम्मद, दीपक कुमार गुप्ता, ऐ.के. शुक्ला, कीर्थिका ए. एंव पी.एल. रेगर*	71-74
10.	शुष्क क्षेत्र में जैविक कृषि प्रबन्धन *अरूण कुमार शर्मा*	75-79
11.	शुष्क क्षेत्रों में पशुओं के लिए जीवन रक्षकः अजोला *धीरज सिंह*	80-88
12.	कम्पोस्ट बनाने की उत्तम विधियाँ *महेश कुमार एंव रणजीत सिंह यादव*	89-92
13.	जैविक खेती में खादों का महत्व *भगवत सिंह राठौड एंव अशोक सिंह तोमर*	93-95
14.	पौधशालाओं में पौधों के विकास हेतु आवश्यक मृदा और मृदारहित माध्यमों का प्रबन्धन *रणजीत सिंह यादव, महेश कुमार व प्रियब्रत सांतरा*	96-100
15.	मरुभूमि में मृदा व वर्षा जल संरक्षण व प्रबन्धन *राजेश कुमार गोयल*	101-109
16.	”जलतृप्ति” –रेगिस्तान में पेड़ पौधे लगाने के लिए एक दोहरी दीवार वाला मिट्टी का गमला *एन. डी. यादव*	110-111

क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
17.	शुष्क क्षेत्रों के चरागाह में घास और चारा दलहनों की स्थापना *राम नारायण कुमावत*	113-118
18.	शुष्क क्षेत्रों में कृषि वानिकी सम्बंधित समन्वित कृषि प्रणालियाँ *एस. पी. एस. तँवर*	119-127
19.	थार रेगिस्तान में रेत टिब्बा स्थिरीकरण : रेत नियंत्रण उपायों के लिए दृष्टिकोण *पी. सी. मोहराना*	128-133
20.	शुष्क क्षेत्र में प्रमुख औषधीय पौधे एवं नर्सरी प्रबंधन *जे.पी. सिंह एंव नारायण राम*	134-143
21.	पश्चिमी राजस्थान में ढ़ीगरी मशरूम की खेतीः एक वैकल्पिक व्यवसाय *एस. के. सिंह*	144-147
22.	शुष्क क्षेत्रों में कृषि प्रणालियों के वृक्षों पर लगने वाले कीटों का प्रबंधन *निशा पटेल*	148-157
23.	जैविक सूत्रीकरण से रोग नियंत्रण *ऋतु मावर*	158-164
24.	नर्सरी में रोग प्रबधन *कुलदीप सिंह जादौन*	165-169
25.	शुष्क क्षेत्र की महत्वपूर्ण झाड़ियों की पौधशाला एंव रोपण *वी. एस. राठौड एवं जे.पी. सिंह*	170-174
26.	वायु अवरोधक एवं रक्षक पट्टी रोपण द्वारा मृदा अपरदन नियंत्रण *एम. एल. सोनी, जे.पी. सिंह, एन. डी. यादव, वी. सुब्बुलक्ष्मी एवं बीरबल*	175-184
27.	ऊत्तक संवर्धन विधि द्वारा वृक्षों के प्रजनन की तकनीक *राजवंत कौर कालिया*	185-192
28.	शुष्क क्षेत्रों में चूहा प्रबंधन *विपिन चौधरी*	193-198
29.	शुष्क क्षेत्रों में खाद्य प्रस्करण व मूल्य संर्वधन –किसान की आय दुगुनी करने का महत्वपूर्ण स्तंभ *प्रतिभा तिवारी, पूनम कलश एवं सविता सिघंल*	199-208
30.	कृषि फसलों में तुड़ाई उपरांत प्रबंधन एंव मूल्य संवर्धित उत्पाद विकास *सोमा श्रीवास्तव*	209-215
31.	खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग *शेख़ मुख्तार मंसूरी*	216-220
32.	पश्चिमी राजस्थान में नवीकरणीय ऊर्जा संसाधनः एक अवलोकन *दिलीप जैन एवं प्रियब्रत सांतरा*	221-226
33.	मोटे अनाजों का प्रसंस्करण *ओम प्रकाश*	227-229
34.	कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण और मूल्यवर्धन के लिए सौर ड्रायर द्वारा शुष्कीकरण *सुरेन्द्र पुनियाँ, ऐ.के. सिंह, दिलीप जैन एवं प्रियब्रत सांतरा*	230-236

क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
35.	पौध संरक्षण के लिए सौर फोटोवोल्टिक चालित छिड़काव एवं बुरकाव यन्त्र *सुरेन्द्र पुनियाँ एवं प्रियब्रत सांतरा*	237-240
36.	सौर ऊर्जा आधारित खाना बनाने एवं गर्म पानी के विभिन्न उपकरण *अनिल कुमार सिंह*	241-245
37.	शीतलता के सिद्धान्त पर आधारित कूल चैम्बर *अनिल कुमार सिंह*	246-248
38.	शुष्क क्षेत्र में भूमि उत्पादकता बढ़ाने के लिए कृषि–वोल्टाइक प्रणाली *प्रियब्रत सांतरा*	249-252
39.	छत पर सौर ऊर्जा की उत्पादनः एक नमुना विश्लेषण *प्रियब्रत सांतरा*	253-255
40.	प्रक्षेत्र–सिंचाई के लिए सौर फोटोवोल्टाइक (पीवी) पम्पिंग पद्धति *रंजय कुमार सिंह, प्रियब्रत सांतरा*	256-261
41.	कृषि खेतों में पवन ऊर्जा उत्पादन की संभावनाएं *दिनेश मिश्रा एवं अमित सिंह*	262-267
42.	स्वच्छ उत्पादन एंव अपशिष्ट न्यूनीकरण *संगीता गोयल एंव मयूर भाटी*	268-282
43.	हरित पट्टी (ग्रीनबेल्ट) विकास, शहरी बागवानी एवं भू दृश्य निर्माण (लैण्डस्केपिंग) *जे.पी. सिंह एंव प्रदीप कुमार*	283-286

शुष्क क्षेत्र में वृक्षों की पौधशाला तकनीक

अर्चना वर्मा और शीरन के.

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों का वातावरण आम तौर पर बहुत संवेदनशील होता है। यह क्षेत्र कम और अनिश्चित वर्षा और अपेक्षाकृत उच्च तापमान के साथ जुड़े हैं। जिसके परिणामस्वरूप यहां जल संसाधन बहुत ही सीमित है और अन्य खेती प्रणाली और पौधशाला की स्थापना आसान नहीं है। पौधशाला में तैयार किये गए पौधे वनीकरण का एक प्रमुख घटक है, विशेष रूप से शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में जहाँ संभावित प्राकृतिक तरीके और प्रत्यक्ष बुवाई से वनीकरण सीमित होता है। पौधशाला की सभी विधियाँ अनुरूप होनी चाहिए और विभिन्न तकनीकों को बारीकी से एकीकृत किया जाना चाहिए। एक सफल वृक्षारोपण के लिए पौध अथवा कटिंग की अच्छी गुणवत्ता होना परम आवश्यक है। देखभाल के बिना अच्छी गुणवत्ता वाले पौधों का उत्पादन नहीं किया जा सकता है। पौधशाला में पौधों को तब तक रखा जाता है जब तक वे खुद कठोर पर्यावरण की स्थिति को झेलने के लिए, पर्याप्त मजबूत न हो जाए। पौधशाला, रोपणी या नर्सरी एक ऐसी जगह है, जहां पर बीज या पौधे के अन्य भागों से नए पौधों को तैयार करने के लिए सही इंतजाम किया जाता है। पौधशाला का क्षेत्र सीमित होने के कारण देखभाल करना आसान व सस्ता होता है।

शुष्क क्षेत्रों में पौधशाला का महत्व

1. कुछ महत्वपूर्ण प्रजातियों में प्रति वर्ष बीज उत्पादन नहीं होता है। पौधशाला में इन प्रजातियों के पौधे सालाना लगाए जा सकते हैं और स्थानांतरित करने से पहले तक उनकी देखभाल की जा सकती है।
2. कुछ प्रजातियां बहुत धीरे–धीरे बढ़ती हैं और यदि इन प्रजातियों के बीज सीधे वृक्षारोपण में बोए जाते हैं, तो रोपणों को खरपतवारों द्वारा दबाया जा सकता है और आखिरकार पौधे नष्ट हो जाते हैं। इसलिए, धीरे बढ़ने वाली प्रजातियां पौधशाला में लगाई जाती है और केवल तभी रोपित किए जाते हैं, जब उन्हें खरपतवारों से क्षतिग्रस्त होने का खतरा नहीं रहता।
3. सड़क के किनारे वृक्षारोपण की सफलता बड़े पैमाने पर लंबे और मजबूत पौधों के रोपण पर निर्भर करती है जिन्हें पौधशाला से ही प्राप्त किया जा सकता है।
4. कुछ प्रजातियों के पौधे, जब सीधे बोकर पौधों को प्रत्यारोपित करके लगाये जाते हैं तो वे उतने सफल नहीं होते। ऐसे मामलों में, पौधशाला इन प्रजातियों के लिए कृत्रिम पुनरुत्थान का एक अनिवार्य हिस्सा है।

5. पौधशाला में उगाए जाने वाले पौधों का रोपण बंजर जगहों पर कृत्रिम पुनरुत्थान की निश्चित विधि है।
6. पौधशाला का क्षेत्र सीमित होने के कारण पौधों की देखभाल तथा पालन–पोषण आसानी से किया जाता है और पौधों गुणवत्ता बनी रहती है।
7. पौधशाला में सघन देखभाल सम्भव है अतः पौधों को समय पर कीट, रोग व खरपतवारों से बचाया जा सकता है।

पौधशाला के प्रकार :

नर्सरी को स्थायित्व/अवधि और सिंचाई सुविधा, के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. अवधि के आधार पर

स्थायी नर्सरी : इन नर्सरियों को स्थायी सड़क, बाड़, सिचांई के साधन, गोदाम, बिल्डिंग और परिवहन सुविधाओं के साथ स्थापित किया जाता है। इनका उद्देश्य आसपास के क्षेत्रों की अधिंकाश मांग को पूरा करना होता है जिसके लिऐ वे स्वंय के उत्पादन और अन्य स्थानों से आयात की गई पौध का इस्तेमाल करते हैं।

अस्थायी नर्सरी : यह नर्सरी अपेक्षाकृत कम अवधि के लिए अंकुरित पौधों (स्टॉक) को बनाए रखने और आपूर्ति करने के लिए स्थापित की जाती है एक बार जब पौधरोपण की मांग पूरी हो जाती है तो इस नर्सरी को छोड़ दिया जाता है या किसी अन्य जगह पर स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

2. सिंचाई सुविधा के आधार पर

तर नर्सरी : इन में सिंचाई सुविधाएँ या कृत्रिम रूप में पानी की सुविधा की व्यवस्था होती है। अधिकांश स्थायी नर्सरियाँ गीली नर्सरी की श्रेणी में आती हैं।

सूखी नर्सरी : इनमें सिंचाई की सुविधा नहीं होती और इनका परिचालन अधिकतर बरसात के मौसम में ही होता है।

मातृ क्यारियों के प्रकार :

1. उठी हुई क्यारियाँ (Raised bed) : इस प्रकार की क्यारियाँ जमीनी स्तर से 10–15 से.मी. ऊपर उठी हुई होती हैं जिसके लिए अतिरिक्त मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की क्यारियाँ आमतौर पर उच्च वर्षा प्राप्ति वाले क्षेत्रों में जल भराव को रोकने के लिए प्रयोग में लाई

जाती हैं। यह क्यारियाँ उन प्रजातियों के लिए उपयोगी हैं जिन्हें अंकुरण के लिए अधिक नमी की आवश्यकता नहीं होती जैसे कि टीक, देवदार, स्प्रूस इत्यादि।

2. धंसी हुई क्यारियाँ (Sunken bed) : यह क्यारियाँ आमतौर पर जमीनी स्तर से 10–15 से.मी. गहरी होती हैं और इन्हें मिट्टी की खुदाई के द्वारा तैयार किया जाता है। यह पानी के प्रवाह को रोकती हैं और नमी का संरक्षण करती हैं। कठोर परत वाले बीजों जैसे कि कोकर, एसर, करौंदा इत्यादि को इस प्रकार की क्यारियाँ में बोया जाता है।

3. स्तर क्यारियाँ (Level beds) : यह क्यारियाँ जमीनी स्तर पर ही बनाई जाती हैं। शुष्क मौसम में ढहने से रोकने के लिए इनके चारों ओर पत्थर, लकड़ी या ईंटों की एक पंक्ति का इस्तेमाल किया जाता है।

पौधशाला की प्रमुख गतिविधियाँ व समय

पॉलीथीन थैलियों को भरना	–	जनवरी–फरवरी व मई
बीज की बुवाई	–	फरवरी–मार्च व जून
सिंचाई	–	मार्च–जुलाई
रोपण	–	मानसून के आगमन पर

इसलिए, अंकूर उत्पादन का सामान्य समय प्रबंधन निम्न प्रकार से होना चाहिए–

1. बीज संग्रह : फल/फली की परिपक्वता।
2. प्रजनक संग्रह : प्रत्येक प्रजाति के मानकीकृत मौसम, कलम व कली संग्रहण विधि के आधार पर।
3. बीज बुवाई और रोपाई : पौधे की शारिरीक सक्रिय अवधि के दौरान (सर्दियों के तुरन्त बाद)
4. अंकुर प्रेषण : मानसून की शुरूआत के साथ शुरू होता है।
5. परिहार्य समय : अतिशीत/ग्रीष्म मौसम, मजदूरों की कमी का समय, कीट और रोग के प्रकोप के मौसम।

शुष्क क्षेत्रों में पौधशाला प्रबन्धन के लिये कुछ ध्यान देने योग्य प्रमुख बिन्दु :

1. उच्च ताप से नर्सरी एवं छोटे फल वृक्षों का बचाव एवं छाया करना : छोटे एवं नये रोपित पौधों को कांस, मूंज, कड़वी आदि से ढक देना चाहिए। गमले में रोपित पौधों को बड़े पौधों की छाया में रखकर गर्मी से बचाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पौधों के तनों को नीचे से लेकर ऊपर तक यदि संभव हो सके तो समाचार पत्र लपेटकर ढक देना चाहिए जिससे पौधों को उच्च ताप से बचाया जा सके।

2. पौधों को उच्च ताप से बचाने के लिए मिट्टी की किस्म एवं तापक्रम को ध्यान में रखते हुए सिंचाई निरन्तर अंतराल पर करते रहना चाहिए।
3. अत्यधिक गर्मी के मौसम में सांयकाल के समय सिंचाई नहीं करनी चाहिए क्योंकि दिन की गर्मी के बाद अचानक पानी देने से पौधों की उत्तक नष्ट हो जाते है जिससे पौधे मर जाते है। अतः पौधों में सुबह जल्दी सिंचाई करें।
4. नर्सरी मिश्रण को सूर्य के ताप में पॉलीइथलीन थैलियां भरने से पहले कुछ दिन रख कर, मृदा से होने वाली बीमारियों से पौधों को बचाया जा सकता है।
5. कुछ वृक्ष प्रजातियों में बीज संग्रहण समय व पौधरोपण में सम्बन्ध देखा गया है। कुम्मट में यह पाया गया है कि यदि फलियाँ उस समय तोड़ ली जाए, जब वह हल्की से ताम्रवर्णीय हो जाय तो उन फलियों से प्राप्त बीजों में पौधण अधिकाधिक होता है।

शुष्क क्षेत्र के प्रमुख वानिकी वृक्षों के प्रवर्धन की तकनीक

शीशम

शीशम भारत व पाकिस्तान उपमहाद्वीप में उत्पन्न होने वाला चौड़ी पत्तियों से भरपूर एक महत्त्वपूर्ण वृक्ष है। यह भारत में गंगा के मैदानी इलाकों, हरियाणा व राजस्थान में होता है। यह शुष्क और अर्द्ध–शुष्क इलाकों में लगाए जाने के लिए एक उपयुक्त वृक्ष है। इसकी लकड़ी खाना बनाने के लिए, जलाये जाने के लिए काफी मंहगी पड़ती है। खासतौर से घर बनाने और फर्नीचर बनाने के लिए और गांव के बढ़ई के लिए यह वरदान स्वरूप है। यह कृषि वानिकी के लिए काफी उपयुक्त है।

बीज संग्रह और रख–रखाव : इसके पके हुए बीज (फली) दिसम्बर से जनवरी में एकत्र किए जाते हैं, धूप में सुखाये जाते हैं और लकड़ी से कूटकर तोड़े जाते हैं। फिर इनको ऐसे बर्तन, जिसमें हवा प्रवेश न कर सके में डालकर सूखे स्थान पर रखा जाता है। उचित तरीके से तैयार किए हुए बीज एक वर्ष तक रखे रहने से अपनी अंकुरण क्षमता बनाए रखते हैं।

पौधशाला की देखभाल : जहां सिंचाई की सुविधा है वहां फरवरी से मार्च तक पौधशाला में बुवाई करें और वर्षा पर निर्भर रहने वाले क्षेत्रों में जुलाई में बुवाई करें। 48 घण्टे तक ठण्डे पानी में डूबे हुए दो से तीन बीजों वाले बीजकोषों को 25 सें.मी. की दूरी वाली अलग–अलग पंक्तियों में 1.5 सें.मी. गहरी मिट्टी में बोयें। बोने के तुरन्त बाद इनकी सिंचाई करें। लगभग एक सप्ताह में सूखे हुए बीजों का अंकुरण प्रारम्भ हो जाता है और लगभग तीन सप्ताह में पूरा हो जाता है। अधिकतम और जल्दी अंकुरण के लिए 30 डिग्री तापमान की आवश्यकता होती है।

नीम

नीम बहुत ही सख्त, सदाबहार और प्रकाश चाहने वाला मध्यम आकार का वृक्ष होता है। यह पूरे भारतवर्ष में काफी अधिक संख्या में पाया जाता है। इसकी फैली हुई छाया धूप से आराम पहुँचाती है। इसकी पत्तियों और बीजों में कीटनाशक उपचारिक गुण पाये जाते हैं तथा इसका उपयोग बहुतायत में होता है।

पौधे तैयार करना : नीम के बीज की अकुंरण–क्षमता बहुत कम समय, लगभग दो सप्ताह तक ही होती है। अतः बीज के पकते ही पूर्व से तैयार नर्सरी के क्यारीं में 15 से.मी. दूरी पर लाइनों में बो दिया जाता है। साधरणतया बीज एक सप्ताह में उग जाता है। अकुंरण के बाद जब पौध 5 से 7 से .मी. की हो जाती है तो खाद, मिट्टी व बालू (1:1:1) के मिश्रण से भरी पॉलीथिन की थैलियों में इन्हें लगा दिया जाता है एवं लगभग एक मीटर का होने पर पौधों को वृक्षारापेण स्थल पर लगाया जाता है। आठ दिनों में अंकुरण प्रारम्भ हो जाता है और लगभग 3 सप्ताह तक चलता रहता है।

रोहिड़ा

शुष्क और अर्द्ध–शुष्क इलाकों में कृषि वानिकी के लिए रोहिड़ा एक महत्वपूर्ण वृक्ष है जो ईंधन और चारे के साथ–साथ उच्चकोटि की लकड़ी का उत्पादन करता है। यह 4 से 8 मीटर लम्बाई और 50 से 80 सैं.मी. गोलाई का होता है और गहरी जड़ों का काफी धीरे बढ़ने वाला वृक्ष है।

बीज संग्रह : इसके फूलने का समय दिसम्बर से अप्रैल के मध्य तक का है। मई और जून के दौरान इसके फल तैयार होते हैं। पौधों की अंकुरण क्षमता फसल के तुरन्त बाद होती है और 1 वर्ष बाद पूरी तरह समाप्त हो जाती है।

पौधशाला के रख–रखाव की विधि : रोहिड़ा बीज द्वारा आसानी से अंकुरित होता है और इसको पूर्व उपचार की आवश्यकता नहीं होती, यद्यपि बीज को 4 घण्टे के लिए ठंडे पानी में डुबो देने से यह एक समान अंकुरित होने के लिए प्रभावशाली बन जाता है और सीधे पॉलीथीन थैलियों में लगाना सबसे अच्छा तरीका है।

खेजड़ी

खेजड़ी भारत के मरुस्थलीय स्थानों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। शुष्क स्थानों में उत्पन्न होने वाली सभी अन्य प्रजातियां जब पत्तीरहित और शिथिल हो जाती हैं (मार्च से जून तक) तब अत्यधिक गर्मी के दौरान यह वृक्ष फूल, पत्ती और फली उत्पन्न करता है। अपनी गहरी जड़ व्यवस्था, एक परतीय आवरण और वातावरणीय नाइट्रोजन की स्थिरता प्रदान करने की क्षमता के कारण यह भारत के शुष्क और अर्ध–शुष्क इलाकों में कृषि वानिकी के लिए बहुत अधिक प्रयोग किया जाता है।

पौधशाला का रख–रखाव : खेजड़ी के वृक्ष में फरवरी–मार्च के दौरान फूल आते हैं और अप्रैल से जून के दौरान बीज परिपक्व होते हैं। एक किलो में बीजों की संख्या 25–28 हजार तथा बीजों की जीवन क्षमता लगभग 2 से 4 वर्ष तक। बीजों को अनुकूल तापमान में 24 से 48 घण्टे के बीच पानी में डुबोए रखने से उनमें अंकुरण क्षमता बढ़ जाती है। 22.5 × 12.5 सेंटीमीटर साइज के पॉलिथीन बैग में एक हिस्सा पौधशाला की मिट्टी, एक हिस्सा अच्छी तरह से सड़ी हुई खाद को भरा जाता है। बुवाई से चौथे दिन अंकुरण शुरू होता है व एक साल बाद पौधा रोपण योग्य तैयार हो जाता है।

कुमठ

इसका उद्गम स्थल भारत का शुष्क व उष्ण क्षेत्र एवं अफ्रीका में सूडान तथा सुमालिया है। यह राजस्थान के मरूस्थलीय एवं अर्द्धमरूस्थलीय क्षेत्रों में पाली, अजमेर, नागौर, सीकर, जयपुर व अलवर जिलों में प्राकृतिक वनों में पाया जाता है।

बीज की उपलब्धि : दिसम्बर से मार्च माह के बीज इसकी फली व बीज बिखर जाते है। इसके बीज प्राप्त करने के लिए, इसकी पकी हुई फलियों को इकट्ठा कर कूट कर साफ किया जाता है। इसके एक कि.ग्रा. में करीब 8200 से 10900 तक बीज होते है।

पौधशाला विधि : बीज को 24 से 48 घन्टे पानी में भिगोने से इसका उपचार हो जाता है। इसमें अंकुरण क्षमता 56 प्रतिशत है। इसका अंकुरण 2 से 6 दिन के मध्य पूर्ण हो जाता है। पूर्व उपचार के पश्चात् इसकी 12.5 x 30 से.मी. मिट्टी खाद मिश्रण से भरी थैली में फरवरी माह में बीजाई कर दी जाती है। जिसको नियमित रूप से पानी, निराई गुडाई समय–समय पर खाद व आवश्यकता पड़ने पर कीटनाशक दवा के उपयोग से, पौधे की मानसून तक, वृक्षारोपण योग्य ऊँचाई हो जाती है।

शुष्क क्षेत्रों के अन्य वृक्षों के प्रवर्धन की विधियाँ

वृक्ष प्रजाति	बीज प्रति किलो	सर्वश्रेष्ठ बीज संग्रह अवधि	बुवाई पूर्व उपचार	बीज व्यवहार्यता	अंकुरण प्रतिशत
कीकर	7000–11000	अप्रैल–जून	40–50 मिनट सल्फयुरिक एसिड में प्रच्छान	> 2 वर्ष	88
अरडू	9500	मार्च– जून	12–24 घंटे तक पानी में भिगोना	6 माह	70
सिरिस	9200	नवम्बर–दिसम्बर–फरवरी	24 घंटे तक पानी में	4–.5 वर्ष	40–.60

			भिगोना		
अंजन	3900	अप्रैल–मई	ताजे बीज की बुवाई, कोई उपचार नहीं	1 वर्ष	60–80
सुबबुल	8000–10000	अप्रैल	2–.3 मिनट गर्म पानी भिगोना	2 वर्ष	90
करंज	800–1500	मार्च– मई	ताजे बीज की बुवाई, कोई उपचार नहीं	12 माह	80
विलायती बबूल	12500	मई– जून	20 मिनट सल्फयुरिक एसिड में प्रच्छान	18 माह	80–.90
अमलतास	6000–7000	मार्च– अप्रैल	24 घंटे तक पानी में भिगोना	1 वर्ष	70

पौधशाला का निर्माण एवं प्रबंधन

शिरन के, कमलेश पारीक एंव अर्चना वर्मा

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

किसी भी स्थानीय प्रजाति के पौधों का समुचित उत्पादन एक महत्वपूर्ण पहलू हैं। पौधशाला मे बीजांकुर की देखरेख व प्रबंधन के साथ इनकी पौधरोपण के पश्चात् आगामी वृद्धि एवम् उत्तेर्जिवेता का भी योगदान होता हैं। बीजांकुर की गुणवत्ता व सुधार का घनात्मक संबंद्ध हैं। बीजांकुर की गुणवत्ता उसके जनक आनुवांशिकी एवं बीजांकुर की भौतिक वृद्धि से है। प्रायोगिक पौधशाला में नाना प्रकार की तकनीकियों का समावेश होता हैं। अच्छी गुणवत्ता के बीजांकुर का उत्पादन बिना सार–संभाल व देखरेख नहीं हो सकता हैं। अत्याधिक कठोर पर्यावरणीय परिस्थितियों से बीजांकुर को संरक्षण किया जाना चाहिए जब तक की वे मजबूती से खडें रहे।

वृक्षीय पौधशाला

पौधशाला वह स्थान है जहां बीजांकुरों का प्रसार–प्रबंधन होता हैं और जहाँ उन्हें पौधरोपण तक रखा जाता हैं। यह सुनिश्चित होना आवश्यक है की पौधशाला में समुचित भंडारण हो पौध– रोपण के समय अत्याधिक मृत्युदर उसकी गलत स्थापना और निर्बलता के कारण होती हैं। निर्बल बीजांकुरों की धीमी वृद्धि दर उसकी खरपतवार, सुखे और कीटदृक्रमी के प्रति क्षमता मे कमी के कारण होती है परिणामस्वरूप, समय और धन की बर्बादी होती हैं।

पौधरोपण के बाद पौधा तेजी से अपर्यावरणीय अकाल, गर्मी और कीटों के कारण नष्ट हो सकता हैं। इसलिय अच्छे पौधरोपण कार्यक्रम की सफलता के लिए पौधशाला के उचित रख–रखाव ही इसका आधार हैं। बीज से अंकुरित होने वाले पौधो को बीजांकुर कहतें हैं। यह नवीन पौध है जो की विशेष रूप से स्थान्तरण के लिए पौधशाला में वृद्धि करती हैं बीज के अंकुरण के समय से ही बीजांकुर का विकास प्रारंभ हो जाता हैं।

वृक्षीय पौधशाला के प्रकार

वृक्षीय पौधशाला को दो वर्गो मे विभाजित किया गया हैं अस्थाई और स्थाई अस्थाई पौधशाला एक अथवा दो मौसम और एक–दो वर्ष के लिए उपयोगी होती हैं। वहीं स्थाई पौधशाला दीर्घावधि के लिए होती हैं इसीलिए बीजांकुरों को एक और दो वर्षों तक तैयार किया जाते हैं। पौधशाला वर्ग के निर्माण का निर्णय विभिन्न प्रकार के कारकों को ध्यान मे रखकर लिया जाता हैं।

- कितने पौधो की मांग हैं।
- मांग का समय कदाचित् पूर्व की भांति हो।
- परिवहन – बाजार के लिए उपलब्धता।

पौधशाला निर्माण

पौधशाला निर्माण के लिए आकार, स्थल, जल की उपलब्धता, कुशल मजदूर और बीजांकुरों के लिए बाजार की मांग को ध्यान मे रखना अति आवशयक हैं। पौधशाला चयन के लिए स्थल का चयन सर्वप्रथम और अति आवश्यक गतिविधि हैं।

एक आदर्श पौधशाला के लिए निम्नलिखित आवश्यकताएँ होती हैं।

- इसकी उपलब्धता सरलीकृत हो।
- स्थाई रूप से जल की आपूर्ति और जल निकासी की व्यवस्था हो।
- अच्छी तरह की मृदा सामग्री की आपूर्ति होनी चाहिए।

पौधशाला प्रबंधन

निरोगी व उच्च गुणवत्ता वाले पौधरोपण सामग्री का त्वरित उत्पादन ही पौधशाला प्रबंधन का प्रमुख उद्देश्य हैं। नाना प्रकार की सामग्रियों और प्रबंधीय क्रिया को क्रियान्वयन करना ही इसकी सफलता का आधार हैं।

बीज–स्रोत, संग्रहण और बुनयादी उत्पादन के लिए चयन

स्वास्थ्यवर्धक एवं समानाकार के बीजांकुरों को प्राप्त करने के लिए बीज का स्रोत, चयन और संकलन करना आवश्यक क्रिया हैं। फलीय पौधों की वांछित वातावरणयीय परिस्थिती के बावजूद भी वांछित लब्धि प्राप्त नहीं की जा सकती यदि पौधा वातावरणयीय परीस्थिती के अनुकूल न हो।

सुचारू चयन की अवधारणा के आधारभूत सिद्धांत निम्न हैं।

- वांछित गुणवत्ता वाले पैतृक वृक्ष में उत्पादन परिणाम का प्रदर्शन सामान कार्यकी के साथ होता हैं।
- बीजांकुर का प्रदर्शन संभवतः पैतृक गुणों के प्रदर्शन पर आधारित होता हैं।

बीज का इकठ्ठा और बुवाई करना

- सदैव मुख्य वृक्ष अथवा उत्कृष्ट बाह्य गुणों वाले वृक्ष से ही बीजों को इकठ्ठा करना चाहिये।

- स्थानिय वृक्षों व अधिमानित वृक्षों की प्रजातियों की जानकारी पौधशाला में लेखाचित्र में सूचिबद्ध होना आवश्यक हैं। खराब और असामान्य वृक्षों से विकसित बीजांकुर से कभी भी उत्तम वृक्ष विकसित नहीं हो सकता हैं।
- बीज इकठ्ठा करने के बाद इसका प्रक्रम सावधानीपूर्वक करना चाहिए नहीं तो बीज नष्ट या फिर इसकी जीवन क्षमता में हानि हो सकती हैं।
- प्रत्येक प्रजाति के बीजों की प्रक्रिया भी भिन्न–भिन्न होती है जैसे की गूँदा के साथ बीजों की, फली वाले, कैप्सूल और ड्रूप बीजों की तुलना से भिन्न होती हैं।

निवेश और इसका प्रबंधन

अच्छी गुणवत्ता वाले बीजांकुर का प्रत्यक्ष सम्बन्ध दो महत्वपूर्ण कारकों, जल व पोषक तत्वों से है। जल की गुणवत्ता और इसकी वांछित उपलब्धता यह सुनिश्चित करती है कि बीजांकुरों का विकास अच्छा हो संभवतः फव्वारा पद्धति से इसका प्रभाव अच्छा होता हैं। बीजांकुरों मे पर्याप्त मात्र में की गई सिंचाई से खरपतवार एवं रोगों की संभावना मे कमी होती है बीजांकुरों के पोषक तत्वों की उपलब्धता पी एच् के माध्यम, जल और प्रजाति के गुणो पर आधारित होती हैं।

निवेश मे कमी को सुनिश्चित करने के लिए उचित प्रकाश माध्यम, मिश्रित माध्यम, धारिता को भरना, भरे धारितों का प्रबंधन, खेत से प्राप्त जैविक खाद, जल– गुणवत्ता और क्रिस्टल अवयवों पर निर्भर होती हैं।

मातृ–तल

मातृ–तल, जिसे कि "बुवाई–स्थल" भी कहा जाता है वह स्वच्छ एवं उपजाऊ पौधशाला मिश्रणों (मृदा, मिट्टी और जैविक खाद) से निर्मित होता हैं। व्यापक रूप से ये आयताकार मे 1 से 1–8 मी. चौड़ाई और 1–8 मी. की ऊंचाई व 12 मी. की समतल लम्बाई वाली होती हैं।

बुवाई स्थल की अभिविन्यास सूर्य की दिशा (पूर्व से पश्चिम) में आवश्यक हैं। जिससे छाया प्राप्त होती हैं. शुष्क क्षेत्रों मे बुवाई स्थल व्यापकरूप से भू–तल से 10 से 15 सेमी गहराई लिए होते हैं। यह जल– प्लावन और नमी से बचाव करता हैं। दृढ़ शैल वालें बीजों (बबूल, करोंदा, कैर, इत्यादि) को इन बुवाई स्थल पर बुवाई करतें हैं।

पौधशाला सम्बन्धित रोग और उसका प्रबंधन

बीजांकुर में तनाव के लक्षणों जैसे कि नमी में कमी, मुरझाना, सड़ना, मंडूर होना और चूर्ण युक्त फफूंद के कारण होती हैं इसके परिणामस्वरूप बीजांकुरों का वृद्धि प्रभावित होती हैं। संभवतः यह रोग जल, वायु, बीज की प्रकृति के कारण होता हैं। स्वच्छ भूमि मे हाल ही तैयार पौधशाला परजीवी को आमंत्रित करती हैं। मृदा

–उपजाऊ मे कमी, अत्याधिक सिंचाई, छाया क्षेत्र मे क्षेपण बीजांकुरों की वृद्धि को प्रभावित करते हैं। रोग की रोकथाम के लिए निर्जमिकृत पौधशाला सामग्री, फफूंदीनाशक जैसे कि क्रिप्टन का पूर्व उपचारण से इनका बचाव का आंकलन किया जा सकता हैं। यदि रोग की उपस्थिति हो तो लक्षणों का प्रभाव, और उसके अनुसार रोगाणुओं की पहचान कर उचित फफुन्दिनाशी का प्रयोग कर सकते हैं।

पौधशाला कीट और उसका प्रबंधन

नाना प्रकार के कीट समूहों के कारण पौधशाला भंडारण की क्षति होती हैं। इन हानिकारक कीटों को तीन वर्गों मे विभाजित किया गया हैं। वृहद पौधशाला कीट (सफेद सुंडी, क्रमी, दीमक और जिंगूर), छोटे कीट (पत्रवीहीन क्रमी, रस चूषक, टिड्डा) और अकीटी कीट (सूत्र क्रमी और अकशेरुकी कीट) साधरण तौर पर इसको नियंत्रण के लिए पौधशाला क्षेत्र की सफाई, वांछित क्रिया को अपनाना और आवश्यकतानुसार रासायनिक और जैविक कीट नाशक का प्रयोग कर सकते हैं।

पौधशाला प्रबंधन की नियमित गतिविधियां

अंकुरण और बीज उत्पादन के लिए जल ही एकमात्र मुख्य कारक हैं। परन्तु अधिक जल उतना ही हानिकारक है जितना की अल्प जल का प्रयोग जल की आवश्यकता पौधशाला के आकार, मिट्टी के प्रकार, प्रजातीय, बीजांकुरों की संख्या और सिचांई के प्रकार पर निर्भर होती हैं। रेतीली मिट्टी की अल्प जल भरण क्षमता के कारण शुष्क क्षेत्रो में अधिक जल की आवश्यकता होती हैं। बीजांकुरों को सूखे से बचने के लिए किफायती और नियमित जल की उपलब्धता जो की जल के 3 दिवस तक भंडारण के व्यवस्था की सुनिश्चितता के साथ आवश्यक हैं। आवश्यक सिंचाईं हेतु जल की गुणवत्ता भी सुनिश्चित होना जरूरी हैं। साधारण 7 पी एच् का जल सर्वोत्तम हैं। जबकि 7 से अधिक पी एच् का जल सीलन वाली फफूंदी के आक्रमण को प्रेरित करता हैं। प्रातः काल सिंचाई श्रेष्ट होती हैं दोपहर के समय जब सूर्य के कारण अत्याधिक वाष्पन होता है सिंचाई को टालना चाहिये। बीजांकुरों का पीलापन और विकास को प्रभावित करने वाले द्रष्टिय लक्षण अधिक सिंचाई के कारण होते हैं। अक्सर यह पाया गया है कि वृहद समूहों में बीजांकुरों में असामान्य "लहर" के सामान वृद्धि असामान्य सिंचाईं के कारण सभी पौधो मे दिखाई देती हैं। सिंचाई के कारण शिथिलता एक प्रारम्भिक लक्षण के रूप मे ज्ञात होती हैं। छोटी पौधशाला मे सिंचाईं के लिए स्प्रे केन अथवा कंधे पर नोजल युक्त चलायमान स्प्रे प्रणाली होनी चाहियें। वृहद पौधशाला के लिए साधरण ऊंचाई लिए फव्वारा पद्धति श्रेष्ठ होती है क्योंकि यह सरल और समान रूप से सिंचाई करती हैं।

खरपतवार

कृषि योग्य भूमि मे अवांछित पौधों की उपस्थिति होती हैं उसे खरपतवार कहते हैं। ये पौधशाला में बीजांकुरों के साथ पोषक तत्व, जल और प्रकाश के प्रतिभागी होते हैं और साथ ही ये बीजांकुरों की विकास को कम कर देते हैं। क्योंकि इनकी वृद्धि बीजांकुरों की तुलना में अधिक और तेज दर होती हैं। खरपतवार को हटाना उस समय कठिन हो जाता है जब यह धारिता मे बीजांकुरों के साथ उपस्थित होती हैं या फिर पौध तल पर स्थानातरित होने कि दशा मे हो। इन दोनों अवस्थाओं में, धारित मिट्टी एवं पूर्व भरे धरितों को जल से भरकर रखा जाना चाहिए। जिससे अंकुरित खरपतवारों को अग्रिम रूप से हटाया जा सकें। खरपतवार रहित मिट्टी की अनुपस्थिति मे स्थानांतरित करने के लिए धारिता को 4 सप्ताह पूर्व ही भर दिया जाना आवश्यक हैं। पौधशाला मे प्राथमिक पोषक तत्व (नत्रजन, पौटेशियम और फास्फोरस) की त्वरित रूप से आवशयकता होती हैं। बीजांकुरों मे पोषक तत्वों की कमी उस पोषक तत्व से सम्बन्धित लक्षणों से ज्ञात उसके अनुसार सु–संगत उर्वरक को आवश्यकता अनुसार उपयोग मे लेना चाहिए। साधरण रूप से पोषक तत्वों के लिए जहाँ पर ज्यादा रेतीली अथवा भारी और निम्न गुणवत्ता वाली पौधशाला में जैविक खाद (एफ वाय एम्) और देशी खाद का उपयोग अधिकाधिक होता हैं। यह पौधो को पोषक तत्वों के साथ मृदा संरचना, जल ग्रहण क्षमता मे सहायता करती हैं। इनके प्रयोग से रासायनिक उर्वरक की कमी अथवा अल्प मात्रा में इसके मिश्रणों से उर्वरक का घुलनशीलता बढ़ाने मे सहायक होती हैं। इसके फलस्वरूप पोषक तत्वों की उपलब्धता वृहद रूप से प्राप्त हो जाती हैं।

समयानुसार गतिविधियों का संचालन और समुचित योजनानुसार संचालन से पौधशाला का सफलतापूर्वक निर्माण और वृद्धि की जा सकती हैं। इसके अलावा बीज भंडारण की सुविधाये, नियंत्रित बाह्य वातावरण संरचना उपलब्ध है तो प्राकृतिक मौसम में पौधशाला गतिविधियों का संचालन कर प्रेक्षेत्र मे पौधशाला प्रत्यारोपण को बढ़ाने में सहायक होती हैं।

बागवानी फसलों की नर्सरी के लिए दिशानिर्देश एंव घटक

प्रतापसिंह खापटे एंव प्रदीप कुमार

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

नर्सरी के लिए दिशानिर्देश

राष्ट्रीय बागवानी मिशन के तहत गुणवत्तापूर्ण बीज और पौधें उत्पादन एवं उनके वितरण के लिए सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती हैं। सभी राज्यों में नर्सरी का एक नेटवर्क होगा जिसमें गुणवत्तापूर्ण पौधें उत्पादन हो, जो केंद्र या राज्य की सहायता के माध्यम से स्थापित किए गये हो। बागवानी पौधें की नर्सरी उत्पादन के लिए (बागवानी फसलों की और पुराने फल बगीचे एवं अतिरिक्त क्षेत्र फल उत्पादन में लाने के लिए) उच्च तकनीक नर्सरी और छोटे नर्सरी की स्थापना के लिए सहायता सरकारी एवं निजी क्षेत्र को प्रदान की जाती हैं। उच्च तकनीक नर्सरी हेतु 1–4 हेक्टेयर के बीच का क्षेत्र होना अनिवार्य हैं जिसमें बारहमासी फलों की पौधें प्रति वर्ष 50,000 तक उत्पादन करना अनिवार्य होता हैं। पौधों की उत्पादन विधिवत, उनकी गुणवत्ता के लिए प्रमाणित कर दिया जाएगा। इसके अलावा नीचे दिये गए अवयव भी शामिल है जिनके लिए भी सहायता दी जाती हैं।

(1) फेंसिंग

(2) उन्नत किस्मों के शांकुर / मदर ब्लॉक

(3) रूट स्टॉक ब्लॉक

(4) नेट हाउस

(5) सिंचाई सुविधाएं

(6) उच्च तकनीक ग्रीन हाउस और अंदर से कीट रहित नेट एवं मिस्ट सिस्टम।

(7) हार्डनिंग / कीट सबूत नेट हाउस के साथ लाइट स्क्रीनिंग और फव्वारा सिंचाई प्रणाली में रखरखाव।

(8) पम्प हाउस जो की पौधों कि सिंचाई और पानी भंडारण के लिए टैंक के लिए पर्याप्त सिंचाई में कम से कम 2 दिन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए हो।

(9) सॉइल सोलररायजेशन – स्टीम सोलररायजेशन बॉयलर के साथ।

- एक हेक्टेयर की लघु नर्सरी के क्षेत्र के लिए ग्रीन हाउस और नेट हाउस का प्रावधान किया जाएगा। लघु (छोटी) नर्सरी को प्रति वर्ष 25,000 पौधे तैयार करना अनिवार्य हैं जिसमे बारहमासी पौधें जैसे की फल पौधों और सुगंधित वनस्पति के पौधें हो और उनकी विधिवत एवं गुणवत्ता के लिए प्रमाणित उत्पादन करेगा।
- नर्सरी के बीज और पौधें सामग्री के संबंध में कानून के तहत नियंत्रित किया जाएगा। नर्सरी की स्थापना उत्पादन क्षेत्र में ही होना चाहिए इसके लिए प्रयास किया जाएगा।
- नर्सरी को मान्यता मिलने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। एम.आई.डी.एच. के तहत बागवानी क्षेत्र के लिए पौधे केवल मान्यता प्राप्त नर्सरी से प्राप्त किये जाएंगे।
- वार्षिक कार्य योजना में केवल मान्यता प्राप्त नर्सरी से अच्छी गुणवत्ता रोपण सामग्री की उपलब्धता के स्तर तक क्षेत्र विस्तार लक्ष्य होगा।
- स्टेट हॉर्टिकल्चर मिशन के तहेत यह सुनिश्चित किया जाएगा कि सभी नर्सरी एम.आई.डी.एच. के तहत स्थापित की गयी उनको अठारह महीने की अवधि के भीतर मान्यता प्राप्त होनी चाहिए। यह मान्यता राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों, आई.सी.ए.आर. आदि जैसे संस्थानों की के माध्यम से हो।
- सार्वजनिक और निजी क्षेत्र में नर्सरी के उन्नयन के लिए बुनियादी सुविधाओं मान्यता मानदंडों को पूरा करने के लिए सहायता का लाभ उठा सकते हैं।
- इसके अलावा, राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड अनुबंध VII में दिए गए मानदंडों के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र के लिए मदर ब्लॉक और रूट स्टॉक नर्सरी, साथ ही 100% सहायता से नर्सरी मान्यता की स्थापना के लिए परियोजना हैं।

सब्जियों की नर्सरी तैयार करने की विधियाँ

सब्जियों की पौध तैयार करने के लिए किसान भाइयों को स्थान चुनाव से लेकर उपयुक्त मिट्टी, खाद, उर्वरक, आवश्यक यंत्र, उन्नत प्रजाति के बीज, सिंचाई के उचित साधन, बीज बुआई, बीमारी व कीड़ों से बचाव के लिए उचित प्रबन्धन व पौधो को ढकने के लिए विभिन्न प्रकार की जाली इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है जिनका विस्तृत विवरण इस अध्याय में दिया गया हैं।

1. उचित माध्यम

सब्जियों की स्वस्थ पौध तयार करने के लिए उचित माध्यम का होना आवश्यक है ताकि नवविकसित पौधों की जड़े भूमि में अच्छी तरह पकड़े रहें व उचित विकास के लिए आवश्यक पोषण प्राप्त

कर सकें। एक आदर्श बीज के जमाव और पौधों की बढ़वार के लिए उचित माध्यम के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं।

– उनका पीएच मान लगभग उदासीन (पीएच– ७.०) हो।

– उसमें उचित जलधारण करने व वायुसंचार करने की शक्ति हो।

– खरपतवार, हानिकारक रोग, कीटाणुओं, सूत्रकुर्मी, इत्यादि से मुक्त हों।

– स्थानीय स्तर पर व सस्ते दरों पर उपलब्ध हों।

– भौतिक व रासायनिक संरचना अच्छी हो ताकि वे पौधों को सुगमतापूर्वक स्थिर रख सकें।

2. कम्पोस्ट या गोबर की सड़ी खाद

पौध उगाने के लिए कम्पोस्ट खाद, गोबर की सड़ी खाद, केंचुए की खाद उपयुक्त होती हैं। इनमें पौधों हेतु आवश्यक लगभग सभी तत्व पाये जाते हैं तथा पौधों के उचित विकास में सहायक होते हैं। इनके प्रयोग से मृदा के भौतिक संचरना सुधरती है और जलधारण करने की क्षमता बढ़ती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि ये सभी खादें अच्छी प्रकार से सड़ी हुईं हों अन्यथा उनमें दीमक लगने की सम्भावना रहती है। पौधशाला मे प्रयोग की जा रही खाद को महीन करके जाली की सहायता से छान लें तथा छनी हुई खाद पौध उगाने के लिये प्रयोग करें।

3. सब्जियों की उन्नतशील प्रजातियों का चयन

सब्जियों की उन्नतशील प्रजातियों एवम् उनके प्राप्ति के स्त्रोत का भी काफी महत्व है। क्योंकि पौधों का पूरा जीवन, उनकी फलन क्षमता अधिकतर बीजों की गुणवत्ता पर ही निर्भर करती है।

उपरोक्त सब्जियों की पहले पौध तैयार की जाती है, और उनका रोपण किया जाता है। परन्तु बदलते परिवेश में देखा जा रहा है की किसान भाइयों को उन्हीं सब्जियों की अच्छी कीमत मिल पाती है जो सब्जियाँ सबसे पहले बाजार में आ जाती हैं उनकी अच्छी कीमत मिलती है और जैसे–जैसे सब्जियों की अधिक मात्रा बाजार में आने लगती है उनकी कीमत कम होने लगती है। ऐसी परिस्थिति में समय से पूर्व सब्जियों की पौध तैयार करके खेती करना लाभदायक सिद्ध हो सकता है। इनमें यदि कद्दूवर्गीय सब्जियों की अगेती खेती की जाय और इनके पौधे प्रोट्र एवम पॉलिथीन की बैग में दिसम्बर–जनवरी माह में ही उगा लिए जाय और फ़रवरी माह में तापमान अनुकूल होते ही उनका रोपण करके अन्य लोगों की तुलना में एक से डेढ़ माह पूर्व फलत लेकर अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते हैं।

4. पौधशाला की तैयारी

पौधशाला की मिट्टी की एक बार गहरी जुताई या फावड़े की सहायता से खुदाई अत्यन्त आवश्यक है। जुताई या गुड़ाई करके मिट्टी भुरभुरी बना लें तथा उसमें सभी खरपतवार निकाल दें। क्यारी में प्रति वर्ग मीटर की दर से २ कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद या ५०० ग्राम केंचुएं की खाद डाल कर मिट्टी में अच्छी प्रकार मिला दें। इससे बीज का जमाव में सुगमता होती है।

5. भूमिशोधन

हानिकारक जीवाणुओं से बचाव के लिए भूमि शोधन अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा मिट्टी में पहले से उपस्थित हानिकारक जीवाणु पौधों को क्षति पहुँचाते हैं जो न केवल पौध तैयार करने तक ही सीमित रहते हैं बल्कि खेत में रोपण के पश्चात भी पौधों को हानि पहुँचाते हैं। भूमि शोधन कई प्रकार से किया जा सकता है, मृदा सौर्यीकिरण विधि, जैविक विधि और रासयानिक विधि से किया जा सकता हैं।

6. बीजशोधन

बीज शोधन कैप्टान या थीरम नाम की फफूंद पाउडर की ३ ग्राम मात्र प्रति किलोग्राम बीज की दर से करें। मिर्च तथा बैंगन के बीज का शोधन कार्बेण्डजीम (बाविस्टीन २.५ ग्राम/किलग्राम बीज) से करना बहुत लाभकारक है। दवा व बीज बर्तन में डालकर ढककन बंद कर दे और अच्छी प्रकार से हिलाएं ताकि दवा बीज के चारों तरफ अच्छी प्रकार चिपक जाए। कुछ सब्जियाँ जैसे टिंडा, करेला, तरबूज इत्यादि में छिलके कठोर होते हैं। अतः इनको कैप्टान के ०.२५ प्रतिशत (२.५ ग्राम/लीटर पानी) घोल में भिगोकर बुआई करने से फफूंद जनित बीमारियों का प्रकोप कम होता है।

7. क्यारियाँ बनाना

पौधशाला में बीजों की बुआई करने के लिए क्यारियाँ मौसम के अनुसार अलग–अलग प्रकार से बनाई जाती हैं। वर्षा ऋतु में हमेशा जमीन की सतह से १५–२० से.मी. ऊँची क्यारियाँ बनानी चाहिए जबकि रबी मौसम में पौध समतल क्यारियों में भी उगा सकते हैं। ऊँची क्यारियों में पौध अच्छी प्रकार विकास करते हैं। क्यारियों की चौड़ाई एक मीटर या इससे कम और लम्बाई आश्यकतानुसार ३ से ४ मीटर रखते हैं।

8. बीज की बुआई

क. छिटकवां विधिः क्यारियों में बीज की बुआई किसान भाई ज्यादातर छिटकवाँ विधि से करते हैं जिससे बीज एक समान नहीं गिरते और जमाव होने पर पौधे किसी–किसी स्थान पर घना होने के कारण तने पतले व लम्बे हो जाते हैं। यदि छिटकवाँ विधि से ही पौध तैयार करनी है तो यह ध्यान रखें कि पौध जमाव के बाद १.० से.मी. कि दूरी पर पौध छोड़ कर अन्य को उखाड़ दें।

ख. कतारों में बीज की बुआई : यह विधि सर्वोत्तम मानी जाती है क्योंकि सभी पौधे लगभग एक समान दूरी पर रहने के कारण स्वस्थ व मजबूत होते हैं। इस विधि में सर्वप्रथम क्यारी की चौड़ाई के समानान्तर ५ से. मी. कि दूरी पर ०.५ से.मी. गहरी पंक्तियाँ बना लेते हैं तथा इन्ही पंक्तियों में बीज १.० से.मी. कि दूरी पर डालते हैं। बीज बोने के बाद उन्हें कंम्पोस्ट, मिट्टी व रेत के मिश्रण (१:१:१) से ढँक देते हैं। इस प्रकार से तैयार पौधे घना ना होने के कारण पद गलन बीमारी की समस्या से बच जाते हैं। और पौधे स्वस्थ तथा मजबूत होते हैं।

ग. प्रतिकूल मौसम में पौध तैयार करना : प्रतिकूल परिस्थिति में सब्जियों को पौध प्रो–ट्रे नर्सरी तैयार करे (६८ प्लग के ट्रेः टमाटर, बैंगन, मिर्च) और (५० प्लग के ट्रेः खीरा, तरबूज इत्यादि) तैयार करें। नारियल का बुरादा और सड़ी हुई गोबर मिश्रण (१:१) के अनुपात में मिलाकर प्रो–ट्रे के लिए सब्जियों की नर्सरी तैयार करने के लिए उचित माध्यम हैं। बीज को प्रो–ट्रे में बुआई करके इनको उचित वृद्धि के लिए पालीहाउस या शेडनेट हाउस में रखते हैं ताकि अनुकूल तापमान पाकर पौध तैयार हो जाए।

9. बीजों को उर्वरक मिश्रण से ढकना

क्यारियों में बीज बुआई करने के बाद उनको ढकना अत्यन्त आवश्यक है। अतः मिट्टी, सड़ी हुई गोबर या कम्पोस्ट की खाद व बालू तीनों को बराबर अनुपात में मिलाकर (१:१:१) क्यारी में इस प्रकार डालें कि सभी बीज ढँक जाए और बीज खुला न दिखाई पड़े।

10. क्यारी को पलवार से ढकना

क्यारी में बीजों को ढकने के बाद क्यारी को स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सरपत, सरकण्डा, नरई, या अन्य घासं फूस की पतली तह से ढँकते हैं ताकि नमी बनी रहे और सिंचाई करने पर पानी सीधे ढके हुए बीजों पर न पड़े अन्यथा बीज का जमाव प्रभावित होगा। शुरू के पाँच छः दिनों तक हजारे की सहायता से हल्की सिंचाई करें ताकि मिट्टी ज्यादा पानी पाकर बैठ ना जाए।

11. सिंचाई

बीज बुआई के बाद प्रारम्भ के ५–६ दिनों तक क्यारी को फुहारे की सहायता से हल्की सिंचाई करें व बीज जमने के बाद आवश्यकतानुसार सिंचाई फुहारे से कर सकते हैं। पौध उखाड़ने के ४–५ दिन पूर्व सिंचाई बंद करे ताकि पौधों में प्रतिकूल वातावरण सहन करने की क्षमता विकसित हो जाये व पौधे कठोर हो जाये। पौध उखाड़ने से पहले हल्की सिंचाई कर दें। इससे पौधे आसानी से उखड़ जाते हैं और जड़े टूटती नहीं।

12. क्यारियों से पलवार हटाना

क्यारियों से घास फूस की परत जो बीज बुआई के बाद ढक गया था को समय से क्यारियों से हटा लेना चहिए। यह सावधानी पूर्वक देखना चाहिए कि जैसे ही ५० प्रतिशत बीजों से सफेद धागेनुमा आकार निकलता दिखे पुआल या सरपत जिससे भी क्यारी ढके हों हटा ले अन्यथा मुलांकुर बड़ा होने पर पौधे कमजोर होकर जड़ के पास से ही गल कर गिरने लगते है।

13. खरपतवार नियंत्रण

क्यारियों में यदि खरपतवार उग आयें तो उन्हें बराबर निकालते रहना चाहिए। व्यावसायिक स्तर पर पौधशाला तैयार करते समय खरपतवार नाशी जैसे स्टाम्प की ३ मी. ली. मात्रा/लीटर पानी की दर से घोलकर बीज बुआई के ४८ घंटे के अन्दर अच्छी तरह छिड़क देते हैं। इससे खरपतवार की समस्या का नियंत्रण हो जाता है और यदि बाद में कोई खरपतवार उगते हैं तो उन्हें निकाल देते हैं।

14. पोषक तत्व प्रबन्ध

साधारणतया सब्जियों की पौध तैयार करते समय रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग न करें। यदि मिट्टी उपजाऊ नहीं है तो ३–४ कि.ग्रा. सड़ी हुई कम्पोस्ट खाद प्रति वर्ग मीटर की दर से मिट्टी में अच्छी प्रकार से मिला देवें। यदि बढ़वार की अवस्थाओं में पौधों में पोषक तत्वों की कमी का आभास हो तो घुलनशील उर्वरक एन.पी.के. (१६:१६:१६ या १५:१५:१५) की २ ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल कर एक सप्ताह के अन्तराल पर पौधों पर पर्णीय छिड़काव करें। यदि खेत की मिट्टी में उपजाऊपन अधिक हो और पौधा बहुत तेजी से विकास कर रहा हो तो सिंचाई कम करें।

बगवानी पौधशाला की स्थापना ले–आउट एंव प्रबंधन

अकथ सिंह एंव पी. आर. मेघवाल

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

नर्सरी स्थापना के लिए ध्यान रखने योग्य बातें

स्वस्थ नर्सरी तैयार करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना जरूरी हैं।

स्थान का चयन : पौधशाला स्थापित करने के लिए ऐसे स्थान का चयन करना चाहिए जहाँ पर्याप्त मात्रा में प्रकाश उपलब्ध होता हो, सिंचाई की सुविधा तथा पानी के निकास की समुचित व्यवस्था उपलब्ध हो। पानी में यदि लवण की मात्रा अधिक है तो उसे सिंचाई के लिए उपयोग नहीं करना चाहिए। स्थान विशेष में आवागमन की सुविधा का भी ध्यान रखना चाहिए।

भूमि का चयन : पौधशाला के लिए जीवांश युक्त दोमट भूमि जिसका पी.एच. मान 6 से 7.5 हो, उपयुक्त होती है। अधिक बलुई भूमि तथा भारी चिकनी भूमि में वायु की कमी के कारण पौधों की वृद्धि अच्छी नहीं होती। अधिक क्षारीय, लवणीय उसरीली तथा कंकरीली भूमि का भी चयन पौधशाला के लिए नहीं करना चाहिए।

मृदा उपचार : पौधशाला की मिट्टी को कीट तथा रोग से मुक्त रखने के लिए मिट्टी का उपचार करना अति आवश्यक है। मृदा उपचार निम्नविधियों से कर सकते है।

- कीटनाशक दवाईयों जैसे थिमेट को मिट्टी में मिलाकर कीटों से मुक्त किया जा सकता है।
- यदि मृदा में दीमक की समस्या है तो मिट्टी की तैयारी करते समय क्लोरपारीफास (2 मिली./ली.) के मिश्रण का छिड़काव करने से इसकी रोकथाम की जा सकती है।
- पौधशाला में लगने वाले मृदा जनित रोगों से बचाव हेतु कवकनाशक दवाईयों जैसे बेवस्टीन (2 ग्राम/लि.) आदि का घोल बनाकर मिट्टी को अच्छी तरह तर कर दें
- एक भाग फारमेलडीहाईड तथा सौ भाग पानी को अच्छी तरह मिलाकर फारमेलिन का घोल तैयार किया जाता है। इस घोल की पाँच लीटर मात्रा एक वर्गमीटर में छिड़काव करें। तत्पश्चात इसे पालीथीन से अच्छी तरह आठ दिन तक ढक दें। उसके बाद पालीथीन हटाएं और भूमि को 6–10 दिन खुला छोड़े। इस उपचार से पौधशाला की मिट्टी में लगने वाले रोगों पर आसानी से नियंत्रण किया जा सकता है। पालीथीन की थैलयों में उपयोग होने वाले मिश्रण को भी उपयुक्त विधि से उपचारित कर लेना चाहिए।

- शुष्क क्षेत्रों में जहाँ सूर्य का प्रकाश बहुत तेज है तथा गर्मियों में तापमान अधिक रहता है उस समय मिट्टी का सोर्यीकरण किया जाना चाहिए। इस विधि में मिट्टी को बारीक बनाने तथा गोबर खाद मिलाने के पश्चात अच्छी तरह पानी से भिगो देना चाहिए तथा उसके ऊपर 250 गेज की पारदर्षी पालीथीन बिछा कर 3–4 सप्ताह के लिए छोड़ देना चाहिए। इससे मिट्टी में उपस्थित कीड़ों के अण्डे, बीमारियों के रोगाणु एवं खरपतवार के बीज नष्ट हो जायेंगे। यह कार्य अप्रेल से जून तक किया जा सकता है।

नर्सरी का ले–आउट एवं प्रबंधन

नर्सरी

आमतौर पर नर्सरी क्यारी तीन फीट चौड़ी व पन्द्रह से बीस फीट लम्बी होती है परन्तु सुविधानुसार लम्बाई घटाई या बढाई जा सकती है। इन क्यारियों से 1 फीट गहरी मिट्टी खोदकर, 7 से 10 दिन तक खुला छोड़ देते हैं जिससे भूमि में उपस्थित कीट, कवक अथवा जीवाणु नष्ट हो जायें।

इसके पश्चात् बाजार में नर्सरी हेतु उपलब्ध चार इंच चौड़ाई व दस इंच लम्बाई (4″×10″) की पॉलीथीन थैलियां लेकर नीचे के मुंह की और पाँच इंच लम्बाई के भाग में बोरी सिलाई की सुऐं से छः छिद्र कर दें। इस प्रकार सुऐं से प्रत्येक थैली के आधे भाग में 12 छिद्र हो जायेगें। इसके बाद थैलियों को भरने के लिए नर्सरी क्यारी में ही छनी हुई गोबर की खाद चिकनी मिट्टी व बालू रेत को 1:1:1 के अनुपात में अर्थात् समान मात्राा में लेकर मिश्रण बना लें तथा फिर थैलियां भरना शुरू करें, थैलिया भर कर क्यारियों में सीधी रखें जिससे पौधों व कलम लगाने व पानी देने में आसानी रहें।

मातृ पौध प्रक्षेत्र

अच्छी गुणवत्ता वाली पौधशाला की स्थापना में मातृ पौध का महत्वपूर्ण स्थान है। मातृ पौधे किसी अच्छी पौधशाला से चयन किये गये पौधों से प्रवर्धित करके रोपण करने चाहिए। इन पौधों की फलन, कीट और व्याधियों के प्रति अभिक्रिया कुछ वर्षो तक देखने के बाद ही इनसे आगे प्रवर्धन हेतु सांकुर लेना चाहिए। सांकुर या कलियाँ हेतु पौधशाला में सभी पौधे लगे होने चाहिए। इन पर नामपत्र तथा उनका रेखांकन भी उपलब्ध रहना चाहिए। नाम पत्र पर किस्म का नाम, पौधे की आयु, प्रत्येक वर्ष फलोत्पादन की मात्रा, फलों के गुण, कीट एवं व्याधियों के प्रति अभिक्रिया इत्यादि का उल्लेख रखना चाहिए।

यदि प्रारम्भ में ही रोगग्रसित, अनुत्पादक मातृ पौधे से प्रवर्धन किया गया हो तो बाद की देख–रेख सब बेकार होगी। ऐसे पौधों से अच्छे बाग की स्थापना सम्भावित नहीं रहती।

फलदार पौधों की नर्सरी स्थापित करने के लिये आवश्यक भूमि के चुनाव के उपरान्त उस भूमि में मातृ/पैतृक पौधें निर्धारित खेतों में लगाया जाना चाहिए। मोटे तौर पर जिस क्षेत्र में वह नर्सरी स्थित हो वहां आस–पास मांग के अनुसार प्रजाति/किस्मों के फलदार पौधों के मातृ पैतृक पौधे लगाए जाने चाहिए। मातृ पौधों के खेतों का निर्धारण करने के लिए उपलब्ध भूमि का ले–आऊट प्लान पहले ही तैयार कर लेना चाहिए।

शुष्क क्षेत्रों के प्रमुख फलदार वृक्ष तथा मातृ पौध हेतु उचित फासला

फलदार पौधों का नाम	दूरी (मीटरों में) (कतार से कतार व पौधा से पौधा)
बेर	6×6
अनार	5×5
अमरूद	5×5
खजूर	5×5
गोंदा	6×6
नीबू व लैमन	5×5
करोंदा	4×4
आंवला	8×8
बेल	8×8
पपीता	2×2
खेजड़ी	5×5

पौधशाला की लेआउट करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. उत्तर–पश्चिम दिशा में वायुरोधक पौधे लगाए जाने चाहिए। जो सर्दियों में पश्चिमी ठण्डी हवाओं की भी रोकथाम करें।
2. दक्षिण तथा पूर्व में ऐसे फलदार बीजू पौधे लगाएं जो तेज हवा को रोकने का कार्य करने के साथ नर्सरी के लिए बीजू पौधों के बीजों की आवश्यकता की भी पूर्ति कर सकें।

3. एक ब्लॉक में विभिन्न प्रकार के फलदार पौधों के क्षेत्र विषेष के लिए संस्तुत किस्मों के मातृ पौधों को लगाने का प्रावधान करें। यदि संभव हो तो मातृ ब्लाक में कीट अवरोधक जाली लगाने का प्रावधान करें।
4. दूसरे ब्लॉक मे बीजू पौधों व कलमों की क्यारियों के लिए जगह निर्धारत करें। साथ में कलम किए पौधों के लिए स्थान, स्टूलिंग आदि के लिए मातृ पौधों वाला स्थान भी पहले से निर्धारित करके उन पौधों की रोपाई करें। मुख्य रास्ते के दोनों तरफ आंवाला, बेलपत्र, फालसा, पपीता, गूंदा, अनार, अंजीर इत्यादि भी लगा सकते हैं।
5. ग्रीन हाऊस, पालीहाउस, विक्रय पटल तथा अन्य आवश्यक संरचना मुख्य सड़क के साथ बीच के स्थान पर बनाए जाने चाहिए।
6. पत्तियों या अन्य बेकार घास–फूस की कम्पोस्ट बनाने के लिए नर्सरी के उत्तर–पश्चिम कोने में खाद के गड्डे बनाने चाहिए। आजकल केंचुए पालन से उत्तम किस्म की खाद वर्मीकम्पोस्ट बनाई जा सकती है जिससे सभी प्रकार के सड़ने वाला अवशेष को खाद में बदला जा सकता है।
7. सिंचाई की उचित व्यवस्था हेतु यथासम्भव भूमिगत पानी की पाईप का प्रावधान करें तथा पौधों की लाईनों में से पानी का स्थाई थाला न बनाएं।
8. आधुनिक नर्सरियों में प्रो–ट्रे, प्लास्टिक क्रैट्स, मृदा रहित मिश्रण (कोकोपीट, वर्मीकुलाइट, परलाइट), मॉस घास, नैट हाऊस, पोली हाऊस, कुहासा आदि को उचित स्थान अवश्य दें।

जनन के प्रकार :

जनन मुख्यतया लैंगिक अथवा अलैंगिक रूप में होता है। लैंगिक जनन में मादा तथा नर कोशिकाओं के मिलन के फलस्वरूप बीज निर्माण द्वारा संतति की उत्पत्ति होती है। इस विधि में अर्धसूत्री विभाजन द्वारा गुणसूत्रों की संख्या आधी तथा निषेचत के बाद पुनः सामान्य हो जाती है। संतति में आधे गुणसूत्र नर तथा आधे मादा से आते है। नयी संतति में किसी पैतृक के स्वरूप, इनसे भिन्न और आपस में भी विविधता की सम्भावना होती है। बीज जनन लैंगिक जनन से सम्बोधित किया जाता है। प्रायः लैंगिक जनन में विविधता की अधिक सम्भावना रहती है, जिसके कारण प्रकृति में नयी–नयी किस्मों की उत्पत्ति होती रहती है।

लैंगिक प्रवर्धन

बीज द्वारा जनन को लैंगिक प्रवर्धन कहते है। कुछ फल वृक्षों तथा मुख्यतः मूलवृंत (रूटस्टाक) के लिए पौधे प्रायः बीज द्वारा ही प्रवर्धित किये जाते है। प्रारम्भ में जब कायिक विधियों की जानकारी नहीं थी,

उस समय फल वृक्ष प्रवर्धन का यही एक मात्र व्यावसायिक सहारा था। लैंगिक प्रवर्धन के लाभ और सीमाओं का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया हुआ है।

लाभ :

1. बीज द्वारा प्रवर्धन आसान और सस्ती विधि हैं।
2. बीज पौधे दीर्घजीवी, अधिक फलोत्पादक तथा सहिष्णु होते है।
3. कुछ फल वृक्षों, जैसे पपीता इत्यादि जिनमें कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धन नहीं हो पाता, उनके प्रवर्धन का यही एक मात्र साधन है।
4. बीज द्वारा प्रवर्धन करते रहने पर विविधता की अधिक सम्भावनायें रहती हैं, जिसमें कभी–कभी उत्तम किस्म के पौधों की उत्पत्ति हो जाया करती है।
5. जब कभी संकरण द्वारा फलोन्नती कार्य किया जाता है, तो संकर पौधा बीज द्वारा ही प्राप्त होता है।
6. कुछ फल वृक्षों जैसे नीबू प्रजाति में बहुभ्रूणता पाई जाती है। इनमें बीजांडकायिक पौधे, पैतृक समरूप होते है। अतः ऐसी अवस्था में बीज द्वारा ही प्रवर्धन अपरिहार्य हो जाता है।
7. मूलवृंत, जिन पर सांकुर शाखा का प्रत्यारोपण किया जाता है, का प्रवर्धन मुख्यतः बीज द्वारा ही किया जाता है।

सीमाएं :

1. बीजू पौधों में किशोरावस्था अधिक होने के कारण सामान्यतः फलत देर से शुरू होती है।
2. बीजू पौधे की वृद्धि, फलन तथा फलों के गुण में समरूपता नहीं होती है।
3. बीजू पौधे आकार में बड़े होते है, परिणामतः उद्यानिक क्रियाओं जैसे फलों की तुड़ाई, दवाओं के छिड़काव, कटाई छंटाई इत्यादि सुगमता पूर्वक नहीं किये जा सकते।
4. प्रायः बीजू पौधों से प्राप्त फल निम्नकोटि के होते है।
5. कुछ बीजोढ़ विषाणु जैसे निम्बू में सोरोसिस, का संचरण बीज द्वारा होता है, अतः ऐसी अवस्था में बीज द्वारा प्र्वधन का अनुमोदन नहीं किया जाता है।
6. चयन किये गये उन्नतशील फल–वृक्षों का प्रवर्धन बीज द्वारा करते रहने पर उनके गुणों का ह्रास होता रहता है। अतः ऐसी अवस्था में कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धन आवश्यक होता है।
7. बीज द्वारा प्रवर्धन करने पर मूलवृंत लाभ नहीं मिल पाता है।

अलैंगिक अथवा कायिक प्रवर्धन

बीज के अतिरिक्त पौधे के अन्य किसी भाग और असंगजनिक भ्रूण से प्रवर्धन को अलैंगिक अथवा कायिक प्रवर्धन कहते है। आजकल फल वृक्षों का प्रवर्धन मुख्यतः कायिक विधियों द्वारा ही करने का प्रयास किया जा रहा है। कायिक प्रवर्धन के लाभ और सीमाएं निम्नवत हैंः

लाभ :

1. कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित सभी पौधे, पैतृक समरूप होते हैं जिनके फलस्वरूप इनकी वृद्धि, फलोत्पादन तथा फलों के गुण में समरूपता पायी जाती है।
2. कुछ फल वृक्ष (जैसे केला आदि) जिनका प्रवर्धन बीज द्वारा नहीं हो पाता, अर्थात् जिनमें बीज निर्माण ही नहीं होता, उनके प्रवर्धन का यही एक मात्र सहारा हैं।
3. कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धन पौधे आकार में छोटे होते हैं तथा इनमें किशोरावस्था कम होने के कारण फलन शीघ्र प्रारम्भ हो जाता है। परिणामतः इनकी देख–रेख में भी सुविधा होती है।
4. अनुत्पादक तथा देशी किस्म के फल वृक्षों का अच्छे उत्पादक पौधों में परिवर्तन तथा जीर्णोद्धार कायिक विधियों द्वारा ही सम्भव होता है। यह प्रक्रिया कलम बंधन अथवा चष्मा द्वारा की जाती है।

सीमाएं :

1. कायिक विधियों से प्रवर्धित पौधों की आयु अपेक्षाकृत कम होती है।
2. कायिक विधियों से प्रवर्धन करने पर विविधता की सम्भावना बहुत कम होती है।
3. कुछ फल वृक्षों में विषाणुओं का संचरण संक्रमित सांकुर शाखा से होता है। अतः विषाणु संक्रमित शाखा से प्रवर्धन करने पर फलोत्पादन कम होने की सम्भावना होती है।

अलैंगिक अथवा कायिक प्रवर्धन की प्रमुख विधियाँ

कलम से प्रवर्धन

जब पौधे के किसी भाग को मातृ पौधे से अलग करके, इस प्रकार उपचारित किया जाए कि पौधे प्रवर्धित हो सके तथा अपना अलग अस्तित्व कायम रख सकें, इसे कलम कहते है।

शाखाओं की परिपक्वता एवं पोषण दशाएँ : मातृ पौधे से कलम प्राप्त करते समय उनकी परिपक्वता तथा पोषण दशाओं का मूलन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। काब्रोज विशेषकर स्टार्च की अधिकता एवं नाइट्रोजन समकक्ष रसायनों की कम आपेक्षिक सान्द्रता मूलन प्रोत्साहित करती है। कच्ची शाखा कलम में कार्बोज का संग्रहण कम होने के कारण मूलन की सम्भावना बहुत कम होती है। यही कारण है कि तेजी से वृद्धि करती जलांकुरों को कलम के रूप में प्रयोग करने का अनुमोदन नहीं किया जाता हैं।

मूलन के समय वातावरण की दशाएँ : यह निश्चित हो गया है कि कलमों में विद्यमान पत्तियाँ एवं कलिकायें मूलन में सहायक होती है। परन्तु इनके बने रहने से कभी–कभी नमी इतनी अधिक वाष्पीकृत हो जाती है कि मूलोत्पति के पहले ही कलम को सूख जाने की आशंका रहती है। सुगमतापूर्वक मूलन वाली कलम में शीघ्र ही पानी का अवषोषण शुरू हो जाता है। परन्तु देर से मूलन वाली कलम में वाष्पोत्सर्जन प्रक्रिया की दर धीमी करना आवश्यक होता है। इसे पत्तियों की थोड़ी संख्या कम करके तथा कलम के आस–पास नमी बढ़ाकर की जा सकती है। आजकल कुहासे (मिस्ट) का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

कुहासे के प्रयोग से कलम में विद्यमान पत्तियों के आस–पास वातावरण के बराबर नमी बनी रहती है। नमी में समानता होने के कारण वाष्पोत्सर्जन और श्वसन प्रक्रिया धीमी हो जाती है। साथ ही प्रकाश की उपलब्धता के कारण प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया सामान्य चलती रहती है। अतः पत्तियों द्वारा निर्मित भोज्य एवं मूलन सहकारक रसायन मूलोत्पत्ति में सहायक होते है। कुहासे द्वारा पानी के छिड़काव के साथ–साथ पोषण तत्व जैसे नाइट्रोजन, बोरान आदि तथा कीट एवं रोग नाशक रसायनों का छिड़काव भी किया जा सकता है।

कलम का उपचारण

वृद्धि नियन्त्रक रसायन : कलम का उपचारण वृद्धि नियन्त्रक रसायन जैसे इण्डोल ब्यूटाइरिक एसिड नेप्थलीन एसिटिक एसिड आदि किया जा सकता है। कभी–कभी दो रसायनों को एक साथ प्रयोग करने पर योगवाही प्रभाव पड़ने का भी अनुमोदन किया गया है। वृद्धि नियन्त्रक रसायन जैसे रूटोन ए, बी रूटैक्स, सेराडेक्स आदि का उपयोग व्यावसायिक स्तर पर कलम को उपचारित करने के लिए किया जाता है। कलम के आधार भाग को इनमें से किसी एक रसायन में डुबोकर लगाने से अधिक सफलता मिलती है।

कवकनाशी द्वारा उपचारण : कलम का रोपण नमयुक्त मूलन माध्यम में किया जाता है। अतः नमी की अधिकता होने पर विभिन्न प्रकार के कवकों के संक्रमण के कारण मूलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि रोपण के पहले वृद्धि नियन्त्रक रसायनों के साथ–साथ कवकनाशी रसायनों का उपचारण करना लाभप्रद होता है। कलमों को उपचारण हेतु प्रायः कैप्टान, बेवस्टीन आदि का प्रयोग किया जाता है।

चश्मा (बड़िंग) विधि द्वारा फल–वृक्ष प्रवर्धन

कलम बंधन की विभिन्न विधियों में जहाँ सांकुर के रूप में चयन किये गये मातृवृक्ष की कई कलिकाओं वाली छोटी टहनी प्रयोग की जाती हैं, वहीं पर चष्मा की विभिन्न विधियों में सांकुर हेतु मातृ वृक्ष का छोटा भाग, जिसमें केवल एक वानस्पतिक कली, लकड़ी अथवा बिना लकड़ी के साथ प्रयोग की जाती है। दोनों में मिलाप सिद्धान्त एक होने के कारण कभी–कभी इसे चश्मा कलम बंधन (बड ग्राफटिंग) के नाम से भी सम्बोधित किया जाता हैं।

चश्मा द्वारा प्रवर्धन ऐसे समय में किया जाता है जब पौधों में सक्रिय वृद्धि होने के कारण रस का संचार होता रहता है। इस समय सांकुर शाखा में कलिका सुगमतापूर्वक निकल जाती है और मूलवृंत पर भी स्थान बनाना आसान होता है। साथ ही एधा कोशिकाओं में विभाज्य ऊतक कोषा विभाजित होते रहने के कारण मिलाप की अच्छी सम्भावना होती है। चष्मा की विभिन्न विधियों द्वारा प्रवर्धित पौधे सामान्यतः प्रारम्भ से ही मजबूत होते है और मातृ पौधे के कलम बंधन की अपेक्षा अधिक संख्या में पौधे प्रवर्धित किए जा सकते है। अतः यदि सीमित संख्या में सांकुर उपलब्ध हो,तो चश्मा द्वारा ही प्रवर्धन किया जाना चाहिए।

चश्मा हेतु मूलवृंत्त का चयन

कलम बंधन की भाँति, चश्मा द्वारा प्रवर्धन हेतु मूलवृंत की आवश्यकता पड़ती है। फल–वृक्ष प्रवर्धन में देशी किस्म के बीजू या वानस्पतिक विधियों (कलम) द्वारा प्रवर्धित मानक मूलवृत्तों का प्रयोग किया जाता है। मूलवृंत, प्रवर्धित पौधे का वृद्धि, नियन्त्रण के साथ–साथ भूमि और जलवायु के प्रति सहिष्णुता व कीट–व्याधि के प्रति अवरोधकता भी रखते हैं, जिनका समुचित उपयोग किया जाना चाहिए। जहाँ तक संभव हो सके मूलवृंत्त और सांकुर कीट एवं व्याधिक के संक्रमण से मुक्त होने चाहिए।

वर्षा ऋतु में चश्मा चढ़ाना

इसके अन्तर्गत मध्य जून से मध्य सितम्बर तक का समय आता है। चश्मा की विभिन्न विधियों द्वारा प्रवर्धन का यह सर्वोत्तम समय होता है। इस समय तक मूलवृंत्त में उचित वृद्धि हो जाती है और अभी रस का संचार होता रहता है। साथ ही अब तक कलियों का पूर्ण विकास भी हो जाता है। यही कारण है कि उष्ण फलों जैसे आंवला, बेर, बेल आदि का चष्मा की विभिन्न विधियों द्वारा इस अवधि में प्रवर्धन किया जाता हैं।

सांकुर को मातृवृक्ष से काटते ही थोड़ा पुर्णवृत छोड़ते हुए सभी पत्तियाँ निकाल देनी चाहिए। सांकुर शाखा को भीगे कपड़े, टाट या नम मास घास के साथ ठण्डे स्थान पर कुछ समय तक भण्डारित भी रखा जा सकता है। परन्तु प्रयत्न करना चाहिए कि यथाशीघ्र चश्मा चढ़ाने का कार्यपूर्ण हो जाए। सांकुर शाखा के आधार से मध्य तक की कलियाँ पूर्ण विकसित होती है, अतः इन्हीं को प्रत्यारोपण के लिए प्रयोग करना चाहिए।

ढाल चश्मा

चश्मा चढ़ाने की यह सबसे आसान विधि है। नाव के आकार की कलिका का मूलवृंत पर भूमि से 10–25 से.मी. की ऊँचाई पर, जहाँ सतह समतल हो, प्रत्यारोपण किया जाता है। यदि मूलवृंत पर केवल सीधा चीरा लगाकर प्रत्यारोपण किया जाए तो इसे आई चश्मा से सम्बोधित करते हैं। कभी–कभी सुविधा हेतु मूलवृंत पर लगाये गये सीधी चीरे के ऊपर एक अनुप्रस्थ चीरा लगा दिया जाता है। इससे प्रत्यारोपण हेतु टी

आकार का स्थान बन जाता है। इसी कारण इस विधि को ”टी” चश्मा के नाम से भी सम्बोधित करते है परन्तु यही चीरा यदि नीचे की तरफ लगाया जाए तो उल्टा ”टी” आकार बन जाता है। इसी कारण अंग्रेजी में इन्हें ”टी” अथवा ”इनवर्टेट टी” बडिंग नाम से जाना जाता है।

कलम बांधना या ग्राफटिंग

कलम बांधना या ग्राफटिंग विधि में एक संस्तुति प्रजाति की कोई पतली शाखा लगभग उसी मोटाई के किसी दूसरे पौधे पर बांध देते है। जिस पौधे पर शाखा बांधी जाती है उसे मूलवृंन्त कहते है और जो शाखा बांधी जाती है उसे सायन कहते है। बांधते समय ध्यान यह रखना चाहिए कि दोनो के बीच रिक्त स्थान नहीं छूटना चाहिए अन्यथा शाखायें पूरी तरह से जुड नहीं पायेगी। सायन या शांकुर शाखा ऐसे वृक्ष से लेते है जो फलत और फल के गुणों में श्रेष्ठ तथा स्वस्थ हो। विभिन्न फलों के कलम बांधने की अलग–अलग विधियाँ होती है ये दो भागों में बाँटी जा सकती है।

1. जब प्रकंट और सायन में जुडाव हो रहा हो तो शाखा पैतृक वृक्ष से पूर्णत अलग नहीं की जाती । जैसे – मेट कलम, जिहवा कलम, पल्यान कलम
2. शाख को पैतृक वृक्ष से पूर्णतया अलग करने के पश्चात इसे मूलवृंत्त पर कलम किया जाता है। विनियर कलम, स्फान कलम, पार्ष्वकलम, वल्क या मुकुट कलम

पौधों में प्रवर्धन के सिद्धान्त और विधियाँ

पी. आर. मेघवाल एंव दलपत सिंह

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

पौध प्रवर्धन से आशय ऐसी विधियों से है जिससे एक पौधे से दो या उससे अधिक पौधे बनाए जा सकते हैं। यह कार्य कई विधियों से किया जा सकता हैं। इन विधियो को मुख्य रूप से दो भागो में बांटा जा सकता है। 1. बीज या लैगिंक प्रवर्धन 2. वानस्पतिक या अलैगिंक प्रवर्धन।

बीज या लैगिंक प्रवर्धन के सिद्धान्त :

किसी भी बीज मे भ्रुण तथा भोज्य पदार्थ बीज–पत्र और भ्रुण पोष के रूप मे विद्यमान रहते हैं। जिस समय पैतृक पौधे से बीज अलग होता है, वह प्राय शांत अवस्था मे रहता है। उसे देखने मात्र से बीज के अंदर विद्यमान सक्रियता का बोध नही हो पाता है। भ्रुण मे एसी सक्रिय वृद्धि की उत्तेजना होना, जिसके परिणामस्वरूप बीजावरण के छेदन से नये पौधो का प्रादुर्भाव हो और जिसका अलग अस्तित्व भी कायम रह सके, अंकुरण कहलाता है।

बीज में अंकुरण हेतु तीन दशाओ का होना अनिवार्य है। पहला–बीज जीवन क्षम अर्थात भ्रुण जीवित हो और उसमें अंकुरण क्षमता हो, दूसरी बीज के अंदर आंतरिक दशाये अंकुरण योग्य हो, अर्थात भौतिक तथा रसायनिक रोध समाप्त हो गया हो और तीसरी बीज को अंकुरण हेतु उचित माध्यम एव वातावरण प्राप्त हो। अंकुरण हेतु नमी, उचित तापमान, ऑक्सीजन की उपलब्धता तथा कभी–कभी प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है।

बीज की जीवन क्षमता : किसी भी बीज में जीवन क्षमता प्राप्त स्त्रोत, उसके रखरखाव तथा प्रकृति पर निर्भर करती है। कुछ बीज जैसे नींबू प्रजाति, कटहल, आम, लीची, चेस्टनट इत्यादि की जीवन क्षमता कम होती है। अतः फल से अलग करते ही इनको बो देना चाहिए अथवा सावधानीपूर्वक भंडारण कर लेना चाहिए। जीवन क्षमता का तात्पर्य बोने के पश्चात अंकुरण प्रतिशत से होता है। किसी भी बीज में जीवन क्षमता कम होने का मुख्य कारण फल को परिपक्वता से पहले तोड़ना, बीज निकलते समय चोट लग जाना तथा उचित वातावरण मे इनको भंडारण न करना होते हैं। बीज को अधिक दिनो तक भंडारित करने पर भी प्रायः जीवन क्षमता क्षीण हो जाती है।

लैगिंक जनन या प्रवर्धन :

लैंगिक जनन में मादा तथा नर कोशिकाओं के मिलन के फलस्वरूप बीज निर्माण द्वारा संतति की उत्पति होती है। इस विधि में अर्धसूत्री विभाजन द्वारा गुणसूत्रो की संख्या आधी तथा निषेचन के बाद पुनः सामान्य हो जाती है। संतति में आधे गुणसूत्र नर तथा आधे मादा से आते है। नई संतति में किसी पैतृक के समरूप, इनमें विभिन्न और आपस मे भी विविधता की संभावना होती है।

किसी पौधे के बाहरी लक्षण तथा विशेषता वंशागत पीढ़ी दर पीढ़ी गुणसूत्रो पर विद्यमान जीन द्वारा नियंत्रित होते है। एक विशेष गुण, एक अथवा कई जीन के पारस्परिक क्रिया द्वारा नियंत्रित हो सकते है। गुणसूत्रो पर मौजूद जीन के अनुसार कोई भी पौधा दो दशाओ में हो सकता है। यदि समजात गुणसूत्र पर एक ही तरह के जीन हो तो इसे समयुग्मी कहते है। ऐसे पौधो मे स्वपरगण और निषेचन के बाद संतति मे पेतृक पौधो की समरूपता बनी रहती है। यदि समजात गुणसूत्रो में अलग–अलग गुण के जीन हो तो इसे विषमयुग्मी दशा कहते है। ऐसे पौधो मे स्वनिषेचन के बाद भी पेतृक मे समरूपता नही होती और संतति मे आपस मे विविधता होती है।

लैंगिक प्रवर्धन के लाभ :

1. बीज द्वारा प्रवर्धन आसान और सस्ती विधि है
2. बीजू पौधे दीर्घजीवी अधिक फालोत्पादक तथा सहिष्णु होते हैं
3. कुछ फल वृक्षो जैसे पपीता इत्यादि जिनमें कायिक विधियो द्वारा प्रवर्धन नही हो पाता, उनके प्रवर्धन का यही एकमात्र साधन है
4. बीज द्वारा प्रवर्धन करते रहने पर विविधता की अधिक संभावनाए रहती है, जिससे कभी– कभी उत्तम किस्म के पौधो की उत्पत्ति हो जाया करती है

लैंगिक प्रवर्धन की हानियाँ :

1. बीजू पौधे में किशोरावस्था अधिक होने के कारण सामान्यतः फलन देर से शुरू होता है
2. बीजू पौधो की वृद्धि, फलन तथा फलो के गुण में समरूपता नही होती है
3. बीजू पौधे आकार मे बड़े होते है जिससे फलो की तुड़ाई, दवाओ का छिड़काव व कटाई छंटाई इत्यादि सुगमता पूर्वक नहीं की जा सकती

4 बीज द्वारा प्रवर्धन करने पर मुलव्रंत का लाभ नहीं मिल पाता है

अलैगिक जनन या प्रवर्धन :

पौधो मे वृद्धि, समसूत्री विभाजन प्रक्रिया के लगातार चलते रहने से होती है। इसी के परिणामस्वरूप अलैगिक जनन भी संभावित होता है। समसूत्री विभाजन मे गुणसूत्र लंबाई मे विभाजित होकर दो संतति कोशिकाओ मे बंट जाते है और ये प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। संतति कोशिकाओ में गुणसूत्रो की संख्या सामान्य बनी रहती है। समसूत्री विभाजन पौधे के वृद्धि करने वाले भाग जैसे प्ररोह शीर्ष, मूल शीर्ष तथा कैम्बियम कोशिकाओं में होता है। पौधे के किसी भाग में घाव लगने पर कैलस के निर्माण में भी समसूत्री विभाजन होते है। कैलस कोशिकाएं मृदूतक कोशिकाओं के समूह द्वारा निर्मित होती है।

पौधे की किसी भाग से जब जड़, तना या पत्तियाँ निकलती है, तो उसे अपस्थानिक मूल या अपस्थानिक प्ररोह कहते है। अपस्थानिक मूल का प्रादुर्भाव पौधे के किसी उपरी भाग, भूमिगत तने या पुरानी जड़ो से हो सकता है। समसूत्री विभाजन पौधे की वृद्धि, इनसे जनन तथा घाव भरने की आधारभूत प्रक्रिया है। इसी कारण कायिक प्रवर्धन विभिन विधियो जैसे विभाजन, कलम, चश्मा इत्यादि द्वारा संभवित हो पाता है। इन विधियों द्वारा प्रवर्धित सभी पौधो में पैतृक पौधो की आनुवंशिक समरूपता विद्यमान होती है। अतः फल वृक्ष प्रवर्धन की पूर्ति इसी विधि द्वारा संभव हो पाती है।

अलैंगिक जनन या प्रवर्धन सिद्धान्त

कलम से प्रवर्धन के सिद्धान्त : जब पौधे के किसी भाग को मातृ पौधे से अलग करके, इस प्रकार उपचारित किया जाय की पौधे प्रवर्धित हो सके तथा अपना वह अलग अस्तित्व कायम रख सके, इसे कलम से संबोधित किया जाता है। कलम के लिए जड़, तना पत्ती या विभज्योतक का छोटे से छोटा भाग उपयोग मे लाया जा सकता है। यदि जड़ से नये पौधे का सृजन होना हो तो अपस्थानिक कलिका से तने का प्रादुर्भाव होना चाहिए। तने से प्रवर्धन मे अपस्थानिक जड़ तथा पत्ती मे जड़ और तने दोनो का सृजन होना चाहिए। विभज्योतक कोशिका से प्रवर्धन में जड़, तना तथा उत्तको का निर्माण होना चाहिए। पौधे के एक कोशिका में नये पौधे के निर्माण के लिए सभी गुण विद्यमान होने का लाभ इन विधियो में उठाया जाता है।

कलम के प्रवर्धन से शारीरिक परिवर्धन : तने से जड़ निकलने की क्रिया तीन स्तरो मे पूरी होती है। पहली अवस्था में कुछ विभज्योतकी कोशिकाओं का सृजन कोशिका विभाजन से होता है और दूसरी अवस्था में विभज्योतकी कोशिकाओं का अग्रज मूल में विभेदन होता है और तीसरी अवस्था में नए मूल निर्माण के साथ साथ यह अन्य ऊतकों को भेदते हुए बहार निकलता है। इसी के साथ संवहन उत्तको द्वारा मातृ तने से इसका संपर्क स्थापित हो जाता है।

कलम बांधना और चश्मा चढ़ने से प्रवर्धन के सिद्धान्त : कलम बंधन एक कला है जिसमें पौधे के किसी एक भाग को दूसरे पौधे पर इस प्रकार प्रत्यारोपित किया जाता है कि दोनों एक साथ जुड़ कर एक पौधे की भांति वृद्धि करे एंव फलन दे सके। प्रवर्धित पौधे का वह भाग, जिसमे फूल एंव फल आते हैं, संकुर तथा नीचे के भाग जिससे मूलवृंत तथा संकुर दोनो का योगदान हो उसे मूलसंकुर नाम से संबोधित किया जाता है। कभी–कभी कुछ विशेष कारणो से संकुर एंव मूलवृंत के बीच अन्य किसी तने का छोटा भाग प्रयोग किया जाता है इसे मध्यस्त मूलवृंत कहा जाता है। सिद्धान्तरूप मे कलम बंधन एंव चश्मा चढ़ना एक ही प्रक्रिया है। दोनो में केवल इतना अंतर है की कलम बंधन हेतु, प्रयुक्त संकुर आकार में बड़ी होती है जिसमे एक से अधिक कालिकाएं विद्यमान होती है, जबकि चश्मा में केवल एक कलिका अकेले अथवा मातृ शाखा की थोड़ी लकड़ी के साथ प्रयोग की जाती है।

उतक संवर्धन और सूक्ष्म प्रवर्धन :

पौध–कोशिका, विशेषकर प्रोटोप्लाज्म और अन्य विशिष्ट भागो से प्रयोगशाला के अंतर्गत, कृत्रिम पोषण मध्यम में नियंत्रित वातावरण में नये पौधों के सृजन को सूक्ष्म प्रवर्धन के नाम से संबोधित किया जाता है। सूक्ष्म प्रवर्धन का व्यापक प्रयोग उत्तक संवर्धन द्वारा ही प्रतिपादित किया जाता है। अतः दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची हो गये है। उत्तक संवर्धन के महत्व, संभावनाओ एंव परिमितताओ के विषय में अनेक वैज्ञानिक समय–समय पर अपना मत प्रकट कर चुके है।

नये चयन किए पौधे से थोड़े समय में अधिक से अधिक संख्या में कायिक प्रवर्धन करना ही उत्तक संवर्धन का मुख्य उद्देश्य होता है। पौधे की प्रत्येक कोशिका से उसी के समरूप पौधे के सृजन की क्षमता का लाभ इन विधियों द्वारा लिया जाता है। विश्व की अनेक प्रयोगशाला मे आजकल जरबेरा, गुलदाउदी, स्ट्रॉबेरी, अंगूर, सेव, इत्यादि फलों का प्रवर्धन इन विधियों द्वारा किया जा रहा है। सूक्ष्म प्रवर्धन के अंतर्गत भ्रूण संवर्धन अंडाशय एंव बीजांड संवर्धन, मेरिस्टेम शीर्ष संवर्धन, उत्तक संवर्धन, कोशिका संवर्धन आदि प्रक्रियाएं आती हैं।

अलैंगिक प्रवर्धन के लाभ

1. कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित सभी पौधे, पैतृक समरूप होते हैं जिसके फलस्वरूप इनकी वृद्धि, फलोत्पादन तथा फलों के गुण मे समरूपता पाई जाती है।
2. कुछ फल वृक्ष जिनका प्रवर्धन बीज द्वारा नहीं हो पाता उनके प्रवर्धन का यही एक मात्र सहारा है जैसे–अन्नानास, केला इत्यादि।

3. इस विधि द्वारा प्रवर्धित पौधे आकार में छोटे होते है तथा इनमें किशोरावस्था कम होने के कारण फलन शीघ्र प्रारंभ हो जाता है।

4. फल वृक्षों में जड़ तथा तने की क्षति हो जाने पर सेतु कलम अथवा चांपी कलम द्वारा इसका पुनः सुधार किया जा सकता है।

अलैंगिक प्रवर्धन की हानियाँ

1. कायिक विधियों से प्रवर्धित पौधों की आयु अपेक्षाकृत कम होती है।

2. कायिक विधियों से प्रवर्धन करने पर विविधता की संभावना बहुत कम होती है जिसके परिणाम स्वरूप नई किस्मों के विकास की संभावना कम है।

3. कुछ फल वृक्षों में विषाणुओं का संचरण संक्रमित शाखा से नये पौधों मे आसानी से हो जाता है।

अलैंगिक प्रवर्धन की विधियाँ :

1. कलम द्वारा : कलम द्वारा प्रवर्धन में पौधे के किसी विशेष भाग तना, जड़ या पत्ती को मातृ पौधे से अलग किया जाता है इसके बाद आवश्यकतानुसार उपचारित करके उचित वातावरणीय दशाओं में निश्चित अवधि के अंदर मूलन तथा शाखाएं प्रोत्साहित करा कर नये पौधों का सृजन किया जाता है।

कलम मुख्यतः तीन प्रकार की होती है :

i. तना कलम

ii. जड़ कलम

iii. पत्ती कलम

i. तना कलम : तने के भाग का उपयोग करते हुए नये पौधों का सृजन करना तना कलम कहलाता है। यह चार प्रकार की होती है :

अ. सख्त काष्ठ कलम : इस विधि में एक वर्ष पुरानी, परिपक्व पेन्सिल के आकार की शाखाओं को उपयोग में लिया जाता है। कलम की लंबाई आवश्यकतानुसार 10 से.मी. से 45 से.मी. तक लेते है तथा जिसमें कम से कम 2 से 3 आँख होना जरूरी है। कलम लगाते समय शाखा के आधार की तरफ गांठ से ठीक नीचे सीधा काट लगाया जाता

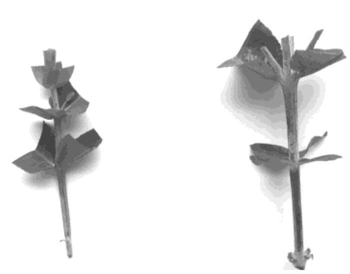

है जिससे गांठ में भोजन एकत्रित होने कारण जड़ें निकलने मे आसानी रहती है तथा कलम के ऊपरी हिस्से को गांठ से 1 से 2 से.मी. उपर तिरछा काट लगाना चाहिए जिससे बरसात का पानी कलम पर न रुके। ऐसी कलमों का प्रयोग अंगूर, अनार इत्यादि फल वृक्षो में करते है।

ब. अर्ध सख्त काष्ठ कलम : ऐसी कलमें प्रायः सदाबहार फल वृक्षों जैसे आम, अमरूद, नींबू, कटहल आदि में प्रयोग की जाती है। जून–जुलाई में प्राप्त शीतोष्ण फलों की शाखाएँ जो 4–9 माह में पूर्ण रूप से परिपक्व नहीं होती हैं, उनका प्रवर्धन इस विधि द्वारा किया जाता है। इसमें कलम की लंबाई 7 से 20 से.मी. रखी जाती है तथा कलम के ऊपरी भाग पर 2–4 पत्तियाँ रखना लाभप्रद होता है।

स. हरित काष्ठकलम : प्रायः फल वृक्षों का प्रवर्धन हरित काष्ठ कलम से नहीं किया जाता है। इस विधि में प्रयोग की जाने वाली शाखाओं की आयु 2–3 माह पुरानी ओर कोमल अवस्था में होती है। कलम बनाते समय शाखा की शीर्ष पत्तियाँ रहने दी जाती है।

द. शाकीय कलम : प्रायः अलंकृत पौधों का ही प्रवर्धन शाकीय कलम द्वारा किया जाता है। 1–2 माह पुरानी कोमल शाखाओं को बरसात मे खुली क्यारियों में अथवा कुहासे घर (मिस्ट चेंबर) मे रोपित किया जाता है। फल वृक्षों का प्रवर्धन शाकीय कलम द्वारा नहीं किया जाता है।

ii. जड़ कलम : जिन फल वृक्षो में स्वतः भूस्तारी तने उत्त्पन करने की क्षमता हो, उनका प्रवर्धन जड़ कलम द्वारा सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। प्रवर्धन के लिए 1 से.मी. से मोटी जड़ो का 10–15 से.मी. के टुकड़े बना लिए जाते है। इनका रोपण फरवरी–मार्च मे खुली क्यारियो में किया जाता है। प्ररोह के समीपस्थ भाग सदैव उपर की तरफ तथा दूरस्थ भाग नीचे की तरफ रखते हुए रोपण करना चाहिए।

iii. पत्ती कलम : प्रायः अलंकृत पौधे जिनमे पत्तियाँ अपेक्षकृत मोटी, माँसलदार उदारहणार्थ बिगोनिया, क्रेसूल्ला इत्यादि का व्यवसायिक प्रवर्धन पत्ती कलम द्वारा किया जाता है। फल वृक्षो में लेमन के प्रवर्धन का अनुमोदन केवल पत्ती कलम द्वारा किया गया है। पत्ती कलम द्वारा प्रवर्धन में बरसात के प्रारंभ होते ही मातृ पौधो से पत्तियाँ पर्णवृंत के साथ पौधे से अलग करके बालू अथवा अन्य रोपण माध्यम मे रोपी जाती है। रोपित पत्ती के आधार से अपस्थानिक मूल एंव तने के सृजन के साथ–साथ पुरानी पत्ती नष्ट हो जाती है तथा नये पौधे का सृजन हो जाता है। रोपण के समय कुहासे की व्यवस्था शुलभ होने पर सफलता की अच्छी संभावना होती है।

2. चश्मा विधि :

कलम बंधन की विभिन्न विधियो मे जहाँ सांकुर के रूप में चयन किए गये मातृवृक्ष की कई कालिकाओ वाली छोटी टहनी प्रयोग की जाती है। वही पर चश्मा की विभिन्न विधियो मे सांकुर हेतु मातृवृक्ष का छोटा भाग जिसमे केवल एक वानस्पतिक कली, लकड़ी अथवा लकड़ी के साथ प्रयोग की जाती है। दोनो के मिलाप सिद्धान्त एक होने पर कभी–कभी चश्मा कलम बंधन के नाम से भी संबोधित किया जाता है

चश्मा हेतु मूल वृंत का चयन : कलम बंधन की भाँति चश्मा द्वारा प्रवर्धन हेतु मूलवृंत की आवश्कता पड़ती है। फल वृक्ष प्रवर्धन में देशी किस्म के बीजू द्वारा प्रवर्धित मानक मूलवृंतो का प्रयोग किया जाता है। मूलवृंत प्रवर्धित पौधे को वृद्धि नियत्रण के साथ–साथ भूमि ओर जलवायु के प्रति सहिष्णुता व कीट व्याधियो के प्रति अवरोधकता भी रखते है। जिनका समुचित उपयोग किया जाना चाहिए।

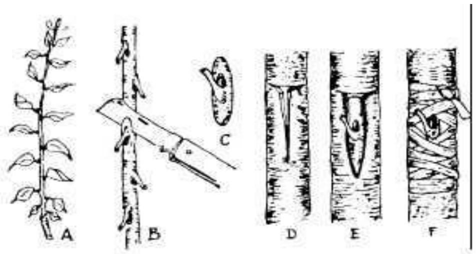

i. ढाल चश्मा :

चश्मा चढ़ने की सबसे आसान विधि है। नाव के आकर की कालिका का, मूलवृंत पर 10–25 सेमी की उँचाई पर, जहाँ सतह समतल हो, प्रत्यारोपित किया जाता है। यदि मूलवृंत पर केवल सीधा चीरा लगाकर प्रत्यारोपित किया जाए तो इसे ढाल या चश्मा से संबोधित करते है। कभी–कभी इस प्रकार के चीरे के उपरी भाग पर अनुप्रस्थ चीरा लगा दिया जाता है जिससे T आकर बन जाता है, इसे T चश्मा के नाम से संबोधित किया जाता है। इस प्रकार जिस मूलवृंत पर चीरा लगाया गया है, थोड़ा झुका कर छाल केढीली करकेकरके निकाली गई कालिका की ध्रुवता को ध्यान रखते हुए प्रत्यारोपित कर दिया जाता है, तथा इसे पोलिथीन से बाँध दिया जाता है। बाँधते समय ध्यान रखना चाहिये कि कालिका की आँख खुली रहे।

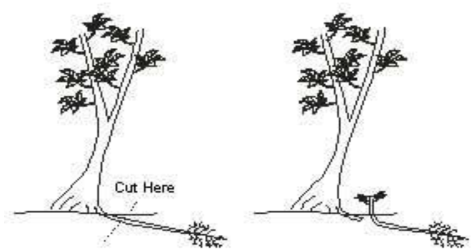

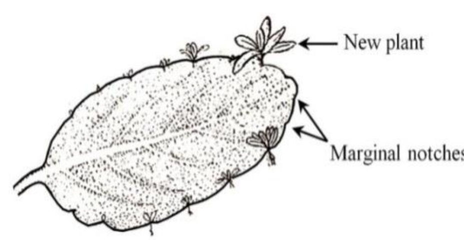

ii. पेबंदी चश्मा :

इस विधि मे, मूलवृंत के समतल स्थान से आयताकार छाल निकाल कर इसी के समान कालिका सहित सांकुर शाखा की छाल का प्रत्यारोपण किया जाता है। अपेक्षाकृत मोटे छाल वाले फल वृक्ष जैसे की

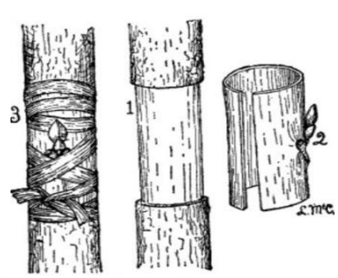

आम, आंवला, कटहल, जामुन इत्यादि का प्रवर्धन पेबंदी चश्मा द्वारा किया जाता है। इस विधि द्वारा प्रवर्धन का उचित समय मई–जून और जुलाई से सितम्बर तक का होटा है। सबसे पहले सांकुर शाखा के लिए एकत्रित टहनी से प्रत्यारोपित की जाने वाली कालिका को बीच मे रखकर आयताकार काट बना लिया जाता है, चीरा लगाने के बाद थोड़ा सा हाथ से घुमा कर सावधानीपूर्वक कालिका को अलग कर मातृवृक्ष के यथा स्थान पर प्रत्यारोपित कर देना चाहिए। लगाने के बाद पोलिथीन की सहायता से इसको बाँध देना चाहिए ध्यान रहे कालिका की आँख खुली हो।

iii. छल्ला चश्मा :

इस विधि द्वारा बेर, समशीतोष्ण फल जैसे आडू तथा शहतूत का प्रवर्धन किया जाता है। गहरी छंटाई करने के बाद तेजी से वृद्धि कर रहे प्ररोह से पूरा छल्ला निकालने में सुविधा रहती है। पेन्सिल के आकर की मोटाई वाली शाखा से कालिका को बीच मे रखते ही 2–3 सेमी की दूरी पर चाकू घुमा कर चीरा लगाते हैं तथा धीरे से इस कालिका सहित छल्ले को अलग निकाल लिया जाता है। प्रत्यारोपित के लिए बनाए गये स्थान पर इस छल्ले सहित कालिका को फँसा देते है। इस विधि मे यह ध्यान रखा जाता है की छल्ले के नीचे का सिरा मूलवृंत की छाल से सटा रहे। प्रत्यारोपण के 4–6 दिन तक बरसात नही होने पर 80 प्रतिशत से अधिक सफलता मिलती है।

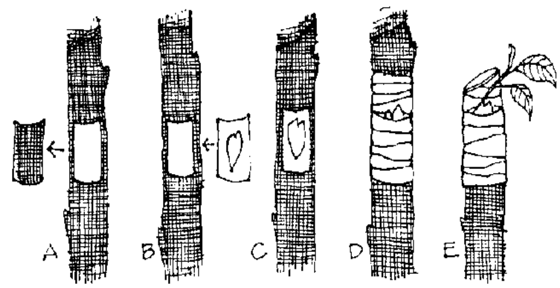

3. दाब विधि :

इस विधि में पौधे की एक या डेढ़ वर्ष अवस्था की शाखा से 2 इंच की लंबाई में ऊपर का छिलका सावधानी से हटा देते हैं। अब तने के कठोर भाग में एक चीरा इस पार से उस पार तक बना देते हैं। इस प्रकार तना दो बराबर भागों में बँट जाता है। इस चीरे भाग में एक पतला सा लकड़ी का टुकड़ा फँसा कर, इस भाग को मिट्टी में ढँक देते हैं और मिट्टी के बराबर नम बनाए रखते हैं। कुछ सप्ताह बाद इस भाग से जड़ें निकल कर मिट्टी में फैलने लगती हैं। धीरे धीरे इस शाखा के सूखने का भय रहता है। इसके बाद इसे जमीन से खोदकर दूसरी जगह लगा देते हैं। यह विधि नीबू, अंगूर की बेल, गुलाब, चमेली इत्यादि पौधों के लिये उपयुक्त है।

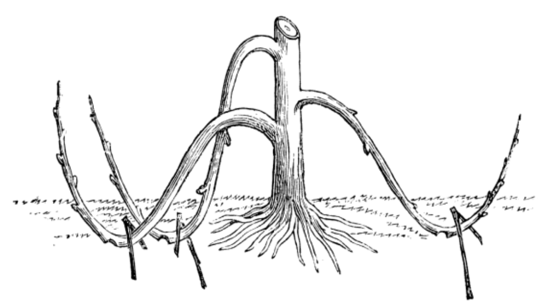

i. गुट्टी बाँधना :

इस विधि में पौधे की एक से दो वर्ष की अवस्था की शाखा पर, बीच में १ से २ इंच तक तने पर, एक गोलाकार कटान बनाकर ऊपर की छाल सावधानीपूर्वक निकाल लेते हैं। छाल को हटाने के बाद उसपर गीली मिट्टी रखकर, उसे चारों तरफ से टाट तथा सुतली से बाँध देते हैं। इस शाखा के ठीक ऊपर एक मोटी शाखा से एक मिट्टी का बड़ा बाँध देते हैं। घड़े

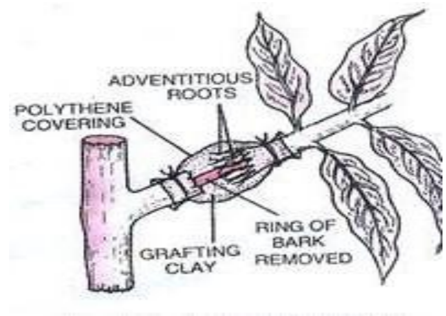

के पेंदे में सुराख करके एक पतली रस्सी लगा देते हैं। इस रस्सी को गुट्टी पर लगा देते हैं। इसके बाद घड़े में बराबर पानी डालते रहते हैं। पानी घड़े की रस्सी द्वारा गुट्टी पर गिरता रहता है, जिससें मिट्टी नम बनी रहती हैं। दो मास के बाद जब जड़े निकलकर टाट की सतह तक आ जाती हैं, तब इस शाखा को मूल वृक्ष से अलग कर देते हैं और इसे दूसरे स्थान पर लगा देते हैं। कुछ समय बाद इससे पूरा पौधा बनकर तैयार हो जाता है। यह विधि नारंगी, अमरूद, लीची इत्यादि फलों के पौधों के लिये उपयुक्त है।

4. कलम बांधना विधि :

i. काशा कलम : यह सबसे सरल विधि है। इसमे प्रायः एक वर्ष पुराने समान मोटाई वाले मूलवृंत और सांकुर प्रयुक्त किए जाते है। संकुर 10–15 सेमी लंबाई के जिनमे 4–6 कालिया विद्यमान होती है, चयन करना चाहिए। मूलवृंत के उपरी सिरे पर 2–4 सेमी लंबा तिरछा चीरा तेज चाकू से एक धार में

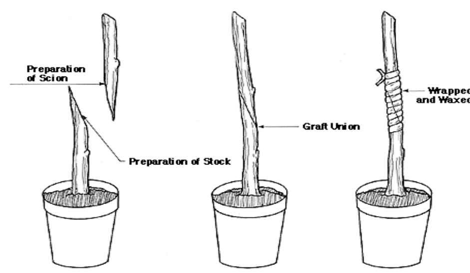

लगाया जाता है, ठीक इसके विपरीत सांकुर के निचले सिरे पर बराबर लंबाई का चीरा लगाया जाता है तत्पश्चात मूलवृंत के बनाए गये चीरे पर संकुर को प्रत्यारोपित करते हुए सुतली से बाँध देते है। इस प्रकार से पौधे तैयार करने की विधि को काशा कलम विधि कहते है।

ii. जिव्हा कलम बंधन : यह काशा कलम बंधन का ही एक परिवर्तित रूप है। पहले की तरह मूलवृंत और सांकुर में बनाए गये तिरछे चीरे में एक चीरा विपरीत दिशा में लगाया जाता है। मूलवृंत और सांकुर में पहले बनाए गये चीरे के तिहाई नीचे से तेज चाकू द्वारा सीधा चीरा

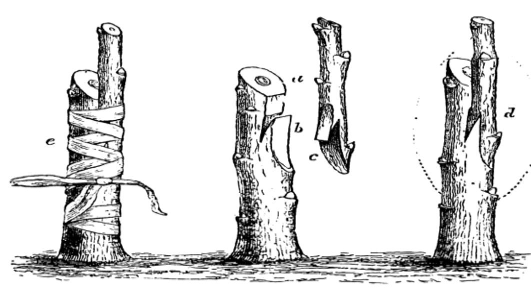

विपरीत दिशा में लगाया जाता है। इस प्रकार इन दोनों मूलवृंत और सांकुर को अच्छी तरह से फँसा कर सुतली से बाँध देते है, इस विधि को जिव्हा कलम विधि कहते है।

iii. विनियर कलम बंधन : इस विधि का प्रयोग भी सदाबहार फल वृक्षो के प्रवर्धन हेतु काम में लिया जा रहा है। मूलवृंत के आधार पर जहाँ समतल हो 2.5–4 सेमी लंबा चिकना चीरा थोड़ी लकड़ी के साथ लगाया जाता है तथा दूसरा हल्का चीरा अंदर की तरफ, पहले चीरे से मिलते हुए बनाया जाता है। इसमे छाल के अतिरिक्त थोड़ी लकड़ी निकल जाती है, जिससे सांकुर के प्रत्यारोपण हेतु स्थान बन जाता है। सांकुर को मूलवृंत पर इस प्रकार प्रत्यारोपण करना चाहिए की दोनो के बीच खाली स्थान न रहे और ऐधा कोशिकाओ में संपर्क स्थापित हो जाए। प्रत्यारोपण के पश्चात दोनो को पोलिथीन की सहायता से बांध देना चाहिए। ये विधि मुख्तः आम जैसे फलवृक्षो के काम मे ली जाती है।

5. अन्य विधियाँ :

कुछ फल वृक्ष स्वतः भूस्तारिका, उपरिभूस्तारी, अंतःभूस्तारी, प्रकंद, प्ररोह इत्यादि द्वारा स्वतः पौधो का जनन करते रहते है तथा कुछ में किसी भाग में मूलन कराकर नये पौधे प्रवर्धित किए जाते है। इन सभी विधियो द्वारा प्रवर्धन को विभाजन के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।

i. उपरिभूस्तारी :

उपरिभूस्तारी विशेष प्रकार का तना है, जो पर्णकक्ष के प्ररोह से उत्पन होकर क्षैतिज दिशा मे भूमि पर बढ़ता रहता है। जिस स्थान पर इसका संपर्क भूमि से हो जाता है वही पर सामान्यतः एकांतर गाँठो से जड़े फुटती है। उपरिभूस्तारी प्रशाखा इसी प्रकार आगे वृद्धि करती रहती है तथा इन्ही नवनिर्मित पौधो से आगे जनन होता रहता है। स्ट्रॉबेरी का व्यवसाहिक प्रवर्धन इसी विधि द्वारा किया जाता है। जब नये पौधे मे जड़े आ जाती है तो मातृ पौधो से इनका संपर्क स्वतः समाप्त हो जाता है।

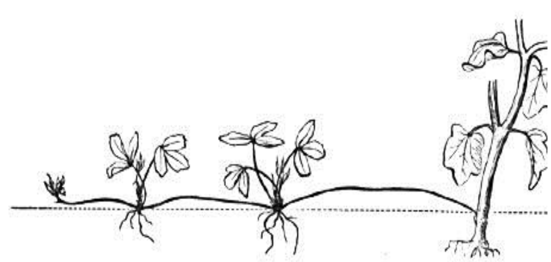

ii. अंतःभूसतारी :

अंतःभूसतारी वे पौधे है जो किसी मातृ पौधे के पार्श्व में भूमि मे उत्पन्न होते है। इनकी उत्पति जड़ ओर भूमिगत तनो पर विद्यमान अपस्थानिक कालिकाओ से होती है। प्ररोह की बगल से जो शाखाएं विकसित होती है उन्हे भी अंतःभूसतारी के नाम से सम्बोधित किया जाता है। केले के भूमिगत तने से अंतःभूसतारी तने की उत्पति होती है, जिससे व्यवसाहिक प्रवर्धन किया जाता है।

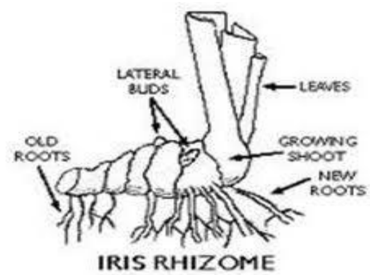

iii. भूस्तरिका :

ये विशेष प्रकार की पार्श्व शाखाएँ है जो कुछ पौधो के आधार पर स्वतः उत्पन होती है। इन्ही शाखाओ को मातृ पौधो से अलग करके नये पौधे तैयार किए जाते है। खजूर ओर अन्नानास का प्रवर्धन भूस्तरिका से किया जाता है। भूस्तरिका को मातृ पौधे से तेज चाकू या अन्य औजार से अलग किया जाता है। इनमे जड़े अच्छी प्रकार विकसित होने पर इनका अलग रोपण किया जा सकता है।यदि जड़े अच्छी प्रकार विकसित ना हो पाई हो तो मूलन माध्यम मे अनुकूल दशाओ मे मूलन कराकर रोपण किया जाना चाहिए।

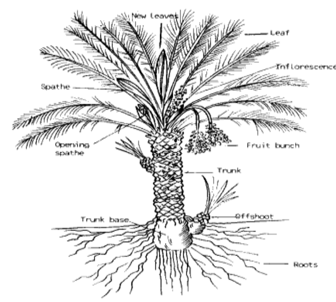

iv. प्रकंद :

ये विशेष प्रकार का भूमिगत तना है, जिसकी वृद्धि क्षैतिज दिशा मे भूमि के नीचे या सतह पर होती है। फल पौधो मे केले मे भूमिगत प्रकंद पाए जाते है। केले के प्रकंद को खोदकर छोट–छोटे रूप मे इस प्रकार काटा जाता है की प्रत्येक टुकड़े मे कम से कम दो पार्श्व कालिकाएँ या आँख हो। इन्ही अपस्थानिक शाखाओ मे मूलन कराकर प्रवर्धित किया जाता है।

v. प्ररोह :

भूमि के उपर का पौध–भाग जहाँ से नई शाखाओं की उत्पति होती है, प्ररोह से संबोधित किया जाता है। स्ट्रोबेरी मे मुख्य पौधे में जहाँ पर पत्तियाँ गुच्छो में रहती है, उसे प्ररोह भी कहते है। इसी प्रकार अन्नानास के फल के उपर प्ररोह होता है। फल की तुड़ाई के बाद या एक माह पहले इनको अलग करके उचित दशाओ में लगा देते है।

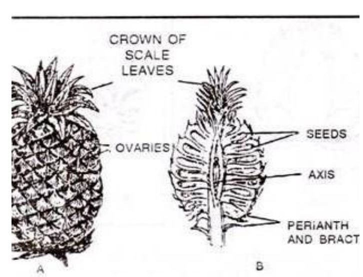

शुष्क क्षेत्र में बगीचा स्थापना एंव प्रबंधन

पी. आर. मेघवाल एवं अकथ सिंह

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

मरुस्थलीय क्षेत्रों में वर्षा की अनिश्चितता के कारण फसलों की परम्परागत खेती से फसल उत्पादन में जोखिम बना रहता हैं। इस क्षेत्र में समय पर पर्याप्त मात्रा में वर्षा का न होना, बीच–बीच में सूखे की स्थिति बनना फसल अवस्थाओं की जरूरत के हिसाब से वर्षा का वितरण ठीक से न होना तथा समय से पूर्व मानसून का विदा होना इत्यादि कारणों से बारानी खेती से होने वाला उत्पादन प्रभावित होता हैं। इस क्षेत्र की रेतीली हल्की मिट्टी में जीवांश की मात्रा कम होने से बरसाती जल को सोख कर रोकने की क्षमता में कमी तथा किसान की माली हालत कमजोर होने की वजह से उन्नत कृषि तकनीकी सिफारिशों को न अपनाने पर फसल उत्पादन में अनिश्चितता बनी रहती हैं। ऐसी स्थिति में बहुउद्देशीय व बहुवर्षीय फल वृक्षों की चयनित उन्नत किस्मों को अपनाकर अधिक आमदानी प्राप्त की जा सकती हैं। शुष्क क्षेत्रीय फलो व उनकी किस्मों का चयन नीचे दी गई तालिका के अनुसार किया जा सकता हैं।

तालिका 1: शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फल वृक्ष/किस्में

फल वृक्ष	**उपयुक्त उन्नत किस्में**
बेर	गोला, काजरी गोला, मुन्डिया (अगेती), सेब, बनारसी, कैथली, गोमा कीर्ती (मध्यम), उमरान, इलायची,टीकडी (पछैती)
अनार	जालोर बेदाना, गणेश, जी–137, जी–131, मृदुला, अरकता, भगवा इत्यादि।
आँवला	चेकैया, एन.ए.–7, कंचन, कृष्णा, आनन्द–2
गून्दा	काजरी–2025, काजरी–2021, काजरी–2012 व अन्य स्थानीय किस्मे।
करौन्दा	पन्त मनोहर, पन्त सुदर्शन, पन्त सुवर्णा, सी.जेड.के.2011, सी.जेड.के.2022 सी.जेड.के.2031
नीम्बू	कागजी, विक्रम, प्रमालिनी, बारामासी
बेल	धारा रोड़, फैजाबादी लोकल, एन.बी.–5, एन.बी.–9, लाल जीत, सांभीपुरी, पन्त उर्वषी, पन्त अपर्णा
खजूर	हलावी, बारही, खुनेजी, मस्कट, जहीदी, मेडजूल,
अंजीर	पूना, दिनकर, डीयना, ब्लेक इश्चिया
सीताफल	बालानगर, अरका शाहन

तालिका 1 में दिये गए शुष्क क्षेत्रीय फल वृक्षों का चयन सिंचाई पानी की उपलब्धता के अनुसार करना चाहिए। बेर, करौन्दा, गून्दा, झड़ बेर इत्यादि को शुरू में पूरक सिंचाई या वर्षा जल संग्रहण द्वारा पनपाया जा सकता हैं। बड़े होने पर ये फल बारानी अवस्था में भी कुछ उत्पादन मानसून वर्षा की मात्रा के हिसाब से दें जाते हैं अन्य फल वृक्ष जैसे अनार, आवँला, सीताफल, नीम्बू , खजूर इत्यादि सिंचाई पानी की उपलब्धता होने पर लगाए जा सकते हैं।

फलवृक्ष प्रवर्धन एवं बाग की स्थापना : अधिकतर फल वृक्षों का प्रवर्धन वानस्पातिक प्रसारण विधि से ही किया जाता हैं लेकिन कुछ फल वृक्ष जैसे, नीम्बू, गोन्दा, करौन्दा, झड़ बेर इत्यादि को बीज द्वारा भी सफलता पूर्वक लगाया जा सकता हैं। विभिन्न फलदार पौधों की प्रसारण विधियाँ, लगाने की दूरी तथा समय इत्यादि तालिका 2 में दर्शाया गया हैं।

तालिका 2: फलदार पौधों की प्रवर्धन विधियाँ, लगाने का समय एवं वृक्षों की आपस में दूरी

फल वृक्ष का नाम	प्रवर्धन विधियाँ / समय	लगाने की दूरी (मीटर)	लगाने का उचित समय
आवँला	कलिकायन (पेच) जुलाई–अगस्त	6 × 6	जुलाई–अगस्त
बेर	कलिकायन (आई / टी) / जुलाई–अगस्त	6 × 6	जुलाई–अगस्त
अनार	सख्त काष्ठ कलम, गूँटी / जुलाई–अगस्त	4 × 4	जुलाई–अगस्त
बेल	कलिकायन (पेच) / मई–जुलाई	6 × 6	जुलाई–अगस्त
सीताफल	सोफ्ट वुड ग्राफ्टींग / मार्च	6 × 6	जुलाई–अगस्त
अंजीर	कलीकायन, कलम / फरवरी / अक्टूबर	5 × 5	जुलाई–अगस्त
खजूर	सकर्स / टिस्यू कल्चर	8 × 8	जुलाई–अगस्त
नीम्बू	कलिकायान / बीज / गूंटी, मार्च / जुलाई–अगस्त	5 × 5	जुलाई–अगस्त
गून्दा	बीज, कलिकायन / मई, जुलाई–अगस्त	6 × 6	जुलाई–अगस्त
करौन्दा	बीज / जुलाई–अगस्त	5 × 5	जुलाई–अगस्त

बेर क्यों ?

- बेर की खेती सत्त आमदनी देती है तथा शुष्क क्षेत्रों में बार–बार अकाल की स्थिति से निपटने के लिए बीमे का कार्य करती हैं।
- बेर में सेव के तुल्य पोषक तत्व विद्यमान होते हैं। यह विटामिन सी, आयरन, केल्शियम, फास्फोरस इत्यादि का उत्तम स्त्रोत हैं।
- फलों के अलावा इससे पशुओं के लिए चारा तथा जलाऊ लकड़ी भी मिल जाती हैं।

बेर उत्पादन तकनीक : बेर का बगीचा लगाने के बाद प्रथम दो–तीन वर्षो के दौरान पौधों को निश्चित आकार व दिशा प्रदान की जाती हैं ताकि बड़ा होने पर इससे अधिक उत्पादन व गुणवत्तापूर्ण फल मिल सके। इसके अतिरिक्त इसमें हर वर्ष मई–जून माह में वार्षिक कटाई करना पड़ती हैं क्योंकि इसमें फूल व फल नई शाखाओं पर लगते हैं इसलिए हर वर्ष पिछले साल की शाखाओं के आधार से तीन–चार आँख (बड़) छोड़ शेष भाग को काट दिया जाता हैं। छोड़े गए आधार भाग की आँखों से नई शाखाएँ निकलकर उस वर्ष फल उत्पादन होता है इसके अतिरिक्त कुछ शाखाओं को उनके निकलने के स्थान से ही काटते हैं ताकि शाखाओं के बीच समूचित जगह नई शाखाओं के फैलने के लिए मिल सकें।

खाद एवं उर्वरक : साधारणतया एक पूर्ण विकसित पेड़ (> 5 वर्ष) में 20–30 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 600 ग्राम नत्रजन तथा 250 ग्राम फास्फोरस प्रतिवर्ष प्रति पेड़ की दर से दिया जाता है। गोबर की खाद तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा जुलाई तथा शेष बची नत्रजन को नवम्बर माह के फल लगने के बाद देते हैं। इसके अतिरिक्त बोरोन (0.5%) तथा जिंकसल्फेट (0.8%) के घोल का छिड़काव फूल आने के समय तथा फल लगने के समय करना चाहिए। पोटाश की मात्रा मिट्टी में पोटाश की उपस्थिति के हिसाब से निर्धारित कर सकते। साधारणतया 250 ग्राम पोटाश प्रतिवर्ष प्रति पेड़ के हिसाब से देना चाहिए।

समन्वित कीट व्याधि प्रबंधन

छालभक्षी कीट : यह कीट नई शाखाओं के जोड़ पर छाल के अन्दर घुस कर जोड़ को कमजोर कर देता है फलस्वरूप वह शाखा टूट जाती है, जिससे उस शाखा पर लगे फलों का सीधा नुकसान होता है। इसकी रोकथाम के लिए खेत को साफ सुथरा रखे, गर्मी में पेड़ों के बीच में गहरी जुताई करें। जुलाई – अगस्त में डाइक्लोरवास 76 ई॰सी॰ 2 मिलीलीटर प्रतिलीटर पानी में घोल बनाकर नई शाखाओं के जोड़ों पर दो – तीन बार छिड़काव करना चाहिए।

चेफर बीटल : इसका प्रकोप जून–जुलाई में अधिक होता है, यह पेड़ों की नई पतियों एवं प्ररोहो को नुकसान पहुंचाता है जिससे पत्तियों में छिद्र हो जाते है। इसके नियंत्रण के लिए पहली वर्षा के तुरन्त बाद

क्यूनालफास 25 ई॰सी॰ 2 मिली या कार्बेरिल 50 डब्लू॰पी॰ 4 ग्राम प्रतिलीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

छाछया (पाउडरी मिल्डयू या चूर्णी फफूंद) : इस रोग का प्रकोप वर्षा ऋतु के बाद अक्टूबर – नवम्बर में दिखाई पड़ता है। इससे बेर की पत्तियों, टहनियों व फूलों पर सफेद पाउडर सा जमा हो जाता है तथा प्रभावित भागों की बढ़वार रूक जाती है और फल व पत्तियाँ गिर जाते है। इसकी रोकथाम के लिए केराथेनएल॰सी॰ 1 मिलीलीटर या घुलनशील गंधक 2 ग्राम प्रतिलीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। 15 दिन के अन्तर पर दो – तीन छिड़काव पूर्ण सुरक्षा के लिए आवश्यक होते है।

सूटीमोल्ड : इस रोग से ग्रसित पत्तियों के नीचे की सतह पर काले धब्बे दिखाई देने लगते है जो कि बाद में पूरी सतह पर फैल जाते है और रोगी पत्तियाँ गिर भी जाती है। नियंत्रण के लिए रोग के लक्षण दिखाई देते ही मैन्कोजेब 3 ग्राम या कापर आक्सीक्लोराइड 3 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

पत्ती धब्बा/झुलसा रोग : इस रोग के लक्षण नवम्बर माह में शुरू होते है यह आल्टरनेरिया नामक फफूंद के आक्रमण से होता है। रोग ग्रस्त पत्तियों पर छोटे–छोटे भूरे रंग के धब्बे बनते है तथा बाद में यह धब्बे भूरे रंग के तथा आकार में बढ़कर पूरी पत्ती पर फैल जाते हैं। जिससे पत्तियाँ सूख कर गिरने लगती है। नियंत्रण हेतु रोग दिखाई देते ही मेन्कोजेब 3 ग्राम या थायोफिनेट मिथाइल 1 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिन के अन्तर पर 2–3 छिड़काव करें।

अनार की खेती

भूमि और जलवायु : अनार उपोष्ण जलवायु का पौधा है। यह शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क जलवायु में भी अच्छी तरह उगाया जा सकता है। फलों के विकास तथा पकने के समय गर्म एवं शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। आर्द्र जलवायु से फलों की गुणवत्ता प्रभावित होती है एवं फंफूद जनित रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है। पूर्ण विकसित फलो में रंग तथा दानों में गहरा लाल रंग तथा मिठास के लिए अपेक्षाकृत कम तापमान की आवश्यकता होती है। वातावरण तथा मृदा में नमी एवं तापमान में अत्यधिक उतार–चढ़ाव से फलों के फटने की समस्या बढ़ जाती है, जिससे उनकी गुणवत्ता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। अनार के पौधों में लवण एवं क्षारीयता सहन करने की अद्भुत क्षमता होती है। 6.5 से 7.5 पी.एच. मान, 9.00 ईसी/मिमी मृदा लवणता तथा 6.78 ईएसपी तक क्षारीयता वाली मिट्टी में भी इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। अनार की खेती के लिए गहरी बलुई–दोमट भूमि सबसे उपयुक्त होती है। परन्तु क्षारीय भूमि में भी इसकी खेती की जा सकती है। यही नहीं, लवणीय पानी से सिंचाई करके भी अनार की अच्छी पैदावार ली जा सकती है।

बाग की स्थापना : अनार का बगीचा लगाने के लिये रेखांकन एवं गड्ढा खोदने का कार्य मई माह में सम्पन्न कर लेना चाहिए। इसके लिए वर्गाकार या आयताकार विधि से 4 X 4 मीटर (625 पौधे प्रति हैक्टेयर) या 5 X 3 मीटर (666 पौधे प्रति हैक्टेयर) की दूरी पर, 60 X 60 X 60 से.मी. आकार के गड्ढे खोदकर 0.1 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम के घोल से अच्छी तरह भिगों देना चाहिए। तत्पश्चात् 50 ग्राम प्रति गड्ढे के हिसाब से कार्बोनिल चूर्ण व थिमेट का बुकरकाव भी गड्ढे भरने से पहले अवश्य करना चाहिए। जिन स्थानों पर बैक्टीरिल ब्लाइट की समस्या हो वहाँ प्रति गड्ढे में 100 ग्राम कैल्शियम हाइपोक्लारॉइट से भी उपचार करना चाहिए। ऊपरी उपजाऊ मिट्टी में 10 कि.ग्रा. सड़ी गोबर या मींगनी की खाद, 1 कि.ग्रा. वर्मीकम्पोस्ट, 1 कि. ग्रा. नीम की खली तथा यदि सम्भव हो तो 25 ग्राम ट्राइकोडरमा आदि को मिलाकर गड्ढों को ऊपर तक भर कर पानी डाल देना चाहिए जिससे मिट्टी अच्छी तरह बैठ जाए। पौध रोपण से एक दिन पहले 100 ग्राम नत्रजन, 50 ग्राम फॉस्फोरस तथा 50 ग्राम पोटाश प्रति गड्ढो के हिसाब से डालने से पौधों की स्थापना पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। पौध रोपण के लिए जुलाई–अगस्त का समय अच्छा रहता है, परन्तु पर्याप्त सिंचाई सुविधा उपलब्ध होने पर फरवरी–मार्च में भी पौधे लगाये जा सकते है। प्रत्येक गड्ढे की ऊपर की मृदा (30–50 सेमी) में निम्नलिखित कार्बनिक अवयव को अवश्य मिलायें।

10 कि.ग्रा. सड़ी गोबर
1 कि.ग्रा. वर्मीकम्पोस्ट
1 कि.ग्रा. नीम की खली
25 ग्राम ट्राइकोडरमा
25 ग्राम पीएसबी
500 ग्राम पेसिलोमीसीज कल्चर
10–20 ग्राम कार्बोफ्युरान

सिंचाई एवं जल प्रबंधन : अनार के सफल उत्पादन के लिए सिंचाई एक महत्पूर्ण कारक है। उचित समय एवं अन्तराल, आवश्यक मात्रा तथा सही स्थान पर सिंचाई करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अनार में टपक सिंचाई पद्धति अत्यधिक लाभप्रद है। क्योंकि इससे 20–43 प्रतिशत पानी की बचत होती है। साथ ही

30–35 प्रतिशत तक उपज में भी बढ़ोत्तरी होती है तथा फल फटने की समस्या का भी कुछ सीमा तक समाधान हो जाता है।

अनार में टपक सिंचाई पद्धति द्वारा पानी की आवश्यकता

मृदा प्रकार तथा जलवायु के अनुसार पानी की मात्रा में बदलाव हो सकता है।

माह	पौधे की उम्र तथा पानी की मात्रा (लीटर)				
	1	2	3	4	5
जनवरी–मार्च	3–4	10–12	25–30	35–40	45–50
अप्रेल–जून	3–4	12–15	30–40	40–50	50–60
जुलाई–सितम्बर	2.0	6–7	15–18	22–25	25730
अक्टूबर–दिसम्बर	2.0	6–7	18–20	25–30	30–55

मृदा नमी को संरक्षित रखने के लिए काली पॉलीथीन (100 माइक्रॉन) का पतवार बिछाना चाहिए तथा के ओलीम मे 6 प्रतिशत (60 ग्रा./लीटर) घोलकर पर्णीय छिड़काव करना काफी लाभप्रद रहता है।

खाद एवं उर्वरक : उर्वरक एवं सूक्ष्म पोषक तत्व निर्धारित करने के लिए मृदा परीक्षण अति आवश्यक है। सामान्य मृदा में 10 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 250 ग्राम नाइट्रोजन, 125 ग्राम पोटेशियम प्रतिवर्ष प्रति पेड़ देना चाहिए। प्रत्येक वर्ष इसकी मात्रा इस प्रकार बढ़ाते रहना चाहिए कि पाँच वर्ष बाद प्रत्येक पौधों को क्रमशः 625 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फास्फोरस तथा 250 ग्राम पोटेशियम दिया जा सके।

शुरू मे तीन वर्ष तक जब पौधों में फल नहीं आ रहे हो, उर्वरकों को तीन बार में जनवारी, जून तथा सितम्बर में देना चाहिए तथा चौथे वर्ष जब फल आने लगे तो मौसम (बहार) के अनुसार दो बार में देना चाहिए। शुष्क क्षेत्रो में मृग बहार लेने की संस्तुति की जाती है। अतः गोबर की खाद व फॉस्फोरस की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन व पोटाश की आधी मात्रा जुलाई में तथा शेष आधी अक्टूबर में पौधों के चारों तरफ एक से डेढ़ मीटर की परिधि में 15–20 से.मी. गहराई में डालकर मिट्टी में मिला देना चाहिए। अनार की खेती में सूक्ष्म तत्वों का एक अलग महत्व है इसके लिए जिंक सल्फेट (6 ग्रा./लीटर) फेरस सल्फेट (4

ग्राम/लीटर) तथा बोरेक्स (4 ग्राम/लीटर) या मल्टीप्लेक्स 2 मिली/लीटर का पर्णीय छिड़काव फूल तथा फल बनने के समय करना चाहिए।

जब पौधों में फल लगने शुरू हो जाएं तो नत्रजन : फॉस्फोरस : पोटाश 19:19:19 को ड्रिप की सहायता से 8 कि.ग्रा./हैक्टेयर की दर से एक दिन के अंतराल पर एक महीने तक दें। जब पौधों पर शतप्रतिशत फल आ जाए तो नत्रजन : फास्फोरस : पोटाश 00 : 52 : 34 या मोनोपोटेशियम फास्फेट 2.5 किलो/हैक्टेयर की मात्रा को एक दिन के अन्तराल पर एक महीने तक दें। फल की तुड़ाई के एक महीने पहले कैल्शियम नाइट्रेट की 12.5 किलो ग्राम/हैक्टेयर की मात्रा ड्रिप की सहायता से 15 दिनों के अंतराल पर दो बार दें।

सघांई एवं कांट–छांट : अनार के पौधों में आधार से अनेक शाखाएँ निकलती है। यदि इनकों समय–समय पर निकाला न जाए तो अनेक मुख्य तने बन जाते हैं जिससे उपज तथा गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उपज तथा गुणवत्ता की दृष्टि से प्रत्येक पौधों में 3–4 मुख्य तने ही रखना चाहिए तथा शेष को समय–समय पर निकालते रहना चाहिए। अनार में 3–4 साल तक एक ही परिपक्व शाखाओं के अग्रभाग में फूल एवं फल खिलते है। अतः नियमित कॉंट–छॉंट आवश्यक नहीं है। परन्तु सूखी रोगग्रस्त टहनियों, बेतरतीब शाखाओं तथा सकर्स को सषुप्ता अवस्था में निकालते रहना चाहिए। छँटाई के तुरन्त बाद बोर्डो मिश्रण (1 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

बहार नियन्त्रण : अनार में वर्ष भर फूल आते रहते हैं परन्तु तीन मुख्य मौसम हैं जिन्हें अम्बे बहार (जनवरी–फरवरी) मृग बहार (जून–जुलाई) और हस्तबहार (सितम्बर–अक्टूबर) कहते है। वर्ष में कई बार फूल आना व फल लेते रहना उपज एवं गुणवत्ता की दृष्टि से ठीक नहीं रहता शुष्क क्षेत्र में पानी की कमी तथा यहाँ की जलवायु के अनुसार मृग बहार की फसल लेने की संस्तुती की जाती है। इसमें जून–जुलाई में फूल आते हैं तथा दिसम्बर–जनवरी में फल तुड़ाई के लिए उपलब्ध हो जाते हैं अर्थात् अधिकतर फल विकास वर्षा ऋतु में पूर्ण हो जाते है। अवांछित बहार नियंत्रण के लिए कुछ समय पहले (मार्च से मई) सिंचाई बंद कर देते हैं या बहुत कम मात्रा में देते है। कुछ रसायनों जैसे थायोयूरिया, ईथ्रेल आदि (1 मिली/ली.) के पर्णीय छिड़काव द्वारा भी पतझड़ लाकर यह कार्य किया जा सकता है।

कार्यिकी विकृति

(1) फल फटना : अनार में फलों का फटना एक गंभीर समस्या है। यह समस्या शुष्क क्षेत्रों में अधिक तीव्र होती है। इस विकृति में फल फट जाते हैं। जिससे फलों की भंडारण क्षमता कम हो जाती है। फटे हुए स्थान पर फल पर फफूंदों के आक्रमण के कारण जल्दी सड़ जाते हैं एवं बाजार भाव कम मिलते है।

कारण

1. मृदा में बोरान की कमी के कारण।
2. भूमि में नमी का असंतुलन।
3. दिन व रात के तापमान में अधिक उतार–चढ़ाव

प्रबंधन

1. नियमित रूप से ड्रिप से सिंचाई करें।
2. बोरान 0.4 प्रतिशत का छिड़काव करें।
3. बोरान 0.4 प्रतिशत + जिंक सल्फेट 0.5 प्रतिशत का दो बार छिड़काव

फल तोड़ाई एवं उपज : अनार फलों का शीत गृह में 5 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 2 माह तक भण्डारित किया जा सकता है। अनार नान–क्लाइमेट्रिक फल है अतः जब फल पूर्ण रूप से पक जाये तभी पौधे से तोड़ना चाहिए। पौधों मे फल लग जाने के बाद 110–140 दिन बाद तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते है। उचित देख रेख तथा उन्नत प्रबंधन अपनाने से अनार से तीसरे वर्ष में फल लिया जा सकता है। परन्तु इसकी अच्छी फसल 5–6 वर्ष पश्चात् ही मिलती है तथा 25–30 वर्ष तक अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है। एक विकसित पेड़ पर लगभग 50–60 फल रखना उपज एवं गुणवत्ता की दृष्टि से ठीक रहता है। एक हैक्टर में 600 पौधे लग पाते हैं इस हिसाब से प्रति हैक्टेयर 90 से 120 क्विंटल तक बाजार भेजने योग्य फल मिल जाते है।

आँवला

आँवला कम देख रेख एवं कम खर्चे में भी अच्छा उत्पादन दे जाता हैं। इसके फल विटामीन 'सी' व खनिज लवणों का भण्डार होते हैं। इसी कारण इनका औषधीय महत्त्व हैं। यह कई तरह की मिट्टी क्षारीय/लवणीय तथा जिनका पी.एच. ज्यादा हो उसमें भी पनप जाता हैं।

खाद व उर्वरक : शुष्क क्षेत्रों में आँवला में खाद एवं उर्वरकों पर कोई विशेष कार्य नहीं हुआ है फिर भी सामान्यतः निम्नलिखित मात्रा में खाद व उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।

पेड की आयु (वर्ष)	गोबर की खाद किग्रा./पेड	उर्वरक किग्रा../पेड		
		यूरिया	सुपर फॉस्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1.	20–25	0.220	0.350	0.125
2.	20–25	0.440	0.700	0.250
3.	20–25	0.660	1.05	0.375
4.	20–25	0.880	1.40	0.375
5 व अधिक	20–25	1.100	1.75	0.375

गोबर की खाद व सुपर फॉस्फेट की पूरी मात्रा तथा म्यूरेट ऑफ पोटाश व यूरिया की आधी मात्रा मार्च–अप्रैल में डालें व शेष बची यूरिया तथा म्यूरेट ऑफ पोटाश की मात्रा अगस्त–सितम्बर में फल लगने के बाद देवें। बोरॉन तत्व की कमी से फलों की गुणवत्ता में कमी आ सकती है, अतः सितम्बर से अक्टूबर माह मे 0.6 प्रतिशत बोरेक्स का 2–3 छिडकाव 10–15 दिन के अन्तर पर करना चाहिए, इससे फलों का विकास अच्छा होता है तथा फलों का गिरना भी कम हो जाता है।

कटाई–छंटाई : आँवले में कटाई छंटाई की कोई विशेष आवश्यकता नहीं पडती है। आरम्भिक वर्षों में 2–3 फीट की ऊँचाई तक एकल तना रखकर 4–5 मजबूत शाखाएं जो सभी दिशाओं में निकली हों, का चयन करके अन्य को हटा देना चाहिए। प्रतिवर्ष कुछ शाखाएं सूखती रहती हैं उन्हें मार्च अप्रैल में पत्तियां गिरने के पश्चात काट देना चाहिए।

कीट एवं व्याधियाँ : आँवला की फसल में विभिन्न प्रकार के रोग एवं कीटों का प्रकोप हो सकता है, लेकिन शुष्क क्षेत्रों में कोई विशेष रोग एवं कीटों का प्रकोप नहीं देखा गया है इस तरह यहाँ पर आँवला की खेती करने पर दवाईयों के छिडकाव पर खर्चा नहीं के बराबर आता है। मुख्य रूप से दीमक के आक्रमण का भय बना रहता है। जिसके नियंत्रण के लिए क्लोरपाइरफोस नामक दवा का 0.3 प्रतिशत घोल बनाकर पौधों के तने के चारों ओर की मिट्टी में समय–समय पर डालना चाहिए।

सिंचाई : सिंचाई की बारम्बारता भूमि की किस्म तथा जलवायु पर निर्भर करती है। शुष्क क्षेत्रों में ज्यादातर बलुई मिट्टी पायी जाती है इसलिए थोडा थोडा पानी बार बार देना पडता है अगर वर्षा ठीक ठाक हो तो जुलाई से सितम्बर तक सिंचाई की आवश्यकता नहीं रहती है, लेकिन इसके बाद अक्टूबर–नवम्बर मे 15 दिन के अन्तर पर व मार्च से जून तक प्रति सप्ताह सिंचाई करनी हिए जबकि दिसम्बर–जनवरी मे सिंचाई रोक देनी चाहिए।

कीट–व्याधियाँ : राजस्थान जैसे शुष्क प्रान्त में साधारणतया किसी गंभीर बीमारी या कीट का प्रकोप नहीं देख गया हैं।

फलों की तुड़ाई एवं उपज : फल लगने के बाद 170–200 दिन बाद फल तोड़ने लायक होते हैं। पकने पर फलों का रंग हल्का हरा या हल्का पाला हो जाता हैं। औसत उपज 6–7 वर्ष बाद 60–100 कि.ग्रा. प्रति पेड़ हो सकती हैं।

गुन्दा या लसोड़ा

गुन्दा या लसोड़ा बहुवर्षीय बहुपयोगी फल वृक्ष है जिसके कच्चे फल सब्जी व अचार बनाने में उपयोगी है तथा फलों को सुखाकर परिरक्षित करना भी आसान होता है।

गुन्दे दो प्रकार के होते है : (1) छोटे फल वाले (फल वजन 3–4 ग्राम) तथा (2) बड़े फल वाले (फल वजन 6–10 ग्राम)। बड़े फल वाले गुन्दे ही सब्जी या अचार में ज्यादा उपयोगी लेकिन छोटे फल वाले गुन्दों के बीज पेड़ों को मूल वृन्त के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

प्रवर्धन : आमतौर पर गुन्दों का प्रवर्धन बीज द्वारा ही किया जाता है। (अंकुरण केवल 20–30 प्रतिशत) वैज्ञानिक तरीके से गुन्दों के पेड़ों को छोटे फल वाले गुन्दों के बीजू पौधों पर कालिकायन कर तैयार किया जाता है। इसके लिए बीजों की बुवाई जून में तथा कलिकायन अगस्त में किया जा सकता है।

पौधों की रोपाई : कलिकायन किये पौधों की रोपाई जुलाई अगस्त माह में 6 x 6 मी. की दूरी पर तैयार 2 x 2 x 2 फीट आकार के गढ्ढों में 10 किलो कम्पोस्ट व 100 ग्राम मिथाडल पेराथियान से मिश्रित मिट्टी में करे।

पेड़ों की सधाई : पहले तीन वर्ष तक अत्यधिक सधाई की जरूरत पड़ती है। पेड़ों को जमीन के ऊपर उठता हुआ चारों दिशाओं में बढ़ने के लिए प्रेरित करें।

सिंचाई : नये पौधों को पहले तीन वर्षो तक नियमित सिंचाई की जरूरत पड़ती है। इसके पश्चात् फरवरी से मई के बीच 15 दिन के अन्तराल पर लगभग 400 लीटर पानी प्रति पेड़ देना चाहिए।

खाद : पूर्ण विकसित पेड़ को 20–25 किलो ग्राम कम्पोस्ट या 30–40 किलो ग्राम गोबर की खाद प्रतिवर्ष जुलाई–अगस्त में देनी चाहिए।

पत्तों की तुड़ाई : एक समान व अगेती फसल के लिए पेड़ों की पत्तियों की तुड़ाई जनवरी के प्रथम सप्ताह में करें।

फलों की तुड़ाई एवं उपज : फलों की तुड़ाई पूर्ण विकसित होने से पहले हरी अवस्था में करनी चाहिए। फलों के लगने के पश्चात् 25–30 दिन बाद फल तुड़ाई की सही अवस्था के होते है। बीज तैयार करने के लिए फलों की तुड़ाई इनके पूरे पकने के बाद हल्के पीले रंग में बदलने के बाद करनी चाहिए। औसत उपज 50–60 किलोग्राम प्रति पेड़ वर्ष पैदा होती है।

करौंन्दा

करौंन्दा एक कांटेदार झाड़ी वाला पौधा हैं। अधिकतर इसको खेतो की बाड़ पर लगाया जाता हैं। पुर्ण विकसित अवस्था मे इसके पौधे घनी कांटेदार झाड़ी का रुप ले लेते हैं। जिससे यह पौष्टिक फल उत्पादन के साथ–साथ एक रक्षक–जैविक बाड़ का काम करती हैं। करौंन्दा की बाड़ बगीचे मे लगे अन्य पौधो के लिए सुक्ष्म वातावरण पैदा करता हैं साथ ही वायु तथा जल द्वारा होने वाले भू–क्षरण को रोकने मे भी सहायक होता हैं। करौंन्दा के फल पेक्टिन, ऊर्जा (कार्बोहाइट्रेट) तथा खनिज लवणो से युक्त होते हैं। करौंन्दा के फलों से चटनी, टार्ट, पुडिंग, सब्जी, स्क्वेश, सीरप, जैली आदि बनाई जा सकती है।

भूमि एवं जलवायु : करौंन्दा सूखा रोधी झाड़ी हैं। यह उष्ण व उपोष्ण जलवायु में अच्छा पनपता हैं। शुष्क क्षेत्रो मे भी आंशिक सिंचाई देकर इसको लगाया जा सकता है। यहां तक कि ऐसी मृदा जिसका पी. एच. 10 तक हो इसे उगाया जा सकता हैं।

किस्में : करौंन्दा मुख्यतया दो तरह का होता हैं। पौधे दोनो के एक जैसे ही दिखाई देते हैं। लेकिन फलो मे अन्तर होता है। पहले प्रकार में फल श्वेत प्रष्ठ भूमि पर गुलाबी आभा लिए होते है जबकि दूसरे प्रकार में फल गहरी हरी प्रष्ठ भूमि पर हल्की भूरी या बैंगनी आभा लिए हुए होते हैं। पन्त कृषि विश्व विद्यालय द्वारा करौंन्दे की तीन किस्मे विकसित की गई हैं। पन्त मनोहर, पन्त सूदर्शन तथा पन्त सूवर्णा।

काजरी मे भी विगत दस वर्षों से करौंन्दा के जीव द्रव्य एकत्र करने तथा उसमें से उन्नत किस्मो का चयन प्रक्रिया द्वारा विकास पर कार्य किया गया, जिसके फलस्वरुप तीन उन्नत अधिक उपज वाली किस्मो का चयन किया गया हैं। सी.जेड.के.–2011 , सी.जेड.के.–2022, व सी.जेड.के.–2031 । इनमे दो किस्मे पहले प्रकार की हैं तथा तीसरी किस्म दूसरे प्रकार की हैं।

प्रवर्धन : करौंन्दा का प्रवर्धन बीज द्वारा आसानी से किया जा सकता हैं। अधिकतर इसमे फलन स्वपरागण द्वारा होने के कारण इसके बीजू पौधा में मातृ पौधे के अधिकतर गुण आ जाते हैं। प्रवर्धन के वानस्पतिक तरीके जैसे कलम, ऊतक सवर्धन तथा गूंटी द्वारा भी यह कार्य सम्भव हैं लेकिन बीज विधि ज्यादा आसान, अधिक सफल व कम खर्चीली होने के कारण व्यापारिक स्तर पर इसे इसी विधि द्वारा ही प्रवर्धित किया जाता है।

पौधो की रोपाई : करौंन्दा के लगभग एक वर्ष आयु के पोधौ को रोपाई मे प्रयुक्त किया जाना चाहिए। जीवीत रक्षक बाड़ लगाने के लिए पौधो को 2 फिट की दुरी पर 1 घन फुट आकार के गड्ढो मे मिट्टी व अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद (1 : 3 अनुपात) को मिलाकर भरने के बाद लगाना चाहिए। करौंन्दा का बगीचा लगाने के लिए 2 x 2 x 2 फीट आकार के गड्ढो की 4–5 मीटर की दूरी पर खुदाई करे। पौधे

लगाने का सर्वोत्तम समय जुलाई –अगस्त होता हैं। हालाकि सिंचित क्षेत्रो मे पौधे मार्च माह मे भी लगाए जा सकते हैं।

खाद व उर्वरक : करौंन्दा मे देशी खाद ही पर्याप्त रहती हैं हालाकि बाड़ लगाते समय 100 ग्राम यूरिया प्रति पौधा देने से पोधे तेजी से बढ़ते हैं और बाड़ जल्दी तैयार होती है। पुर्ण विकसित पौधो मे 10 –15 किलो गोबर की खाद प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु के समय देनी चाहिए।

कटाई छँटाई : बाड़ के रुप मे लगे पोधो को हेज की तरह आगे व पीछे की तरफ से काटते हैं जबकि पौधो की बीच मे कंटिग नही करते हैं ताकि इनकी शाखाए आपस मे मिलकर घनी बाड़ का रुप ले सके बगीचे के रुप मे लगे पोधो मे नीचे से निकलने वाली शाखाओं व सकर्स को समय – समय पर निकालते रहना चाहिए। साथ ही रोग ग्रस्त व सुखी टहनीयो को भी हटाते रहे।

सिंचाई : करौंन्दा के पोधे एक बार लगने के पश्चात असानी से नही जाते हैं लेकिन नियमित फल लेने के लिए सिचाई की आवश्यकता पड़ती हैं चूंकि इसमे मार्च – अप्रैल मे फूल आते है तथा गर्मीयो मे फल पेड़ो पर लगे होते है इसलिए गर्मीयो मे 10 –12 दिन के अन्तराल पर लगभग 200 लीटर पानी प्रति पोधा देना चाहिए। वर्षा ऋतु मे सिचाई की आवश्यकता लगभग नही के बराबर रहती है। वर्षा का लम्बा अन्तराल होने पर सिचाई कर सकते है।

फलों की तुड़ाई व उपज : करौंन्दा मे फूल दो सीजन मार्च–अप्रैल तथा अक्टुम्बर–नवम्बर मे आते है मार्च–अप्रैल वाली सीजन मुख्य होती है जिसके फल अगस्त–सितम्बर मे तैयार होते है। फलो को पुरी तरह पकने से पहले तोड़ने से ही वे अचार, चटनी या अन्य उपयोग के लिए उपयुक्त रहते है। पूर्णतः पके फल बीज के लिए काम मे लेते है। औसत उपज लगभग 10–15 किलो प्रति झाड़ी होती हैं।

शुष्क क्षेत्रों के प्रमुख फलवृक्षों का कायिक प्रवर्धन

अकथ सिंह एंव पी. आर. मेघवाल

भा.कृ.अनु.प.—केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

बेर का प्रवर्धन

चूंकि बीजू पौधों में फल कई वर्षों में आता है, तथा निम्न कोटि के होते है अतः व्यावसायिक दृष्टि से बाग लगाने के लिए बेर के पौधे वानस्पतिक विधि से ही तैयार करने चाहिए।

आमतौर पर बेर का प्रवर्धन कलिकायन विधि द्वारा किया जाता है। कलिकायन की कई विधियाँ है, जैसे ढाल चश्मा, छल्ला चश्मा, पैबंद चश्मा आई चश्मा आदि प्रचलित है, किन्तु इन सभी में ढाल चश्मा (टी बडिंग) या आई चश्मा सबसे आसान व प्रचलित विधि है।

मूलवृन्त तैयार करना

मूलवृन्त तैयार करने के लिए देशी किस्म के बीज प्रयोग में लाये जाते है। कई प्रकार के जंगली बेर जैसे जिजीफस रोटन्डीफोलिया, जिजीफस रूगोसा, जिजीफस आइनाप्लिया, जिजीफस नूमलेरिया पाये जाते है। किन्तु इन सभी में जिजीफस रोटन्डीफोलिया सबसे उपयुक्त पाई गई है । पूरी तरह पके फलों से बीज एकत्रित किया जाता है जो किसी रोग या कीड़े से ग्रस्त नहीं होना चाहिए। फल पेड़ से तोड़कर एकत्रित करने चाहिए। जमीन पर गिरे हुए फलों का बीज के लिए उपयोग में नहीं लाना चाहिए। इस तरह एकत्रित फलों को दो दिनों तक पानी में डाल दें। ऐसा करने से बीज आसानी से अलग हो जाते है। जो बीज घोल में डूब जाये उसी को बुवाई के लिए काम में लाए। जो बीज घोल में तैरते रहते है उन्हें बुवाई के लिए उपयोग में नहीं लाया जाता। इसके पश्चात बीज को 5–6 मिनट के लिए शुद्ध सल्फयूरिक अम्ल में डाल देते है। तत्पश्चात् साफ पानी से अच्छी तरह धो देना चाहिए। बुवाई से पहले इन बीजों को 24 घंटे के लिये पानी में भिगोकर रखते है। ऐसा करने से बीज जल्दी तथा अधिक संख्या में अंकुरित होते है।

मूलवृन्त तीन प्रकार से तैयार किये जाते है।

(1) क्यारियों में (2) सीधे बाग लगाने के स्थान पर (3) पोलीथीन बैग/थैली में

(1) क्यारियों में बीज की बुवाई : मूलवृन्त के लिए क्यारियों में बीज की बुवाई अप्रैल के प्रथम पखवाड़े तक कर दी जाती है। क्यारियों में दो कतारों के बीच की दूरी 30 से.मी. तथा बीज से बीज की दूरी 5 से.मी. रखी जाती है। बीज की बुवाई 2–3 से.मी. की गहराई पर की जाती है। बुवाई के 15–20 दिन पश्चात अंकुरण पूरा हो जाता है। बुवाई के लगभग 40 दिन पश्चात कमजोर व सघन पौधो की छंटाई करके कतार

में पौधों की आपसी दूरी लगभग 20 से.मी. कर दी जाती है। क्यारियों में आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहते हैं। साथ ही खरपतवार भी निकालते रहते हैं। इस प्रकार क्यारियों में तैयार किये गये पौधे लगभग 70 दिन पश्चात पैन्सिल के बराबर मोटे (0.5 से.मी.) हो जाते है जो कलिकायन के योग्य हो जाते है।

(2) सीधे बाग लगाने के स्थान पर : यह विधि शुष्क क्षेत्रों के लिये अधिक उपयोगी है। इस विधि से बाग तैयार करने से पौधो को स्थानान्तरण हेतु पौधों की नर्सरी (पौधशाला) से खोदने की समस्या नहीं आती है। इस प्रकार पौधे तैयार करने हेतु मार्च के महीने में निश्चित दूरी पर बाग के लिए गड्ढे तैयार कर लिये जाते है। प्रत्येक गड्ढे में 2–3 बीज की बुवाई अप्रैल के प्रथम पखवाडे में कर देते है। इस प्रकार से पौधे जुलाई से सितम्बर के बीच कलिकायन योग्य हो जाते है।

(3) पोलीथीन बैग में : यह एक आसान विधि है जिससे तैयार पौधों के स्थानान्तरण में सुविधा होती है। इस विधि से पौधे तैयार करने के लिए 300 गेज मोटाई वाली पोलीथीन की 10 × 25 से.मी. आकार की थैलियाँ काम में लायी जाती हैं। इन थैलियों को भरने के लिए बराबर मात्रा में रेत, गोबर खाद व चिकनी मिट्टी का मिश्रण तैयार किया जाता है। थैलियों को भरने के बाद अप्रैल के प्रथम पखवाडे में बीज की बुवाई की जाती है। एक थैली में एक ही बीज बोया जाता है। इस प्रकार पोलिथीन बैग में तैयार पौधे जुलाई के अन्त तक कलिकायन योग्य हो जाते हैं। यह मूलवृन्त तैयार की सबसे उपयुक्त व व्यावसायिक विधि है।

संकुर का चयन :

राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों के लिए गोला सेव व उमरान, सबसे उपयुक्त किस्में है। किस्म के अनुरूप व लगातार कई वर्षो से अच्छी पैदावार देने वाले स्वस्थ मातृ वृक्ष से सांकुर टहनी (सायन) का चयन किया जाना चाहिए। कालिकायन के लिए कली 2 महीने पूरानी टहनी से ली जानी चाहिए। 15–20 से.मी. लम्बी जिनमें 4–6 स्वस्थ व मोटी वानस्पतिक कलियाँ मौजूद हो, को मातृ वृक्ष से काट ली जाती है। इसके पश्चात् इनसे कलिया कलिकायन चाकू द्वारा सांकुर टहनी से अलग कर लिया जाता है। यदि कलिकायन के लिए टहनियों को दूर भेजना है तो इनको नम स्फेगनम मॉस मे लपेट कर पोलिथीन की थैलियों में बन्द करके भेजा जाता है।

कलिकायन :

बेर में कलिकायन का सर्वोत्तम समय जून–जुलाई तथा सबसे आसान और प्रचलित विधि ढाल चश्मा है। कलिकायन मूलवृंत पर जमीन की सतह से लगभग 20–25 से.मी. की ऊँचाई ढाल चश्मा के लिए 3–4 से. मी. का एक खडा चीरा लगाया जाता है। इसके पश्चात् लम्बाई में दोनों तरफ की छाल को ढीला किया जाता है। सांकुर टहनी पर यदि पत्तियाँ लगी हो तो पत्तियों को इस तरह से अलग किया जाता है कि पत्ती की डठंल न टूटे अब इस कली को निकाल कर मूलवृन्त पर चीरा दिये गये स्थान पर अन्दर

डालकर अच्छी तरह बैठा कर कली को पोलिथीन की पट्टी से कस कर इस प्रकार बांधा जाता है कि कली वाला भाग खुला रहें।

कलिकायन के एक सप्ताह बाद मुलवृन्त का कुछ ऊपरी हिस्सा काटकर निकाल दिया जाता है। जिससे कली के फुटाव में सहायता मिलती है। जैसे ही कली का फुटाव शुरू हो जाये जुड़ाव बिन्दु के ऊपर से मूलवृन्त को पूरी तरह काटकर निकाल दिया जाता है। यह क्रिया कलिकायन से लगभग 15 दिनों पश्चात पूरी हो जाती है। इस प्रकार प्रस्फूरित कली जब 7–10 पत्तियों वाली टहनी बन जाये तो पौधे

स्थानांतरण के योग्य हो जाते है। इस विधि से लगभग 70–90 प्रतिशत सफलता मिलती है। कलिकायन के बाद मुलवृन्त पर जुड़ाव बिन्दु से नीचे जितनी भी कलियों का फुटाव हो उन्हें समय–समय पर निकालते रहना चाहिये।

कलिकायन (बड़िंग) करते समय ध्यान रखने योग्य बातें :

1. कलिकायन के लिए शाख (आँख या कोपल) लेने वाले पौधे अच्छी किस्म, गुणवत्ता व अधिक पैदावार देने वाले होने चाहिए।
2. बड़िंग करने का उचित समय जून से अगस्त तक ही उपयुक्त है। इससे कोपलें भी अधिक मिलती हैं और आँखें लगाने पर अधिक सफल होती हैं इसलिए समय का जरूर ध्यान रखें।
3. मौसम को ध्यान रखकर वानस्पतिक प्रसारण का कार्य करें अर्थात वर्षा न हो रही हो, मौसम साफ व वायु मण्डल में आर्द्रता होनी चाहिए।
4. साफ व तेज धार वाले यंत्र जैसे आरी, चाकू व सिकेटियर का प्रयोग करना चाहिए।
5. मूलवृन्त में चीरा लगाने के पश्चात छाल को ढीला करते समय बार–बार चाकू को छाल के भीतर नही रगड़ना चाहिए जिसके कारण अन्दर घाव हो जाता है और कोपल लगने में कम सफलता मिलती है।
6. कोपल को छोड़कर बाकी सभी को प्लास्टिक की पट्टी से कस कर बाँध देना चाहिए।
7. कोपल की वृद्धि के पश्चात फालतू उगी हुई शाखाओं को काटते रहना चाहिए।
8. नई–नई कोमल कोपलों पर हानिकारक कीड़ों का प्रभाव अधिक होता है इसलिए कीटनाषक दवा का छिड़काव करना चाहिए।
9. आँख की बढवार के समय अगर वर्षा न हो रही हो तो सिंचाई अवश्य ही करनी चाहिए।
10. पौधशाला को गर्म हवा से बचाना चाहिए तथा समय–समय पर खरपतवार निकालते रहना चाहिए।

अनार का प्रवर्धन :

सख्त काष्ठ कलम अनार के वानस्पतिक प्रर्वधन की सबसे आसान तथा व्यवसायिक विधि है। कलमें तैयार करने के लिए एक वर्षीय पकी हुई टहनियों को चुनते है। टहनियों की जब वार्षिक काट–छाँट होती है, उस समय लगभग 15–20 से.मी. लम्बी स्वस्थ कलमें जिनमें 3–4 स्वस्थ कलियाँ मौजूद हो को काट कर बंडल बना लेते है। ऊपर का कटाव आँख के 5.5 से.मी. ऊपर व नीचे का कटाव आँख के ठीक नीचे करना चाहिए। पहचान के लिए कलम का ऊपरी कटाव तिरछा व नीचे का कटाव सीधा बनाना चाहिए। तत्पश्चात कटी हुई कलमों को 0.5 प्रतिशत बाविस्टीन या कैप्टान या ब्लाइटास के घोल में भिगों लेना चाहिए तथा भिगे हुए भाग को छाया में सुखा लेना चाहिए। कलमों को लगाने से पहले आधार भाग का 5 से.मी. सिरा

50 प्रतिशत इथेनोल में बने 2000 पीपीएम (2 ग्राम/ली.) आई.बी.ए. के घोल में 55 सैकण्ड के लिए उपचारित करें इससे जड़े शीघ्र फुट जाती है। कलमों को उपयुक्त मिश्रण से भरी हुई थैलियों में थोड़ा तिरछा करके रोपण कर देते है। कलम की लगभग आधी लम्बाई भूमि के भीतर व आधी बाहर रखते है। दो आँखे भूमि के बाहर व अन्य आँखें भूमि में गाड़ देनी चाहिए। कलम को गाड़ते समय यह ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि कलम कहीं उल्टी न लग जाए। कलमे लगाने के पश्चात सिंचाइ करें व उसके बाद नियमित सिंचाई करते रहना चाहिए। लगभग 2 महीने बाद अधिक बढी हुई टहनियों की कटाई–छटाई कर देनी चाहिए तथा समय–समय पर कृषि क्रियाएँ तथा छिड़काव आदि करते रहना चाहिए।

आंवला का प्रवर्धन :

आंवले के पौधे बीज द्वारा तथा वानस्पतिक विधि द्वारा तैयार किये जा सकते हैं। परन्तु बीजू पौधे में असमरूपता होने एवं देर से फलन के कारण वानस्पतिक विधि से तैयार पौधों को लगाना चाहिए। वानस्पतिक विधि से पौधे तैयार करने के लिए पहले फरवरी–मार्च में बीजों की बुवाई करके मूलवृन्त तैयार किए जाते हैं। एक क्विंटल फल से लगभग एक किलोग्राम बीज प्राप्त होता है। प्रतिफल के हिसाब से बुवाई से पूर्व बीजों को रातभर 24 घंटे पानी में भिगो देना चाहिए। ऊपर तैरते हुए बीज को अलग कर देना चाहिए और जो बीज पानी में डुबे रहे उनकों निकालकर छाया में सुखा लें। पौधशाला की एक क्यारी में 40 किलोग्राम गोबर की पुरानी महीन खाद और पत्ती की महीन खाद मिट्टी में मिला देनी चाहिए क्यारी को अन्तिम रूप देते समय इसे भूमि के धरातल से 55 से.मी. ऊँचा रखना चाहिए। आंवले के बीजों को 90–95 से.मी. के फासले पर तैयार क्यारियों में 3–4 से.मी. के फासले पर एक से आधा से.मी. की गहराई में बो

देना चाहिए। बीजों की बुवाई मार्च–अप्रैल में अवश्य ही कर देनी चाहिए। इस बीच तेज धूप से बचाव के लिए सिकी या फूस की हल्की परत द्वारा कोमल पौधों को छाया प्रदान करनी चाहिए। बोने के बाद बीज 2–3 सप्ताह में जम जाते है तथा 2–10 से.मी. ऊँचाई के होने के बाद इन्हें पूर्व तैयार की गई क्यारियों में 30 × 20 से.मी. की दूरी पर या उचित प्रकार से भरी गई पालीथीन की थैलियों में प्रतिरोपित कर देना चाहिए।

आंवले का प्रवर्धन वानस्पतिक विधियों–कलम बंधन एवं कालिकायन द्वारा किया जाता हैं। व्यावसायिक स्तर पर पौधों का उत्पादन शील्ड कलिकायन, पैबन्द चष्मा विधि (पैच बडिंग) इनार्चिंग तथा फोरकट विधियों से किया जाता है। कलिकायन विधि से फरवरी– मार्च तथा जून से सितम्बर तक प्रवर्धन किया जा सकता हैं। कालिकायन सस्ती, सरल एवं अच्छी विधि है। जून माह में चष्मा चढाने में काफी सफलता मिलती है। शील्ड कालिकायन सबसे अच्छी विधि है। मूल वृन्त के लिये बीजू पौधा लगभग एक वर्ष पुराना होना चाहिये। स्वस्थ कलिका को षील्ड कलिकायन द्वारा जून के शुरू में लगा दिया जाता है। इसमें लगभग 70 प्रतिशत तक सफलता मिलती है। पुराने वृक्षों का शिखर रोपण भी किया जा सकता है। बीजू पेडों की द्वितीय शाखाओं को लगभग 2–2 फीट ऊपर से मार्च के महीने में काटा जा सकता है। इससे निकले प्ररोहों पर वर्म कलिकायन (शील्ड बडिंग) द्वारा अच्छी किस्म की कलिका लगा दी जाती है। वानस्पतिक विधि के द्वारा निम्न गुणवत्ता वाले पौधे व बीजू पौधों को उच्च गुणवत्ता वाले पौधों में परिवर्तित किया जा सकता है।

गूंदा का वानस्पतिक प्रवर्धन :

पॉलीथीन बैग में पौधे तैयार करने के लिए 300 गेज मोटाई वाली पोलीथीन की 15 X 30 से.मी. आकार की थैलियाँ काम में लायी जाती हैं। इन थैलियों को भरने के लिए रेत, गोबर खाद व चिकनी मिट्‌टी का मिश्रण तैयार किया जाता है। बुवाई से पहले इन बीजों को 24 घंटे के लिये पानी में भिगोकर रखते है। ऐसा करने से बीज जल्दी तथा अधिक संख्या में अंकुरित होते है। थैलियों को भरने के बाद मई में बीज की बुवाई की जाती है। एक थैली में एक ही बीज बोया जाता है। इस प्रकार पोलिथीन बैग में तैयार पौधे जुलाई के अन्त तक कलिकायन योग्य हो जाते हैं। यह मूलवृन्त तैयार की सबसे उपयुक्त व व्यावसायिक विधि है। बेर की तरह गूंदा में कलिकायन का सर्वोत्तम समय जुलाई–अगस्त तथा सबसे आसान और प्रचलित विधि ढाल चशमा है। कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित सभी पौधे, पैतृक समरूप होते हैं जिनके फलस्वरूप 3 से 4 वर्षों के पश्चात् अच्छी पैदावार पायी जाती है।

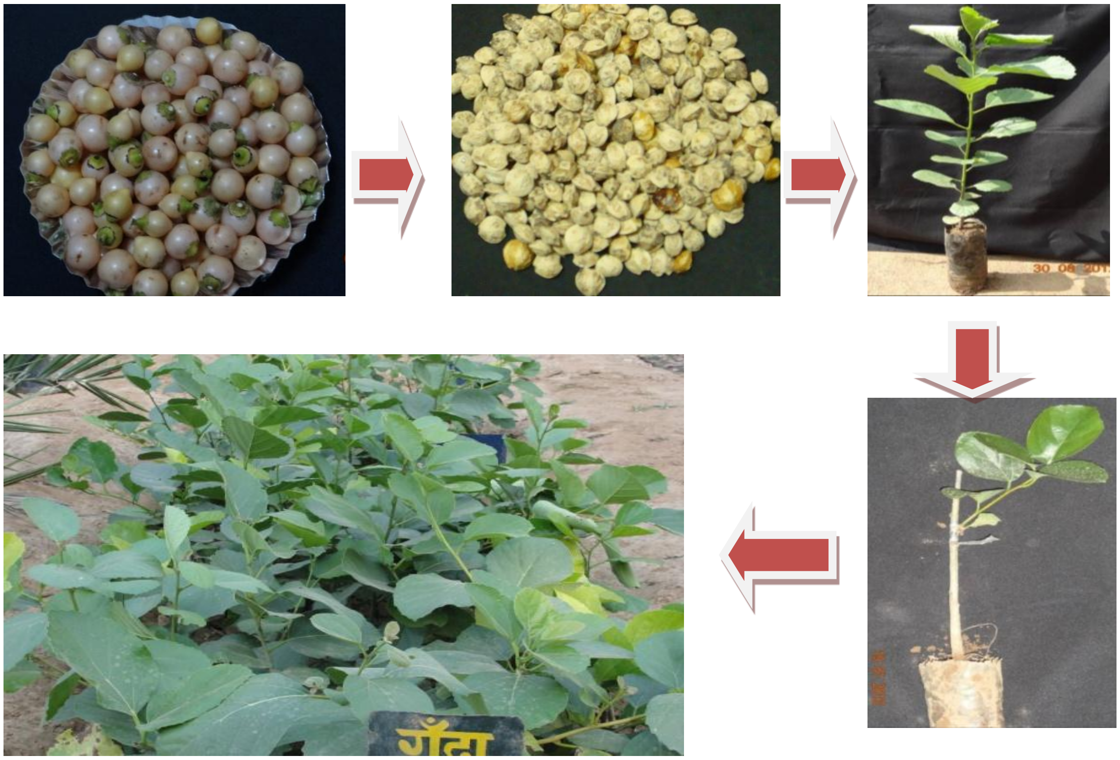

शुष्क क्षेत्रों के अन्य फलवृक्षों के प्रवर्धन की व्यवसायिक विधियाँ

फल वृक्ष	व्यवसायिक विधियाँ	प्रवर्धन का समय
संतरा	'टी' चश्मा या ढाल चश्मा	मार्च–अप्रैल या अगस्त–सितम्बर
निम्बू	कलम एवं बीज द्वारा	फरवरी–मार्च या अगस्त–सितम्बर
खजूर	बीज	जून–जुलाई
पपीता	बीज द्वारा	मई–जून, फरवरी–मार्च
फालसा	काष्ठ कलम	दिसम्बर–जनवरी
करौंदा	कलम	जून–जुलाई
अंजीर	काष्ठ कलम	दिसम्बर–जनवरी
शहतूत	कलम	जुलाई–सितम्बर
बेल	पैबन्दी चश्मा	जून–जुलाई
खेजड़ी	ढाल चश्मा या 'टी' चश्मा	जून–जुलाई

शुष्क क्षेत्र में हाई–टेक सब्जी उत्पादन

प्रदीप कुमार

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

सब्जियाँ हमारे दैनिक आहार का प्रमुख हिस्सा हैं। विटामिन्स, खनिज लवण, खाद्य रेशा, फोलेट्स आदि आवश्यक पोषक तत्व सब्जियों में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसके अलावा इनमें कई प्रकार के एंटीओक्सीडेंट्स भी पाये जाते हैं जो शरीर में कई रोगों के प्रति लड़ने के लिए सक्षम होते हैं। बढ़ती आबादी के साथ–साथ लोगों में स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरुकता के कारण सब्जियों की माँग बढ़ रही है, जिससे अन्य फसलों की तुलना में सब्जियों के बाजार भाव काफी अधिक होते हैं, परिणामस्वरूप किसानों के लिए सब्जी उत्पादन एक लाभकारी व्यवसाय है।

वर्तमान में हमारे देश में कुल 94 लाख हैक्टर भूमि पर सब्जी की खेती की जा रही है और इससे लगभग 16.3 करोड़ टन सब्जी का उत्पादन हो रहा है। पिछले कई वर्षों से विश्व में हमारा देश चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा सब्जी उत्पादक देश है। परन्तु हमारे देश (17.5 टन/हैक्टर) व खासकर हमारे राज्य– राजस्थान (7.5 टन/हैक्टर) का औसत सब्जी की उत्पादकता विश्व औसत (19.5 टन /हैक्टर) से काफी कम है। वर्तमान परिदृश्य में विभिन्न कारणों से सिमटती भूमि पर अधिक सकल सब्जी उत्पादन लेने हेतु प्रति इकाई अधिक उत्पादन प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है, जिसके लिए यथासंभव उन्नत और नवीनतम तकनीकियों का इस्तेमाल करना जरूरी है।

उन्नत व संकर किस्मों का उपयोग

आज भी हमारे देश के विभिन्न भागों में काफी किसान देशी अथवा परंपरागत उपयोग में ली जा रही किस्मों का इस्तेमाल करते आ रहे हैं जिसका उत्पादन काफी कम होता है। दूसरा, वर्ष दर वर्ष एक ही बीज का इस्तेमाल भी कम उत्पादन का कारण है। इसलिए परपरागित किस्मों के बीज 2–3 वर्षों के अंतराल पर जबकि संकर किस्मों के बीज हर वर्ष नया उपयोग में लेना चाहिए। चूंकि बीज किसी भी फसल के सफल उत्पादन का आधारभूत अंग है अतः बुवाई के लिए उपयोग में लाये जाने वाले बीज की गुणवत्ता सुनिश्चित करना अत्यंत आवश्यक है। परपरागित किस्मों के

बीज यदि किसान भाई स्वयं तैयार कर रहे हों तो इसके गुणवत्तापूर्ण उत्पादन की वैज्ञानिकों द्वारा निर्देशित सम्पूर्ण उन्नत प्रक्रिया को अपनाएं तथा तैयार बीज को अच्छे से भंडारित भी करें। आमतौर पर संकर बीज का उत्पादन संभव नहीं होता अतः इसे विश्वसनीय स्त्रोत से ही खरीदें।

उन्नत सब्जी पौध उत्पादन

बीज की भाँति रोपित की जाने वाली सब्जी फसलों की उन्नत तरीके से तैयार पौध भी अच्छे उत्पादन का आधार है। सब्जी–पौध को ऊंची उठी (5–6 इंच) क्यारिओं में अथवा प्लास्टिक की प्रो–ट्रे में तैयार करना चाहिए। क्यारिओं को बुवाई से पूर्व भली–भाँति तैयार कर लेनी चाहिए। मिट्टी में मौजूद हानिकारक जीवों को नष्ट करने हेतु मृदा का सौर्यीकरण अत्यंत आवश्यक होता है। इसे गर्मियों (मई–जून) की तेज धूप से या पानी से तर किए हुये खेत को पारदर्शी पॉलिथीन (50 माइक्रोन) से 3–4 सप्ताह तक ढँककर या बुवाई के लगभग 2 सप्ताह पूर्व 1.5–2.0 प्रतिशत फोर्मलीन के घोल (4–5 ली./वर्ग मी.) से तर करने के बाद 4–5 दिनों तक पॉलिथीन से ढककर किया जाना चाहिए। इसके अलावा बुवाई से पूर्व क्यारी की मिट्टी को ट्राइकोडर्मा (5–10 ग्राम/वर्ग मी.) अथवा कैप्टान/थाइरम अथवा बाविस्टीन (5 ग्राम/वर्ग मी.) से उपचारित करना चाहिए। यदि बीज पहले से उपचारित न हों तो उन्हें भी कैप्टान या थाइरम (2ग्राम/कि.ग्राम) दर से उपचारित करने के बाद ही बोना चाहिए।

टमाटर, बैंगन व मिर्च के लिए 98 छिद्र वाली जबकि खीरा, ककड़ी, लौकी, खरबूजा, तरबूज व तोरी के लिए 50 छिद्र वाली प्रो–ट्रेज का इस्तेमाल करना चाहिए। प्रो–ट्रेज में मीडिया के रूप में कोकोपिट, वर्मिकुलाइट, परलाइट का 3:1:1 के अनुपात या फिर केवल कंपोष्ट (15–20 प्रतिशत) मिश्रित कोकोपिट में भी बीज की बुवाई कर सकते हैं। पौधों के अच्छी वृद्धि व विकास हेतु बीजों के जमाव के बाद सप्ताह में एक बार घुलनशील पोषक तत्वों से पौधों की जड़ों को तर कर देना चाहिए। जमाव के 12–15 दिन पश्चात बाविस्टीन (2 ग्राम/ली.) तथा इमिडाक्लोप्रिड (0.3 ग्राम/ली.) का पौधों पर छिडकाव करना चाहिए। संभव हो तो नर्सरी के चारो तरफ 40–60 मेस की कीट–अवरोधी जाली लगाना चाहिए इससे कीटों के साथ–साथ इनके द्वारा प्रसारित वाइरस के प्रकोप से भी बचाव होता है और पौधें स्वस्थ तैयार होते हैं।

रोपाई से पूर्व सब्जी पौध का उपचार

रोपाई से पूर्व कुछ समय तक पौधों की जड़ों को मुख्य पोषक तत्वों (एन,पी. तथा के.) के घोल से तर करने से पौधों की बढ़वार और उत्पादन बेहतर पाया गया है। इसके अलावा ट्राइकोडर्मा, एजोटोवेक्टर, माइकोराइजा आदि से भी उपचारित करने के बाद रोपाई करने से फसल उत्पादन में बढ़ोत्तरी होती है साथ ही उत्पाद की गुणवत्ता में भी वृद्धि होती है। कभी–कभी कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में कुछ विशेष प्रकार के वृद्धि नियामकों का इस्तेमाल भी सब्जी–फसल उत्पादन में लाभकारी पाया गया है।

ड्रिप या टपक / बूंद–बूंद सिंचाई

लगभग सभी प्रकार की सब्जी फसलें पंक्तियों में उगाई जाती हैं और इनमें टपक सिंचाई पद्धति का इस्तेमाल आसानी से किया जा सकता है। इस विधि में पानी पौधों की जड़ों के पास दिया जाता है, इसलिए परंपरागत सतही सिंचाई विधि की अपेक्षा टपक पद्धति से सिंचाई करने से लगभग 40 से 60 प्रतिशत तक पानी की बचत की जा सकती है। पौधों को उपयुक्त मात्रा में व लगातार पानी मिलते रहने से उनकी वृद्धि व विकास भी उत्तम होता है जिससे उत्पादन व उसकी गुणवत्ता भी बेहतर होती है। इस विधि द्वारा पानी के साथ पानी में घुलनशील उर्वरकों तथा अन्य रसायनों का भी प्रयोग आसानी से किया जा सकता है, जिससे उनकी उपयोग दक्षता काफी अच्छी होती है। इसके अलावा पंक्तियों के बीच के स्थान में पानी न मिलने के कारण खरपतर की समस्या भी काफी कम होती है और कीड़े व बीमारियाँ भी अपेक्षाकृत कम लगती हैं।

मल्च / पलवार

मल्च यानि पलवार का इस्तेमाल पौधों के जड़ के पास के वातावरण को अनुकूल बनाने के लिए किया जाता है। साथ ही यह जल संरक्षण करने व खरपतवार को नियंत्रित करने तथा जड़ क्षेत्र की मिट्टी को भुरभुरा रखने में भी मदद करता है। पलवार के रूप में प्लास्टिक फिल्म (30 से 50 माइक्रान), घास–फूस, पौधों कि सूखी पत्तियाँ, पत्थर आदि का प्रयोग किया जाता है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली के साथ पलवार के प्रयोग से अपेक्षाकृत अधिक

जल बचत, पौधों के उत्तम विकास व उत्पादन के साथ–साथ साफ तथा गुणवत्तापूर्ण उत्पाद प्राप्त किया जा सकता है, जिससे अपेक्षाकृत किसानों को उनके उत्पाद का बाजार भाव भी अधिक मिलता है।

कीट–नियंत्रक नेट/जाली

कीट नियंत्रक जाली प्लास्टिक की बनी होती है जिसमें 40 से 60 छिद्र प्रति इंच होते हैं। इसका इस्तेमाल मुख्यतया नर्सरी में पौंध तैयार करते समय किया जाता है। यह वाइरस का प्रसार करने वाले कीटों जैसे सफेद मक्खी, चेपा, जैसिड, थ्रिप्स आदि को पौधों के पहुँच से दूर रखने के लिए प्रयोग की जाती है। इस जाली को नर्सरी के चारों तरफ किसी ढांचे पर फिट करते हैं। इसका इस्तेमाल स्व–वातानुकूलित पॉलीहाउस व शेड–नेट हाउस संरचना के किनारों पर इन कीटों के अंदर प्रवेश को रोकने के लिए भी होता है।

प्लास्टिक लो–टनेल या रो–कवर

प्लास्टिक लो–टनेल या रो–कवर पारदर्शी पॉलिथीन की एक ऐसी संरचना होती हैं जो सर्दी के दिनों में पंक्ति या बेड में बोये या रोपित पौधों को लोहे या लकड़ी के अर्ध–चंद्राकार खांचे पर टिकी होती हैं। बाहर की अपेक्षा इसके अंदर का वातावरण अधिक गर्म रहता है और पौधे आसानी से विकास करते रहते हैं। इस संरचना के उपयोग से पौधों को कम तापक्रम के साथ तेज हवाओं, पाला तथा ओले जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों से बचाया जा सकता है और इनकी आशंका समाप्त होने व बाहर के तापमान में वृद्धि होने पर पॉलिथीन आवरण को हटा देते हैं। आमतौर पर उत्तर भारत के अधिकतर मैदानी भागों के खुले खेत में जहाँ जनवरी–फरवरी में फसल लेना संभव नहीं है, इसके प्रयोग से गर्मियों में ली जाने वाली खासकर बेलवाली सब्जी–फसलों (खीरा, ककड़ी, खरबूजा, तरबूज , लौकी, टिंडा आदि) की इन दिनों लो–टनेल के अंदर बुवाई या पौध की रोपाई करके लगभग एक–माह पूर्व फसल की तुड़ाई अर्थात इनकी अगेती खेती कर पाना संभव है। इस तरह थोड़ी तकनीकी गतिविधियाँ अपनाकर किसानों को उनके उत्पाद का मूल्य लगभग दो–गुना मिल सकता है।

छायादार जाली गृह (शेड–नेट हाउस)

पॉलीहाउस की भाँति शेड–नेट हाउस अथवा छायादार जाली घर नेट अथवा जाली से कवर की हुई किसी ढांचे पर खड़ी संरचना है। ढांचा लोहे, बांस, लकड़ी आदि का बनाया जा सकता है। इसका आकार इसकी

उपयोगिता पर निर्भर करता है। नेट पराबैंगनी किरण–रोधी होती हैं और नेट की सघनता इसके इस्तेमाल के उद्देश्य पर निर्भर करती है। आमतौर पर 50 प्रतिशत तक प्रकाश को रोकने वाली नेट सब्जी उत्पादन के लिए उपयुक्त होती है। नेट कई रंगों में आती है, जिसमें हरी हरी़, काली तथा सफेद रंगों वाली नेट का इस्तेमाल व्यावसायिक स्तर पर अधिक किया जाता है। यह सूर्य की किरणों की तेजी (प्रकाश) को रोककर अंदर गर्मी को कम करने में सहायक होती है जिससे बाहर की अपेक्षा 4–6 सेन्टीग्रेड तापक्रम कम हो जाता है। इसके अंदर फौगर तथा ड्रिप सिंचाई व्यवस्था कर गर्मियों में नर्सरी पौंध व सब्जी उत्पादन आसानी से किया जा सकता है। यह वायु तथा ओले के प्रकोप को भी कम करती है।

ग्रीनहाउस/पॉलीहाउस

ग्रीनहाउस/पॉलीहाउस का इस्तेमाल आमतौर पर ठंडे इलाकों में सर्दियों के मौसम में जब बाहर फसल लेना संभव नहीं होता था तब किया जाता था, परन्तु आजकल मैदानी क्षेत्रों जैसे शुष्क क्षेत्रों में जहां गर्मियों में तापक्रम 40–45 सेन्टीग्रेड से भी अधिक चला जाता है वहाँ भी इसका सफलतम उपयोग होता देख सकते हैं। इसकी वजह इसकी संरचना व बनावट में आए बदलाव है। आज पॉलीहाउस के अंदर के तापमान को कम करने के लिए शेड–नेट व फौगर जबकि कहीं–कहीं तो बाहर की हवा को ठंडा कर अंदर (कूलिंग पैड) तथा अंदर की गर्म हवा बाहर फेंकने वाले पंखे (एक्झौस्ट) का भी इस्तेमाल किया जा रहा है जिन्हें बिजली अथवा सौर्य ऊर्जा द्वारा संचालित किया जाता है। इसकी वजह से पूरे वर्षभर सब्जी की फसलें खासकर खीरा तथा टमाटर व शिमला मिर्च की खेती कर पाना संभव हो गया है।

पॉलीहाउस में प्रयुक्त होने वाली पॉलिथीन पराबैंगनी किरण–रोधी होती हैं जिनकी मोटाई आमतौर पर 250–300 माइक्रोन होती है और लगभग 4–5 वर्षों तक चलती है। आमतौर पर एक एकड़ में स्व–वातानुकूलित पॉलीहाउस लगाने का प्रति वर्ग मीटर का खर्च लगभग 850 से 900 रूपये आता है, जबकि हाई–टेक पॉलीहाउस का खर्च लगभग 2000 रूपये व शेड–नेट का खर्च 700 से 750 रूपये प्रति वर्ग मीटर के बीच। आजकल विभिन्न सरकारी स्कीमों के अंतर्गत अच्छी मात्रा में किसानों को पॉलीहाउस लगाने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। इसके लिए 50 (बड़े काश्तकार) से लेकर 70% (छोटे व मझोलेकाश्तकार या फिर एस.सी./एस.टी.) तक कि छूट सब्सिडी के रूप में भी दी जा रही है। पॉलीहाउस

के अंदर आमतौर पर लतावली फसलों अथवा किस्मों का चयन किया जाता है जो जमीन की सतह पर फैलने के विपरीत सीधी ऊंचाई में बढ़वार कर सके और जिससे कम क्षेत्र में अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सके। खीरे में ऐसी किस्में हैं जिनमें केवल मादा फूल ही आते हैं और उनमें परागण की आवश्यकता भी नहीं होती। जबकि टमाटर व मिर्च में सीधी बढ़ाने वाली किस्में उपलब्ध हैं परन्तु उनमें परागण की आवश्यकता होती है। परागण की प्रक्रिया खासकर टमाटर में मधुमक्खियों या बंबल–बी (मक्खी) द्वारा अथवा हाथ से फूलों के गुच्छों को हिलाकर या फिर बाइब्रेटर के इस्तेमाल से किया जाता है।

फसल	**प्रमुख किस्म**
खीरा	टर्मिनेटर, रीका, कियान, इंफिनिटी, डिफ़ेंडर, Y–225 आदि
टमाटर	4266 अभिरंग, माइला, पंत पॉलीहाऊस टमाटर–1 & 2, नवीन, नवीन 2000, रक्षिता आदि
शिमला मिर्च	हरीः इन्दिरा, भारत, कैलिफोर्निया वंडर पीलीः बॉम्बी, ओरेबेलो, NS-281, येलो वंडर, रायल वंडर, Super gold लालः अब्राहम, NS-280, ममता, लक्ष्मी आदि

सब्जियों में ग्राफ्टिंग

बहुवर्षीय फल–वृक्षों के विपरीत सब्जियों में ग्राफ्टिंग का उपयोग एक नवाचार है। चूंकि आमतौर पर उत्तम उत्पादन व गुणवत्ता की क्षमता वाली व्यावसायिक किस्में सामान्य दशा में तो अच्छी चलती हैं परंतु किसी विशेष प्रतिकूल परिस्थिति (जैविक व अजैविक कारकों) होने पर इनकी उत्पादन क्षमता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस दशा में इन किस्मों के तने (शांकुर–ऊपरी भाग) को प्रतिकूल परिस्थिति के प्रति असंवेदनशील/कठोर या असहिष्णु किस्म (मूलवृंत– देशी/ जंगली या विशेष परिस्थिति के प्रति तैयार किस्म) के तने के ऊपर ग्राफ्टिंग द्वारा जोड़ा जाता है। इस तरह तैयार पौधें में दोनों पौधों के विशिष्टतम गुण आ जाते हैं और इसमें प्रतिकूल परिस्थितियों से लड़ने की क्षमता बढ़ जाती है तथा उत्पादन व गुणवत्ता अपेक्षाकृत कम घटती है। ग्राफ्टिंग एकीकृत फसल प्रबंधन का एक प्रमुख अंग कहलाती है क्योंकि विशिष्ट मूलवृंत पर तैयार ग्राफ्टेड पौधों के इस्तेमाल से काफी हद तक रसायनों के इस्तेमाल में भी कमी की जा सकती है। ग्राफ्टेड पौधें तैयार करना मुश्किल काम नहीं है बस इसमे कुछ विशेष सावधानी रखने की जरूरत पड़ती है जैसे सही शांकुर किस्म व मूलवृंत का चुनाव उचित बुवाई समय तथा सही समय पर ग्राफ्टिंग ग्राफ्ट सफल होने के लिए उचित तापक्रम व नमी बनाए रखना कठोरी कारण व्यवस्था आदि।

ग्राफ्टिंग टमाटर कुल की सब्जियों जैसे टमाटर, बैंगन व मिर्ची तथा कद्दू वर्गीय सब्जियों जैसे खीरा, खरबूजा, तरबूज, व करेला में काफी उपयुक्त पायी गयी है। खासकर पॉलीहाउस में जहां मृदा जनित व्याधाएँ जैसे फफूँद, सूत्रकृमि आदि की समस्या काफी तीव्र होती है के लिए ग्राफ्टिंग एक कारगर तकनीक के रूप में उभर के आई है। इसके अलावा इसका इस्तेमाल सब्जी उत्पादन में अधिक ठंड या गर्मी, मृदा लावनीयता, जल भराव या सूखे की दशा में भी संभव है। उदाहरण स्वरूप काजरी में किए गए अनुसंधान में खीरे के पौधे को फिग–लीफ गौर्ड के मूलवृंत पर कलम करके सामान्य से कम तापक्रम (16^0C) पर उगाकर खीरे के उत्पादन में 30% की वृद्धि दर्ज की गयी। इसी प्रकार भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान में हुये शोध में जल भराव की दशा में बैगन पर की गयी टमाटर की कलम से कलमी टमाटर का उत्पादन सामान्य टमाटर से अच्छा पाया गया। भविष्य में जड़ संबंधी व्यधाओं जैसे फफूंद, जीवाणु, सूत्रकृमि आदि व मृदा व पानी की लवणता वाली परिस्थितियों में भी ग्राफ्टिंग या कलम द्वारा सब्जी का उत्पादन अच्छा कर पाना संभव होगा। इस प्रकार विपरीत परिस्थितियों में भी सब्जियों का उन्नत उत्पादन संभव हो सकेगा।

मृदा–रहित सब्जी उत्पादन (हाइड्रोपोनिक)

हाइड्रोपोनिक या मृदा–रहित उत्पादन पद्धति एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें पौधें अपने वृद्धि व विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों के लिए मिट्टी पर नहीं बल्कि पोषक तत्व घोल पर निर्भर रहते हैं। इस पद्धति की जल उपयोग दक्षता सर्वाधिक होती है अर्थात पानी की सर्वाधिक बचत संभव है। पानी को पोषक तत्वों के

घोल के रूप में सीधे पौधों की जड़ को दिया जाता है जिसमें अतिरिक्त घोल वापस घूमकर पुनः मुख्य टैंक में एकत्रित होकर वापस सिंचाई में प्रयुक्त होता रहता है। पौधों को आमतौर पर प्लास्टिक के बैग या कंटेनर–गमले, ट्रफ, टंकी फिर प्लास्टिक की पाइपों में उगाते हैं। पौधों की जड़ों को सहारा देने के लिए विभिन्न पदार्थों जैसे बालू–रेत, कंकड़, कोको बौल, नारियल का बुरादा (कोको–पीट), परलाइट, आदि जिसमें पोषण–घोल का बहाव आसानी से बना रह सके का उपयोग करते हैं। इस पद्धति में पौधें मृदा संबन्धित व्याधाओं के प्रकोप से बचे रहते हैं और उत्पाद भी उच्च कोटी का प्राप्त होता है।

ऐसे स्थान जहाँ की मिट्टी की गुणवत्ता किसी कारण से फसल उत्पादन हेतु उपयुक्त न हो जैसे– मृदा क्षारीयता या अम्लीयता, पथरीली व कंकरीली जमीन, सूत्रकृमि व फंफूद जनित रोगों के प्रकोप, इस पद्धति के उपयोग से नियंत्रित वातावरण (ग्रीनहाउस) में खेती सम्भव है। इस पद्धति के लिए वर्षा का एकत्रित पानी अन्यथा आर. ओ. का पानी जिसका पी.एच. मान 6 से कम हो सर्वाधिक उपयुक्त होता है। यह पद्धति कुछ मूलभूत सावधानियों जैसे पौधों की किस्म व अवस्था के अनुसार पोषक तत्वों की उचित मात्रा का प्रवाह, घोल का पी एच मान (5.8 से 6.5 के मध्य व ई.सी. 2 के आस–पास), पोषण घोल में उचित वायु संचार, आदि को ध्यान में रखकर इसे आसानी से प्रयोग किया जा सकता है। हाइड्रोपोनिक पद्धति से तैयार सब्जियाँ अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छ, आकर्षक व गुणवत्ता वाली होती हैं जिसके कारण इनका बाजार मूल्य भी अपेक्षाकृत अधिक मिलता है। इसका उपयोग पश्चिमी देशों में सब्जी व फूल उत्पादन में काफी हो रहा है।

कैर की पौधशाला प्रबंधन, रोपण एंव महत्व

एच. आर. मेहला, जे. पी. सिंह एवं धीरज सिंह

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

कैर का वानस्पतिक नाम *काप्पारिस डेसीडुआ* है तथा यह केपरिडेसी कुल की कंटीली, बहुशाखीय, चिकनी व चमकदार झाड़ी है, जिसकी ऊंचाई प्रायः 2.0 से 5.0 मीटर होती है। यदि इसकी काट–छांट ठीक तरह से की जाए तो यह एक लघु वृक्ष का रूप ले लेती है। कैर राजस्थान के शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में प्राकृतिक अवस्था में बहुतायत से पाया जाता है। यह झाड़ी राजस्थान के बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर, झुंझनु, जालौर, सिरोही, जोधपुर, नागौर, पाली, चूरू, सीकर, टोंक, अजमेर आदि जिलों में मिलती है। इसके अलावा यह पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश के शुष्क एवं अर्ध–शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में भी पाया जाता है। इसके ताजा कच्चे फलों का उपयोग सब्जी व अचार बनाने में किया जाता है। यह वातावरण की विपरीत परिस्थितियों जैसे वर्षा का कम होना, वर्षा का अनियमित वितरण, सूखा पड़ना, तेज आंधियाँ चलना के बावजूद भी आसानी से वृद्धि करता है। कैर को पानी की कम आवश्यकता होती है क्योंकि इसकी जड़ें भूमि में गहराई तक जाती है तथा इसमें पत्तियाँ नहीं होने के कारण पानी की वाष्पोत्सर्जन के रूप में कम हानि होती है।

कैर की खेती के लिए उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र उपयुक्त माने जाते हैं तथा औसतन 150–200 मि.मी. वर्षा पर्याप्त रहती है लेकिन 500 मि.मी. तक वर्षा वाले क्षेत्रों में इसकी बढ़वार अधिक पाई जाती है। यह बारानी क्षेत्रों में सभी प्रकार की भूमियों जैसे बलुई, पथरीली, ऊसर एवं कंकरीली भूमि में आसानी से उगाया जाता है। प्राकृतिक रूप में यह कम उपजाऊ एवं कम मात्रा में कार्बनिक पदार्थ वाली भूमियों में बहुतायत में पाया जाता है।

प्रवर्धन :

कैर पश्चिमी राजस्थान में कम पानी में आसानी से उगने वाली झाड़ी है। इसका प्रवर्धन मुख्यतः बीज द्वारा होता है। इसके बीजों में प्रसुप्ति अवस्था नहीं होने के कारण ताजे बीजों द्वारा प्रवर्धन होता है। कैर को जड़ों के भूस्तारिक तथा कलमों के द्वारा भी प्रवर्धित किया जा सकता है। काष्ठ एवं मध्यम काष्ठ (सेमी हार्डवुड) कलमों को 1000 पी.पी.एम. इंडोल ब्यूटाइरिक अम्ल (आई.बी.ए.) घोल में 4–5 सेकेण्ड़ तक डुबोकर लगाने से आशाजनक परिणाम मिलते हैं।

पौधशाला तैयार करना :

पौधशाला का कार्य जुलाई–अगस्त महीनों में करना चाहिए। पौध तैयार करने के लिए 25X10 से.मी. आकार की पॉलिथीन की थैलियों को बलुई मिट्टी, चिकनी मिट्टी और गोबर की खाद क्रमशः 2:1:1 के अनुपात में भर देनी चाहिए। थैली के पैंदे में 3–4 छेद कर देनें चाहिए जिससे जल निकास होता रहे एवं वायु संचार बना रहे। थैलियों में नमी बनाए रखनी चाहिए तथा खरपतवारों को हाथ से उखाड़ कर फेंक देना चाहिए। कैर के बीजों का अंकुरण 10–15 दिन के अन्दर हो जाता है (छायाचित्र 1)। पौधशाला से पौधों को एक वर्ष बाद वर्षा ऋतु में इच्छित स्थान पर रोपित करना चाहिए।

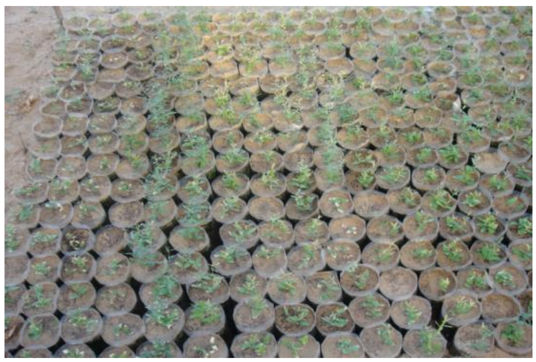

छायाचित्र 1: पौधशाला में कैर की नर्सरी

कैर की पौधशाला तैयार करने में एक समस्या देखी गयी है कि अच्छे अंकुरण होने के कुछ सप्ताह बाद पौध की मृत्यु दर अधिक हो जाती है। कैर पौध की मृत्यु दर को रोकने के लिए पॉलिथीन की थैलियों के स्थान पर खाली प्लास्टिक पाइप का उपयोग किया जा सकता है। खाली प्लास्टिक पाइप में पौधों के जीवित रहने की दर प्लास्टिक थैली (< 50 %) की तुलना में अधिक (> 90 %) पाई गई तथा जड़ तना अनुपात भी प्लास्टिक थैली (0.63) की तुलना में अधिक (0.84) पाया गया (छायाचित्र 2)।

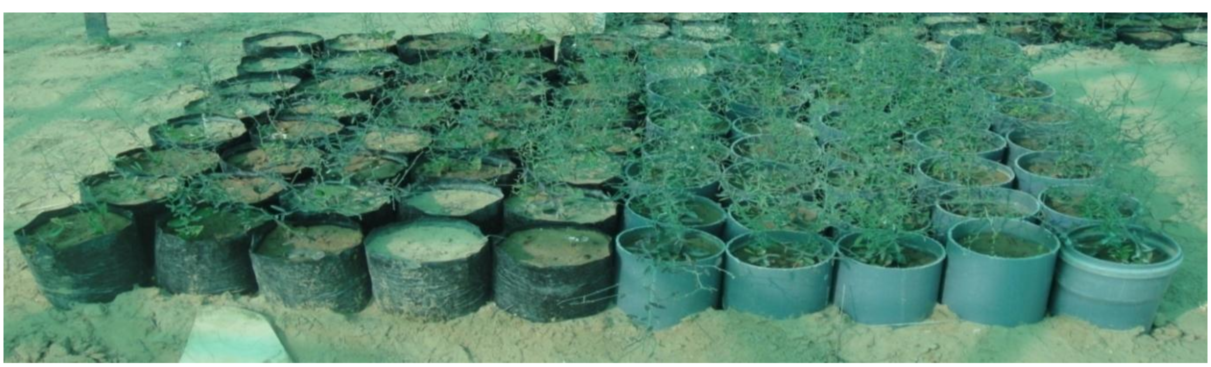

छायाचित्र 2: पौधशाला में कैर की पौध प्लास्टिक थैली में (बांई ओर) तथा खाली प्लास्टिक पाइप (दांई ओर)

रोपण :

वर्तमान में कैर की खेती परम्परागत तरीके से की जा रही है। पौधे से पौधे की दूरी कैर की वानस्पतिक वृद्धि पर निर्भर करती है। वैज्ञानिक तरीके से कैर की खेती करने के लिए पौधे से पौधे की दूरी तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी 5X5 मीटर रखनी चाहिए। इस प्रकार तैयार की गई पद्धति से प्रति हेक्टेयर 400 पौधे लगाये जा सकते हैं। इसको लगाने के लिए गड्ढ़ों की खुदाई मई–जून में करनी चाहिए तथा उनकी गहराई, लंबाई एवं चौड़ाई हल्की मिट्टी में क्रमशः 2X2X2 फीट तथा भारी मिट्टी में क्रमशः 3X3X3 फीट रखनी चाहिए। इसके बाद गड्ढ़ों को खुला छोड़ देना चाहिए जिससे अधिक तापमान या गर्मी से मिट्टी में उपस्थित कीड़ों एवं बीमारियों का कुछ हद तक निवारण हो सके। बरसात आने से पहले गड्ढ़ों को वांछित मिश्रण (मिट्टी व 10 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद) से भर देना चाहिए। गड्ढ़ों में पौधों की रोपाई का कार्य वर्षा आते ही करना चाहिए।

यदि पौधशाला में खाली प्लास्टिक पाइप में कैर की पौध तैयार की गयी है तो छः माह उम्र के पौधें फरवरी माह के अन्तिम सप्ताह में खाली पाईप के साथ प्रक्षेत्र में रोपे जा सकते हैं। गडढा करने के उपरान्त प्लास्टिक पाईप को पौधे सहित गडढे में रखकर सावधानीपूर्वक ऊपर से चोट द्वारा बिना पौधे की जड़ों के चारों तरफ की मिट्टी को बिना नुकसान पहुँचाए लगा देते हैं। मार्च–अप्रेल के दौरान पाईप में एक दिन छोड़कर तथा मई माह के बाद प्रतिदिन एक लीटर पानी पहली वर्षा होने तक देते हैं। जुलाई माह में वर्षा के तुरन्त बाद पाईप को सावधानीपूर्वक खींचकर निकाल लेते हैं। इस तरीके द्वारा चार माह में प्रति पौधा लगभग सौ लीटर पानी की आवश्यकता रहती है तथा वर्षा से पहले पौधों का स्थापन भलिभांति हो जाता है। रोपाई के आठ माह बाद पारम्परिक तरीक की तुलना में खाली पाईप विधि में जीवित दर तथा ओज अधिक रहता है। चूंकि अधिक मृत्यु दर के कारण कैर के पौधों को नर्सरी में अधिक समय तक रखना कठिन है, अच्छे जड़ तना अनुपात व ओज के कारण खाली पाईप विधि से तैयार पौधे छः माह में ही रोपित किये जा सकते है। अतः इस विधि द्वारा समय व पानी की बचत के साथ–साथ प्रक्षेत्र दशा में कैर का अच्छा स्थापन एवं वृद्धि प्राप्त की जा सकती है। कैर की अभी तक कोई प्रचलित किस्म उपलब्ध नहीं है। अब यह झाड़ी अपनी गुणवत्ता के कारण वैज्ञानिकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही है।

कटाई–छँटाई करना :

कैर एक झाड़ी है तथा इसकी ऊँचाई लगभग 2–3 मीटर होती है। यदि इसकी काँट–छाँट ठीक तरह से की जाए तो यह झाड़ी एक लघु वृक्ष का रूप ले लेती है जिसकी ऊँचाई 5–7 मीटर तक पहुँच जाती हैं। नई शाखाओं पर पत्तियाँ आती है जो शीघ्र ही झड़ जाती हैं तथा नई शाखाएं काँटों द्वारा आच्छादित हो जाती है। कैर झाड़ी में अनेक शाखाओं का गुथा हुआ जाल सा प्रतीत होता है जिससे इसकी छांया भी

बहुत गहरी व ठंड़ी होती है जो कि बहुत से मरूस्थलीय पक्षियों व अन्य जीव जंतुओं की शरणस्थली है। इसकी बढ़वार बहुत तीव्र होती है तथा 2–3 माह में 3–4 फीट तक आसानी से बढ़ जाती है।

फलों की पैदावार :

कैर में फूलों की दो बहार होती हैं, पहली फरवरी–मार्च में तथा दूसरी जुलाई–अगस्त। फूलों की मुख्य बहार फरवरी–मार्च वाली होती है जिसकी पैदावार अधिक होती है तथा इस समय में फल अच्छी गुणवत्ता वाले होते हैं। जुलाई–अगस्त में वर्षा ऋतु आने के कारण फूल झड़ जाते हैं एवं खराब हो जाते हैं तथा इस दौरान बने फल भी हल्की गुणवत्ता वाले होते हैं और इनका उत्पादन भी कम होता है। फरवरी–मार्च में आने वाले फूलों से मई–जून में फल आते हैं तथा जुलाई–अगस्त में आने वाले फूलों से अक्टूबर–नवम्बर माह में फल आते हैं। कैर फलो की अच्छी पैदावार इसके लगाने के 5–6 वर्ष बाद प्राप्त होती है। एक परिपक्व झाड़ी से 10–15 कि.ग्रा. तक फल प्राप्त हो जाते हैं। कैर के फलों को कच्चे व छोटी अवस्था में ही तोड़ लेना उवित रहता है जिससे अच्छा बाजार मूल्य मिलता है (छायाचित्र 3)।

छायाचित्र 3: फलों से लदी कैर की झाड़ी

उपयोग :

कैर के कच्चे हरे फलों को बहुतायत में सब्जी व अचार हेतु प्रयुक्त किया जाता है। इसके फलों में विटामिन 'ए', विटामिन 'बी–6' तथा विटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसमें लोह तत्व की अधिकता के कारण यह खून की कमी को दूर करने के साथ–साथ रक्तशोधन का कार्य भी करता है। स्थानीय लोग

विशेषकर चरवाहे इसके पके मीठे फलों को भी खाते हैं। पश्चिमी राजस्थान में विशिष्ट व्यंजन पंचकुटा बनाया जाता जिसका कैर एक मुख्य घटक है। इसकी हरी, कोमल टहनियां भेड़, बकरी व ऊँटों द्वारा खाया जाती है।

इसके फलों का औषधीय महत्व होने के कारण यह कब्ज, हृदय रोग, वायु रोग, मधुमेह एवं पित्त रोगों में उपयोगी माना जाता है। कैर की जड़ की छाल को जोड़ों के दर्द निवारक के रूप में काम में लेते हैं। कैर की लकड़ी को शुभ माना जाता है, अतः इसका उपयोग धार्मिक एवं सामाजिक अनुष्ठानों पर किया जाता है। इसकी लकड़ी ठोस होती है तथा इससे कृषि यंत्र सुगमता से बनाए जा सकते हैं। कैर की झाड़ी को खेत की सीमा पर लगाकर बाड़ बनाई जा सकती है। इसमें काँटे अधिक होने के साथ–साथ दीमक का प्रकोप न होने के कारण पश्चिम राजस्थान में यह बाड़ के रूप में अनेक वर्षों तक चलती है। इसकी लकड़ी को जलाने के लिए भी काम में लिया जाता है। रेगिस्तान के बारानी क्षेत्रों पर कैर लगाकर मृदा क्षरण को काफी स्तर तक रोका जा सकता है।

उपसंहार :

मरूस्थल में विपरीत परिस्थितियों में उत्पादन की अद्भुत क्षमता तथा पोषण से भरपूर गुणवत्ता जैसी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि कैर बारानी क्षेत्रों एक वरदान साबित हो सकता है। यह माना जाता है कि कैर की झाड़ियों के नीचे फसलों की पैदावार अच्छी होती है। जिसका मुख्य कारण कैर द्वारा मृदा क्षरण रोकना व इसके नीचे की मृदाओं में जैविक कार्बन का बढ़ना माना गया है। इसके महत्व को देखते हुए यह आवश्यक है कि वृहत स्तर पर इसका रोपण किया जाये। निःसंदेह कैर जैसी बहुउद्देशीय झाड़ी के रोपण से किसान आय में वृद्धि कर सकते हैं तथा साथ साथ इसकी विविधता के संरक्षण में अपना बहुमूल्य योगदान दे सकते हैं।

मेंहदी की उन्नत खेती

एम.बी. नूर मौहम्मद, दीपक कुमार गुप्ता, ऐ.के. शुक्ला, कीर्थिका ए. एंव पी.एल. रेगर

भा.कृ.अनु.प.– के.शु.अनु.स., प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, पाली

मेहंदी एक बहुवर्षिय झाड़ीदार फसल है। पत्तियों मे 'लासोन' नामक यौगिक की उपस्थिती के कारण मेहंदी प्राकृतिक रंग का एक प्रमुख स्त्रोत है। इसलिए इसकी खेती व्यवसायिक रूप से मुख्यतः पत्तियों के उत्पादन लिये की जाती है। पत्तियों का उपयोग बालों एवं शरीर को रंगने के लिये किया जाता है। सूखा सहने की क्षमता एवं गहरे जड़ तंत्र के कारण, मानसून खराब होने के वावजूद, मेंहदी की खेती किसानों को कुछ निश्चित आय दे जाती है। किसानों द्वारा इसकी खेती ज्यादातर बिना उर्वरक/खाद प्रयोग एवं न्यूनतम प्रबंधन के साथ वर्षा आधारित फसल के रूप में की जाती है। भारत के मेहंदी उत्पादन क्षेत्रों में, मेहंदी के पत्तियों के पाउडर बनाने तथा पैकिंग करने के लिए कई कारखाने है जो श्रमिकों के लिए रोजगार भी प्रदान करते है। भारत से अन्य देशों मे बड़े स्तर पर मेहंदी का निर्यात किया जाता है जिससे भारत को आर्थिक लाभ भी होता है।

उपयुक्त जलवायु एवं भारत के उत्पादक क्षेत्र

मेंहदी शुष्क से उष्णकटिबंधीय और सामान्य गर्म जलवायु में अच्छी वृद्धि करता है। अच्छी गुणवत्ता की पत्तियों की पैदावार के लिये गर्म, शुष्क एवं खुले मौसम की आवश्यकता होती है। मेहंदी के पौधे लगभग भारत के सभी क्षेत्रों मे पाये जाते है परंतु इसकी व्यवसायिक खेती मुख्यतः राजस्थान के अर्द्धशुष्क क्षेत्रों मे की जाती है। यहाँ लगभग 41 हजार हेक्टयर भूमि पर मेहंदी की खेती की जा रही है। जिसमें से अकेले पाली जिले में लगभग 95 प्रतिशत (39,400 हे.) क्षेत्र आता है। पाली जिले की सोजत, मारवाड़ जंक्शन एवं रायपुर तहसीलों में मेंहदी उत्पादन के प्रमुख केंद्र है और यहां पर सर्वोत्तम गुणवत्ता की विश्व प्रसिद्ध 'सोजत की मेंहदी' का उत्पादन होता है।

किस्म एवं बीज का चयन

अभी तक आधिकारिक रूप से मेहंदी की कोई भी उन्नत किस्म विकसित नहीं की गयी है। परंतु केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान के क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, पाली पर उन्नत किस्म विकसित करने के लिए अनुसंधान किया जा रहा है। उन्नत किस्म के अभाव मे किसान को चौड़ी पत्ती वाली देशी किस्म का चयन करना चाहिए जिनकी टहनियां पतली व सीधी ऊपर की ओर खड़ी होती है। मुरालिया, छोटी पत्ती वाली व झाड़ीनुमा फैलने वाले पौधे नहीं लगायें। इनकी कटाई कांटे व मोटी टहनियों के कारण ज्यादा कठिन होती है तथा पत्तीःतना अनुपात कम होने से पैदावार कम होती है। फसल कटाई से पूर्व चयनित पौधे से परिपक्व

डोडे (फल) तोड़ कर धूप में सुखायें और बाद में कूटकर बीज़ निकाल लें। छलनी से मोटे बीज़ अलग करके प्लास्टिक की थैलियों में भण्डारण करें। जल्दी फूल व अधिक बीज पैदा करने वाले पौधे नहीं चुनें।

मृदा का चयन एवं खेत की तैयारी

नमी धारण की क्षमता अधिक होने के कारण, बलुई दोमट व गहरी मिट्टी वाले खेत मेहंदी की खेती के लिए अच्छे होते है। खेत की तैयारी वर्षा ऋतु से पहले कर लेनी चाहिए। वर्षा ऋतु से पहले खेत की मिट्टी पलटने वाले हल से 15–20 सेन्टीमीटर तक गहरी जुताई करने के बाद एक गहरी जुताई व दो हैरोइंग करनी चाहिए। खेत से खरपतवार व अन्य फसलों के ठूंठ को पूरी तरह से निकाल देना चाहिए। इससे खेतों मे दीमक एवं हानिकारक कीट का प्रकोप कम होता है।

पौध तैयार करना एवं पौधरोपण

खेत मे मेहंदी को सीधा बीज द्वारा या पौधशाला मे पौध तैयार कर रोपण विधि से लगाया जा सकता है। परंतु, व्यावसायिक खेती के लिए पौध रोपण विधि का उपयोग सर्वाधिक किया जाता है। किसान स्वयं पौधशाला तैयार कर सकते है या सोजत तहसील मे बहुत सारी निजी पौधशाला मेहंदी के पौध तैयार करते है, जिसे जुलाई महीने में खरीदा जा सकता। मार्च माह के प्रारम्भ मे मेहंदी के पौध तैयार करने के लिए सबसे उपयुक्त समय होता है। इसके लिए 10 मीटर लम्बी व 1.5 मीटर चौड़ी आकार की 8–10 क्यारियां तैयार करके मिट्टी मे गोबर का खाद मिला दें। एक हेक्टेयर भूमि पर पौध रोपण के लिए लगभग 6 किलों बीज की आवश्यकता होती है। अच्छा और जल्दी अंकुरण पाने के लिए बोने से पहले जूट के बोरे में बीज को एक से दो दिन तक पानी से भिगोकर रखें व पानी को समय समय पर बदलते रहें। केवल भिगोएं नहीं, बहते पानी में बीज को धोयें भी। केवल एक बार भिगोकर नहीं रखें। एक बार भिगोने से कवक के संक्रमण से बीज की अंकुरण क्षमता प्रभावित होती है अतः पानी बदलते रहें। नमक के 3 प्रतिशत घोल में 24 घण्टे तक भिगोने से अंकुरण 5 दिन में हो जाता है। नमक की सांद्रता 3 प्रतिशत से अधिक न हो। इसके बाद बीज का कार्बेन्दजिम 2.5 ग्राम प्रति किलों से उपचार किया जाना चाहिए। एक हेक्टेयर खेत के लिए 5–6 किग्रा बीज महीन बालू रेत में मिलाकर इन क्यारियों में सामान रूप से बोयें। समय समय पर खरपतवार निकालते रहें व सप्ताह में 2 से 3 बार आवश्यकतानुसार सिंचाई करें।

मेंहदी का पौधरोपण जुलाई–अगस्त में मानसून की अच्छी बरसात होने पर करना चाहिए। पौधशाला से पौधे जड़ों सहित उखाड़ने के बाद जड़ों की तरफ से 7–8 सेन्टीमीटर जड़ छोड़कर काट लें व ऊपर तने व पत्तियों वाले हिस्से को 10–15 सेन्टीमीटर छोड़कर काट लें। बिना जड़–तना कटा पौधा पनपने में समय अधिक लेता है। कटे हुये पौधों की रोपाई, पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सेन्टीमीटर व पौधे से पौधे की दूरी 30 सेन्टीमीटर या पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सेन्टीमीटर व पौधे से पौधे की दूरी 25 सेन्टीमीटर मे

करनी चाहिए, दोनों में ही पौध संख्या बराबर रहेगी। हल की हलवाणी से 7–8 सेन्टीमीटर गहरा छेद बनाएं। एक छेद में एक या दो पौधा रोपित करें। रोपाई से पहले पौधों को क्लोरोपाइरीफॉस से उपचारित करें। पौध रोपाई के बाद छेद लकड़ी/पैर से चारों ओर से दबाकर अच्छी तरह बंद करें। छेद अच्छी तरह से बंद नहीं करने पर पौधे की जड़ मिट्टी नहीं पकड़ पायेगी व पौधा मर सकता है।

खाद एवं उर्वरक

रोपाई से पहले अन्तिम जुताई के समय 5 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद देने से 8.10 प्रतिशत अधिक उपज होती है। प्रथम वर्ष में 40 किलोग्राम फॉस्फोरस एवं 40 किलोग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। मेंहदी के पुराने खेतों में नत्रजन व फॉस्फोरस की मात्रा 60 एवं 40 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से दें। आधी नत्रजन पहली वर्षा के समय व शेष दो बार एक–एक महीने के अन्तराल से दें। नत्रजन सूखी भूमि या कम नमी में न डालें। उर्वरक पत्तियों पर व पौधों से दूर नहीं डालें। पत्तियां जल सकती है व दूर डालने से पौधों को पोषक तत्व न मिल कर पास में मौजूद अन्य पौधों को मिलेगा।

खरपतवार नियंत्रण और निराई गुड़ाई

मेंहदी रोपाई के बाद जब पौध के स्थापित होने के बाद कुदाल या खुरपी का उपयोग कर खेतों से खरपतवार निकाल देना चाहिए। मेंहदी के पुराने खेतों में पहली वर्षा के तत्काल पश्चात अट्राजीन 1 किलोग्राम (सक्रिय तत्व) प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। फिर ट्रैक्टर चालित हल से पंक्तियों (पंक्ति से पंक्ति 60 से.मी.) के बीच गहरी जुताई करें। ट्रैक्टर चालित कूंड बनाने वाली फाल से 45 दिन की फसल होने तक दो जुताई करें ताकि मृदा में जल संग्रहण हो। पंक्ति से पंक्ति 60 से.मी. व जुताई द्वारा 30 से.मी. दूरी पर बोई फसल से 20 से 25 प्रतिशत अधिक उपज होती है। 30 से.मी. की दूरी में बैल द्वारा या ट्रैक्टर द्वारा गुड़ाई नहीं करें। पौधा उखड़ने व टहनियों के टूटने की संभावना रहती है। जबकि 60 से.मी. दूर पंक्तियों के बीच यंत्र चालित निराई–गुड़ाई आसानी से होती है।

कीट एवं व्याधि नियंत्रण

मेंहदी के खेतों मे मुख्यतः पत्ती धबा रोग, जड़ गलन रोग, दीमक, पत्ती भक्षक लट एवं रस चूसक कड़ों का प्रकोप होता है। दीमक से बचाव के लिए क्लोरोपाइरीफॉस की निर्धारित मात्रा को पानी में घोल कर पौधों के आस–पास मिट्टी में अच्छी तरह छिड़काव करें। अरण्डी की अर्धकुंडलक (सेमीलूपर) लट कीट के नियंत्रण के लिये 2 मिलीलीटर क्यूनालफॉस को एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें व दूसरा छिड़काव 10–15 दिन बाद करें।

कटाई एवं भण्डारण

आम तौर पर फसल कटाई सितम्बर के आखिरी सप्ताह या अक्टूबर के पहले सप्ताह में की जाती है। पत्तियों के पूर्णतया सूखने की प्रतीक्षा नहीं करें। इससे सूखी पत्तियां झड़ कर नष्ट हो जाएंगी। फसल की कटाई नई फसलों मे भूमि की सतह से लगभग 4–5 से.मी. ऊपर एवं पुरानी फसलों में 8–10 से.मी. ऊपर करनी चाहिए। कटी फसल को शीघ्र अतिशीघ्र मढाई क्षेत्र में एकत्रित करें। यदि वर्षा हो गयी तो मेंहदी के पत्ते लाल पड़ जाते है एवं उनका बाजार मूल्य नगण्य हो जाता है। कटाई के बाद जहां तक हो सके कटी फसल को छाया व हल्की धूप में सूखाएं। हर दूसरे दिन कम से कम दो बार पौधों को पलटते रहें। मढाई का स्थान साफ–सुथरा व हो सके तो पक्का होना चाहिये। काटने के तीन से चार दिन के बाद जब पत्तियां अच्छी तरह से सूख जाये तो डंडों से पीटकर पत्तियां अलग कर लें। टहनियां, बीज/डोडे एवं मिट्टी पत्तियों के साथ न रहनें दें। इससे मेंहदी पत्ती की गुणवत्ता कम हो जाती है और बाजार मूल्य कम मिलता है। कटाई, मढाई के बाद मेंहदी पत्तियों का भंडारण जूट की बोरियों में करें व उन्हें भंडार गृह में एक–दूसरे के ऊपर इस तरह रखें कि हवा का आवागमन उचित रहे और नमी से सुरक्षित रहे।

उपज व आर्थिक लाभ

उत्पादन, वर्षा पर आधारित होता है और समान्य वर्षा होने पर अधिक उत्पादन मिलता है। रोपाई के प्रथम वर्ष से ही पत्तियों का उत्पादन लिया जा सकता है। प्रथम वर्ष मे उपज क्षमता का केवल 5–10 प्रतिशत ही उत्पादन प्राप्त हो पाता है। सामान्यतया किसान के यहां एक हेक्टेयर मे मेंहदी की 600 से 1000 किलोग्राम सूखी पत्ती पैदा होती है। उन्नत कृषि विधियां अपनाकर 1500 से 2000 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर उपज ली जा सकती है। वर्तमान शुद्ध लाभ रुपये 10000 से 12000 प्रति हेक्टेयर से बढाकर रुपये 15000–20000 तक किया जा सकता है बशर्ते उन्नत कृषि विधियां अपनाएं।

शुष्क क्षेत्र में जैविक कृषि प्रबन्धन

अरूण के शर्मा

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

भारत के लगभग 12 प्रतिशत (32 लाख हैक्टेयर) भू–भाग में औसत वार्षिक वर्षा 400 मि.मी. से कम होती है शुष्क क्षेत्र कहलाता है। ये क्षेत्र मुख्यतः उत्तर–पश्चिमी राज्यों राजस्थान, गुजरात व हरियाणा में फैला हुआ है तथा कुछ भाग आंध्रप्रदेश में भी है। वर्षा की कमी के साथ–साथ वर्षा की अनिश्चितता व तापमान की विस्तृत श्रृंखला अर्थात ग्रीष्मकाल में 48–49^{o}C तक व शरदकाल में 0^{o}C तक होने के कारण यह क्षेत्र कृषि के लिये बहुत चुनौतिपूर्ण है। इन परिस्थितियों से सामंजस्य रखते हुए पारंपरिक कृषि विधियां विकसित हुई जिसमें वृक्ष, फसले व पशुओं की सम्मिलित उत्पादन पद्धति मुख्य थी। यह पद्धति शुष्क क्षेत्र की परिस्थितियों में उत्पादन में स्थायित्व किन्तु सीमान्त उत्पादक क्षमता वाली है। आधुनिक विज्ञान के आधार पर रसायनिक आदानों के प्रयोग से उत्पादकता बढ़ाने के अनेक प्रयोग किये गये किन्तु वर्षा की अनिश्चितता में इनका प्रयोग लाभकारी सिद्ध नहीं हुआ है।

इन परिस्थितियों में पशु व कृषि अवशेष से बनी जैविक खाद का प्रयोग जल संरक्षण व फसल को संतुलित पोषण देने में सहायक होता है साथ ही अन्य कई पर्यावरण मित्र तकनीकों के समन्वित प्रयोग से न केवल वर्षा की अनिश्चितता में भी उत्पादन में स्थायित्व रखना संभव हो सकता है, वरन् इससे खेती की लागत कम होने व बाजार में जैविक उत्पाद की माँग होने से यह खेती लाभप्रद भी हो सकती है। चूंकि यह क्षेत्र पशुपालन आधारित व्यवस्था पर निर्भर है, जिससे जैविक खाद की उपलब्धता पर्याप्त है अतः पारंपरिक कृषि में उपयोग किये जाने वाले जैविक आदानो के उत्पादन व प्रयोग की विधियों में सुधार करके उनके समन्वित प्रयोग से उत्पादकता में सुधार का अध्ययन करने हेतु सन् 2008 में केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान में आदर्श जैविक क्षेत्र की स्थापना की गयी थी। तीन वर्ष के प्रयोगों के आधार पर शुष्क क्षेत्र के लिये उपयुक्त जैविक कृषि प्रबन्धन की तकनीक विकसित की गयी है।

जैविक कृषि

स्थानीय रूप से उपलब्ध जैविक व प्राकृतिक संसाधनों जैसे पशु अपशिष्ट, फसल अवशेष, वर्षा जल इत्यादि के सदुपयोग व रसायनिक उर्वरक, कीटनाशक, खरपतवार नाशक आदि का प्रयोग न करके, प्रकृति मित्र तकनीकों से फसल का पोषण व रक्षण प्रबन्धन करने को जैविक कृषि कहते है। इसमें जैविक खाद, जैव

कीटनियंत्रक, फसल चक्र, पलवार (मल्चिंग) आदि का प्रयोग किया जाता है। जैविक खेती में भूमि की उर्वरकता को जैव विधियों जैसे जैविक खाद, हरी खाद, फसल चक्र आदि से निरंतर बनाये रखने के तरीके अपनाये जाते है साथ ही नीम आदि कीटनाशक गुणों वाले पौधो के उत्पादो व मित्र कीट, सूक्ष्मजीवों का प्रयोग कर रोग–कीटों का नियंत्रण किया जाता है।

जैविक कृषि के लिये अनुकूल शुष्क क्षेत्र

1. पशु आधारित कृषि व्यवस्था होने से जैविक खाद की पर्याप्त उपलब्धता।
2. रसायनिक उर्वरक कीटनाशक का बहुत कम प्रयोग होने से भूमि में अवशेष न्यूनतम अतः जैविक रूपान्तरण में सुविधा।
3. जैविक खाद, खरपतवार की पलवार (मल्चिग) आदि का जल संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान।
4. जैविक कीटनियन्त्रक जैसे नीम, आक, धतूरा की पर्याप्त मात्र में उपलब्धता।
5. पारंपरिक कृषि पद्धति का वर्तमान में भी अस्तित्व में होना जिससे संसाधनों का संरक्षण व पुनर्चक्रण सुनिश्चित किया जाता है।
6. निर्यात मांग वाली कुछ विशेष उच्च मूल्य फसलें जिनका उत्पादन शुष्क क्षेत्र में ही होता है, जैसे जीरा, ग्वार, ईसबगोल, अजवायन आदि।

जैविक कृषि तकनीक

जैविक कृषि में निम्न तकनीकों का समन्वित उपयोग किया जाता है।

फसलें व फसल चक्र : शुष्क क्षेत्र में मुख्यतः बाजरा, ग्वार, मोठ, तिल व मसाले वाली फसलों का उत्पादन होता है इनमें से अधिकांश फसलें ऐसी हैं जिनका गुणवत्तायुक्त उत्पादन सिर्फ शुष्क जलवायु में ही संभव है जैसे जीरा, ईसबगोल आदि। इन फसलों की जैविक विधि से उत्पादन प्रमाणित होने पर विश्वबाजार में बहुत मांग है। यूरोप व अमेरिका में फाइटोसेनेटरी कानून के सख्ती से लागू होने के कारण भविष्य में फसलों के रसायन अवशेष युक्त उत्पाद का निर्यात लगभग असंभव हो जायेगा। अतः शुष्क क्षेत्रों की फसलों का जैविक विधि से उत्पादन करने पर न केवल निश्चित बाजार मिलेगा वरन् स्थानीय संसाधनों का सदुपयोग भी संभव होगा।

फसल चक्र में दलहन जैसे ग्वार, मोठ, मूँग को अवश्य ही शामिल करना चाहिये ताकि मृदा की उर्वरता बनी रहे। रबी में जीरा, ईसबगोल व रायड़ा को फसल चक्र में इस प्रकार शामिल करना चाहिये जिससे की जीरा एक खेत या खेत के एक ही भाग पर लगातार दो वर्ष तक उत्पादित न हो अर्थात जीरा के बाद रायड़ा या ईसबगोल का फसल चक्र अपनाना चाहिये।

पोषण प्रबंधन : अक्सर किसान गोबर को बुवाई से काफी पहले खेत में डाल देते है। गोबर कई दिनों तक खुली हवा–धूप में पड़ा रहता है जिससे इसके कई पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। दूसरे इसका सड़ाव न होने के कारण खेत में कच्चा गोबर जाते ही दीमक (उदई) लग जाती है। कच्चा गोबर सड़ने के लिये खेत की नत्रजन को सोख लेता है। कई खरपतवार के बीज इस बिना सड़े गोबर के साथ खेत में चले जाते हैं और उगकर समस्या पैदा करते हैं। इन सब समस्याओं का समाधान है कि गोबर की वैज्ञानिक विधि से जैविक खाद बनाई जाये।

शुष्क क्षेत्रों में खाद तैयार करने के लिये 4–6 महीने का समय मिल जाता है वहाँ पशु मल व फसल अवशेष से भूमि के नीचे गड्ढे में खाद बनाना उचित रहता है। जल की मात्रा व गुणवत्ता में कमी, वातावरण में शुष्कता व तापमान में उत्तार–चढ़ाव के कारण शुष्क क्षेत्र में केंचुआ खाद निर्माण व्यवहारिक नहीं पाया गया है।

खरपतवार नियन्त्रण : खरपतवार मुख्यतः कच्ची खाद में आये बीजों से व समय पर निराई गुडाई करने से पनपते है। खरपतवार नियंत्रण के लिये पकी हुई जैविक खाद व साफ बीज का प्रयोग करना चाहिये। खेत में उगे खरपतवारों को हाथ से उखाड़कर फसल की पंक्तियों के बीच मल्च के रूप में बिछा देना चाहिये। इससे न केवल खरपतवार नियन्त्रण होता है वरन् भूमि सतह ढक जाने से नमी संरक्षण व बाद में खरपतवार के गलसड़ जाने से भूमि को जीवांश (लगभग 2.0–2.5 टन/है) भी मिल जाता है पहली निराई–गुडाई फसल बुवाई के 20–25 दिन बाद व दूसरी 40–45 दिन बाद अवश्य कर देनी चाहिये।

रोग–कीट नियंत्रण : रोग–कीट नियंत्रण के लिये निम्न उपायों का समन्वित प्रयोग करना चाहिये :

1. स्वस्थ, रोग–कीट रहित बीज का चयन कर 4–6 ग्राम ट्राइकोडरमा पाऊडर से प्रति किलो बीज को उपचारित कर बुवाई करनी चाहिये।
2. अच्छी पकी हुई जैविक खाद का प्रयोग 5.0 टन प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि तैयारी के समय करना चाहिये।
3. खेत के आसपास या गाँव में उपलब्ध नीम के वृक्षों की पकी हुई निम्बोली पानी में भिगोकर उसका छिलका उतार देना चाहिए व गुठली को सुखाने के पश्चात कूटकर 150 से 200 किलोग्राम/है. की दर से जुताई के समय मृदा में मिला देना चाहिए।
4. खेत में कीट प्रजाति के अनुसार फेरोमोन ट्रेप का प्रयोग करना चाहिये (मूल्य रूपये 150–200/– प्रति है.)।

5. खेत में प्रतिदिन निरीक्षण करना चाहिये तथा रोग–कीट की शुरूआत होने पर नीम बीज गिरी का 5.0 प्रतिशत जलघोल का सांयकाल छिड़काव करना चाहिये।
6. खेत की बाड़ व बीच में पंक्तियों में कई प्रकार के फूलदार वृक्ष–झाड़ी लगाने चाहिये जिससे फसल के लिये लाभकारी कीटों को आश्रय व भोजन मिलता रहे। खेत की बाड पर कुछ वृक्ष नीम के भी लगाने चाहिए ताकि जैविक कीट नियंत्रक बनाने हेतु निम्बोली मिल सके।

प्रमाणीकरण : जैविक उत्पादन को उपभोक्ता व बाजार का विश्वास प्राप्त करने के लिये इसको प्रमाणित कराने की आवश्यकता होती है। इसके लिये भारत सरकार से मान्यता प्राप्त किसी संस्था से पंजीकरण कराना चाहिये। इसके बाद निरीक्षक समय–समय पर आकर निरीक्षण करते है व कृषक पुस्तिका में आदानों व उत्पादों के विवरण को सत्यापित करते है। सब कुछ सुचारू रूप से नियमानुसार होने पर तीन वर्ष पूरे होने पर जैविक प्रमाण पत्र मिल जाता है जिसके आधार पर प्रमाणित जैविक उत्पाद का विक्रय किया जा सकता है। सरकार द्वारा प्रमाणीकरण योजना में शामिल होने वाले कृषकों को रूपये 10000/– तक का अनुदान देने का प्रावधान है।

जैविक विधि से कम हो सकते है जलवायु परिवर्तन के खेती पर प्रभाव

जैविक खेती से निम्न प्रकार से जलवायु परिवर्तन के खेती पर बुरे प्रभावों को कम किया जा सकता है।

1. जैविक खाद के प्रयोग से भूमि की जलधारण क्षमता बढ़ती है जिससे वर्षा की अनियमितता में भी फसल को पानी मिलता रहता है। साथ ही सिंचाई की संख्या भी कम हो जाती है। प्रयोगों से पाया गया है कि जैविक खाद के प्रयोग से ग्वार–तिल आदि फसलों ने 42 दिन के सूखाकाल के बाद भी उत्पादन दिया जबकि रसायनिक खाद के द्वारा उगाई गई फसल 17 दिन बाद ही नष्ट हो गयी। इसी प्रकार गेहूं में जैविक प्रबंधन से 4 सिंचाई में ही अच्छी पैदावार प्राप्त हुई।

2. जैविक खाद के प्रयोग से संतुलित पोषण मिलने के कारण फसल में सूखा सहने व रोग–कीट से लड़ने की ताकत बढ़ती है। साथ ही तापमान की विषमता का भी कम प्रभाव पड़ता हैं।

3. जैविक खेती का जैवविविधता, फसल चक्र आदि के होने से जलवायु परिवर्तन के कारण अचानक होने वाले ताप, वर्षा, आद्रता आदि के परिवर्तनों का प्रभाव बहुत कम हो जाता है।

4. जैविक खाद के प्रयोगों से भूमि में 200–300 किलो कार्बन का अवशोषण (सीक्रेस्ट्रेशन) होता है जो कि जलवायु परिवर्तन को कम करने में सहायक होता है। किसान को कार्बन क्रेडिट का रूपया भी मिल सकता है।

जैविक कृषि की सफलता

इस प्रकार समन्वित पोषण व रक्षण से सफल जैविक उत्पादन संभव हो पाता है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान के प्रमाणित जैविक फार्म पर किये गये प्रयोगो में ग्वार की 630 किलो/हे., तिल की 886 किलो/हे., जीरे की 516 किलो/हे. व ईसबगोल की 808 किलो/हे. तक उपज प्राप्त की गई है। जैविक व्यवस्था को बनाने में 2–3 वर्ष का समय लग सकता है, किन्तु एक बार व्यवस्था बन जाने पर बाहरी साधनों पर निर्भरता बहुत कम हो जाती है व रोग–कीट का प्रकोप भी कम हो जाता है। इस व्यवस्था में स्वयं के खेत से तैयार बीज के अलावा खाद, कीटनियंत्रक आदि अधिकांश आदान शुष्क क्षेत्र में बहुतायत से अपनाये जाने वाली मिश्रित कृषि पद्धति (फसल + वृक्ष + पशु) के उपोत्पाद के रूप में मिल जाते है। अतः जैविक पद्धति की लागत कम होती है।

सारांश

वर्षा की कमी व अनिश्चितता वाले क्षेत्रों में कृषि को स्थायित्व प्रदान करने के लिये जैविक तकनीकों का समन्वित प्रयोग न केवल सीमित संसाधनों का सदुपयोग सुनिश्चित करता है वरन् मृदा स्वास्थ्य व पर्यावरण में सुधार तथा लागत में कमी जैसे कृषि के अनेक ज्वलन्त मुद्दों का व्यवहारिक समाधान भी है। प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया है कि जैविक कृषि से उपज में कमी नहीं होती है। अतः यह पद्धति इन क्षेत्रों के लिये उपयोगी है।

शुष्क क्षेत्रों में पशुओं के लिए जीवन रक्षकः अजोला

धीरज सिंह

भा.कृ.अनु.प.–काजरी, कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली–मारवाड़ (राजस्थान):306401

अजोला जल सतह पर मुक्त रूप से तैरने वाली जलीय फर्न हैं। यह छोटे–छोटे समूह में सघन हरत गुच्छे की तरह तैरती एवं फैलती है। भारत में इसकी प्रजाति अजोला *पिन्नाटा* एवं *एनाबियाना* काफी उपयुक्त पाई गई है। यह अधिक गर्मी सहन करने वाली किस्म है। इसकी खेती काफी वृहद रूप से चीन, वियतनाम और फिलीपाइन्स में की जाती हैं। दक्षिण भारत में खासकर तमिलनाडु और केरल एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली, अजमेर, जयपुर में काफी क्षेत्रों में इसका उत्पादन किया जा रहा है। अजोला कम लागत वाला पशुओं के लिए एक पौष्टिक आहार है। शुष्क भार के आधार पर इसमें 25–35 प्रतिशत प्रोटीन, 10–12 प्रतिशत खनिज पदार्थ एवं 7–10 प्रतिशत अमिनो अम्ल पाया जाता है। यह शीघ्र वृद्धि वाली प्रजाति हैं। बुवाई के पश्चात इसका उत्पादन 8–10 दिन के अन्दर प्राप्त होना शुरू हो जाता है।

अजोला में ज्यादातर सभी आवश्यक अमीनों अम्ल, मेंनी प्रोवोमोरिक्स, बायो पॉलीमर्स तथा बीटा केरोटीन पाये जाते हैं। इन्ही जैव रसायनों से भरपूर होने के कारण यह पशुओं के लिये आदर्श जैविक पूरक आहार कहा जा सकता है। पशु अजोला को आसानी से पचा सकते हैं, क्योंकि इसमें रेशा तथा लिग्निन कम मात्रा में पाया जाता है। अजोला को पूरक आहार के रूप में भी प्रयोग करने पर 15–20 प्रतिशत कुल दुग्ध उत्पादन बढ़ जाता है। देश के विभिन्न प्रदेशों एवं क्षेत्रों में चारे एवं पोषक तत्वों की कमी को पूर्ण करने के लिये अजोला उत्पादन को वृहद स्तर पर प्रोत्साहित किया जा रहा है। यह जल के स्थिर स्रोतों में प्राकृतिक रूप से भी उगाया जा रहा है।

अजोला, अजोसी कुल का एक सदस्य है जो कि मूलतः पानी में उगने वाला फर्न है। यह नम, आर्द्रतर एवं गर्म जलवायु में आसानी से उगाया जा सकता हैं। अजोला अपनी वृद्धि के लिए वायुमंडलीय नाइट्रोजन का उपयोग करता है जो कि पौधे में संरक्षित रहता है। परिणामस्वरूप प्रोटीन से भरपूर होता है। सारणी–1 से यह ज्ञात होता है कि अजोला में खनिज तत्वों जैसे कैल्शियम, फॉस्फोरस, मैंगनीज, जस्ता तथा तांबा आदि की मात्रा पायी जाती है। इसके अलावा इसमें विटामिन 'ए' तथा विटामिन 'बी12' काफी मात्रा में पाया जाता है। साथ ही साथ इसमें सभी आवश्यक अमीनों अम्ल पर्याप्त मात्रा में होते हैं। दुधारू पशुओं जैसे–गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि के आहार में सस्ते जैविक पूरक राशन के रूप में अजोला का उपयोग कर प्रोटीन तथा हरे चारे की कमी को पूरा किया जा सकता है।

जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा पोषित एक परियोजना 'ग्रामीण जैव–संसाधनों का उपयोग कर किसानों एवं लघु उद्यमियों का सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान' वर्ष में शुरू की गयी थी। इस परियोजना के अंतर्गत दो मुख्य घटकों पर ध्यान देने की बात स्वीकार की गई। इसमें पशुओं को बहुवर्षीय घासों द्वारा हरे चारे के प्रबंधन खासकर गर्म मौसम में अजोला का उत्पादन कर पशुओं के लिए संतुलित आहार का प्रबंधन करना शामिल है। इस प्रकार पशुओं को पूरे साल हरा चारा एवं पौष्टिक आहार मिल सके।

इस परियोजना के अंतर्गत अजोला के उत्पादन की उन्नत तकनीक एवं बहुवर्षीय घास जैसे हाइब्रिड नैपियर, अंजन, दीनानाथ, धामण, गिन्नी घास इत्यादी का उत्पादन कर दुधारू पशुओं का दुग्ध उत्पादन एवं अन्य छोटे जानवरों के शारीरिक विकास पर अजोला के प्रभाव का मूल्यांकन करने की जिम्मेदारी कृषि प्रसार सेवा केन्द्र, पाली को दी गई। अजोला का चुनाव खासकर इसलिए किया गया, क्योंकि यह पशुओं के लिए एक संतुलित आहार के रूप में पाया गया है। इसमें प्रोटीन की प्रचुर मात्रा, खनिज पदार्थ एवं अमिनो अम्ल भी पायी जाती है। अजोला के खिलाने से न केवल पशु स्वस्थ एवं निरोग रहता है, बल्कि दूध की उत्पादकता में भी 10–15 प्रतिशत की वृद्धि पाई गई है। इसके अलावा शारीरिक विकास में भी काफी सहायक सिद्ध हुआ है। सभी तीनों चयनित केन्द्रों पर अजोला की प्रदर्शन की एक–एक इकाई विकसित की गई।

सारणी–1 अजोला का रासायनिक संघटन (शुष्क भार आधार पर)

क्र.स.	**पोषक तत्व**	**मात्रा (प्रतिशत)**
1	प्रोटीन	22.5
2	रेशा	12.5
3	वसा	03.2
4	कार्बोहाइड्रेट	50.0
	खनिज लवण	
1	कैल्शियम	1.16
2	फॉस्फोरस	1.29
3	मैंगनिशियम	0.35
	सूक्ष्म तत्व	
1	मैंगनीज	174.42
2	जिंक / जस्ता	87.59
3	कॉपर / तांबा	16.74

अजोला उत्पादन की विधि :

- कृत्रिम रूप से अजोला के उत्पादन हेतु 15–20 से.मी. गहरे पानी के गड्ढे की आवश्यकता होती है।
- गड्ढे का आकार 4 मीटर लम्बा, 1.5 मीटर चौड़ा तथा 20 सें.मी. गहरा उपयुक्त होता है।
- इसके बाद गड्ढे की सतह पर प्लास्टिक बिछा देते है, जिससे आस–पास लगे पेड़ों की जड़ें गड्ढें में न जाएं। प्लास्टिक के लगे होने से गड्ढे में रिसाव द्वारा बाहर का पानी नहीं पंहुचता तथा गड्ढे का तापमान भी नियंत्रित रहता है।
- गड्ढ़े में प्लास्टिक को इस प्रकार से बिछाना चाहिए जिससे उसमें परत न पड़ें।
- लगभग 10–15 कि.ग्रा. छनी हुई मिट्टी समान रूप से पोलीथीन के ऊपर डाल देते है।
- इसके बाद 5 कि.ग्रा. गोबर, 20 ग्राम अजोफर्ट या एस.एस.पी. को 10 लीटर पानी में घोल बनाते हैं तथा इस घोल को गड्ढे में डालते हैं। इसके बाद और अधिक पानी को गड्ढे में डालते हैं, जिससे पानी का स्तर 8 सें.मी. हो जाये।
- लगभग 1–2 कि.ग्रा. ताजा बीमारी मुक्त अजोला का बीज गड्ढ़े में डालते हैं।
- अजोला 7–10 दिन में पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर गड्ढ़े में भर जाता है। इस प्रकार लगभग 4 वर्ग मीटर के गड्ढ़े से 2 कि.ग्रा. अजोला प्रतिदिन प्राप्त कर सकते है।
- प्रत्येक 7 दिनों के अंतराल पर गोबर 2 कि.ग्रा., अजोफॉस 25 ग्राम, 20 ग्राम अजोफर्ट को 2 लीटर पानी में घोलकर गड्ढे में डालते रहना चाहिए, जिससे अजोला का उत्पादन अधिक एवं टिकाऊ बना रहता है।

अजोला की छनाई :

अजोला को 1 से.मी. वर्ग छिद्रयुक्त प्लास्टिक की छन्नी के द्वारा निकाला जाता है। निकालते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उसमें मिट्टी व गोबर का घोल न आपाये इसके लिए पानी की सतह के पास से ही छलनी को डालना चाहिए। इसके बाद जब पानी क्यारी में पूर्णतः गिर जाता है तथा अजोला में पानी नही होता तब उसको अलग जगह तगारी में डाल कर साफ पानी से धोना चाहिए।

अजोला की कटाई :

- अजोला 8–10 दिन में तैयार हो जाता है, जिसे प्लास्टिक की छलनी से जिसके सुराख एक से.मी. आकार के हों। उसके द्वारा निकालना चाहिए ताकि पानी गड्ढे में ही रहे।

- आधी बाल्टी पानी में अजोला को अच्छी तरह से धो लेना चाहिए। उसके बाद ही इसका प्रयोग दुधारू पशुओं के लिए किया जाना चाहिए ताकि गोबर की गंध खत्म हो जाये फिर पशु इसे स्वाद से खाते है।
- 5X1.5 मीटर के गड्ढे से लगभग डेढ़ से दो कि.ग्रा. अजोला प्रतिदिन प्राप्त किया जा सकता है।
- अजोला उत्पादन में डेढ़ से दो रूपये प्रति कि.ग्रा. का खर्च आता है।

अजोला के उपयोग में सावधानियां :

- पौधा परिपक्व स्थिति में न आए इसका ध्यान रखते हैं।
- गड्ढे में जल का तापमान 30^0 सेल्शियस से कम नही होना चाहिए, अधिक तापमान होने पर छपपर या अन्य साधनों से तापमान को नियंत्रित रखना चाहिए।
- जैव पदार्थ को प्रतिदिन या एक दिन के अंतराल पर निकाल लेना चाहिए, जिससे अजोला अधिक घना न हो। अजोला के गड्ढे में जल के घोल का पी–एच प्रतिदिन देखते रहना चाहिए, जिससे कि पी–एच मान 5.5 से 7.5 न तो कम हो न ही ज्यादा हो।
- बीज को कवकनाशी तथा कीटनाशी के द्वारा शोधित करना चाहिए।
- अजोला पशुओं को देने से पहले अच्छी तरह धो लेना चाहिए, जिससे गोबर की गंध खत्म हो जाये तथा अन्य अवांछनीय गंदगी साफ कर लेनी चाहिए।
- तीन माह के अंतराल पर अजोला की मिट्टी एवं पानी को बदल देना चाहिए। इसके उपरान्त गड्ढे में पालीथीन को निकाल कर साफ कर लेना चाहिए एवं उसमें नई मिट्टी एवं वर्मी कम्पोस्ट 10–15 कि.ग्रा. पुनः शीट पर समान रूप से फेलाकर फिर से गोबर का घोल बनाकर डाल दें और साफ अजोला डालें। जिससे अजोला का उत्पादन समान रूप से मिलता रहे।
- बीच–बीच में साफ पानी का स्तर कम होने पर अजोला के गड्ढे में पानी डालकर इसका स्तर 5–6 इंच तक बनाये रखना चाहिए।
- अजोला गड्ढे से निकाली गई मिट्टी एवं पानी को फेंकने की बजाय अपने बागवानी एवं खेतों में डालें जिससे वो एक जैविक खाद के रूप में मिट्टी को मिलेगी एवं इसके पौष्टिक तत्व से जमीन को उपजाऊ बनाया जा सके।
- कीटनाशक का प्रयोग किये गये गड्ढे से निकाले गये जैव पदार्थ को पशुओं के चारे के रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- अजोला को पशु आहार में 10–30 प्रतिशत (उपलब्धता के आधार पर) के बीच देना चाहिए। इसे सिर्फ पूरक के रूप में उपयोग करना चाहिए।

अजोला का लाभ :

- अजोला के किसानों के खेत में परीक्षण के दौरान यह पाया गया कि अजोला एक कम लागत वाली हरे चारे के रूप में पौष्टिक आहार वाली फसल है।
- अजोला को गाय, भैंस, मुर्गी, भेड़, बकरी बड़े चाव से खाते हैं और आसानी से पचाते हैं जिसके फलस्वरूप दुग्ध के उत्पादन में 10–15 प्रतिशत वृद्धि पायी गयी है एवं एक माह लगातार नियमित रूप से खिलाने से बकरी, सुकर, मुर्गी के वजन में संतोषजनक लगभग 25–30 प्रतिशत तक वृद्धि पायी गयी है।
- अजोला का उपयोग दुधारू पशुओं के लिए करने से पशुओं को दी जाने वाली खली एवं चोकर की बचत होती है।
- अजोला का प्रयोग नील–हरित शैवाल (साइनोबैक्टीरिया) कू साथ धान के खेत में करने से धान के उत्पादन तथा उत्पादकता में 25–30 प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी है। इसके साथ–साथ लगभग 30–40 प्रतिशत यूरिया की बचत होती है। इसके फलस्वरूप धान की उत्पादन लागत में भी कमी आयी है, जो लघु एवं सीमांत किसानों के लिए एक वरदान साबित हुआ है।
- धान के खेत में अजोला लगाने से उसमें खरपतवार में भी काफी कमी पायी गई है, जिससे फसल की निराई–गुड़ाई के खर्च की बचत होती है। धान के खेत में अजोला का प्रयोग एक जैविक खाद के रूप में पाया गया है, जिसके फलस्वरूप मृदा में जैविक कार्बन की वृद्धि हुई एवं मिट्टी की उर्वरता बढ़ी है। यह कृषि को दीर्घकालीन एवं शुद्ध वातावरण बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है।
- इसके साथ–साथ अजोला की उत्पादन विधि इतनी आसान व सरल है कि इसका घर की महिलायें भी उत्पादन कर सकती हैं। पशुओं एवं छोटे जानवरों जैसे बकरी, मुर्गी, बतख, सुकर के लिए इसका उपयोग कर कम समय में उनका औसत वजन बढ़ाकर अच्छी आमदनी की प्राप्ति कर सकते हैं।

अजोला उत्पादन पर प्रशिक्षण :

अजोला की उत्पादन विधि का प्रशिक्षण ग्रामीण महिलाओं, कृषकों, पशुपालकों, मछली पालकों, मुर्गी पालकों, बेरोजगार युवाओं कों के.वी.के. के माध्यम से प्रशिक्षण प्रदान किया गया। जिसका मुख्य उद्देश्य जागरूक एवं प्रगतिशील किसानों को करके सीखने की विधि अपनाकर प्रशिक्षित करना है ताकि वे आगे प्रशिक्षार्थी के रूप में अपनी जिम्मेदारी निभा सके। कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली द्वारा पिछले 4 वर्षों में विभिन्न केन्द्रों पर 55 प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया गया जिसमें 833 पुरूष किसानों एवं 542 महिलाओं ने भाग लिया एवं लाभान्वित हुए। इस तरह 1375 किसानों एवं ग्रामिण महिलाओं को प्रशिक्षित किया गया।

इस प्रशिक्षण के फलस्वरूप कई किसानों ने अपने प्रक्षेत्र पर अजोला को लगाया एवं इसका उपयोग वे गाय, बकरी, भेड़, सुअर, मछली, मुर्गी एवं घोड़ों को खिलाने में प्रयोग कर रहे है। यह पाया गया कि इसको पशु चाव से खाते हैं। किसान विशेष जानकारी के लिए कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली के संपर्क में रहते हैं एवं जानकारी प्राप्त कर अपनी समस्याओं का समाधान करते हैं।

अजोला का लाभ लागत विश्लेषण :

अजोला का लागत देखे तो बहुत ही कम खर्चे में अधिक मुनाफा है क्योंकि इसमें कोई ज्यादा पैसें लगाने की जरूरत नहीं होती है किसान अपने घर एवं प्रक्षेत्र पर छायादार जगह पर इसका उत्पादन कर सकते हैं क्योंकि क्यारी में बिछाने के लिए इसमें सिर्फ एक प्लास्टिक शीट की जरूरत पड़ती है। अजोला से देखा जाय तो प्रतिवर्ष लगभग 37,500 रूपये का शुद्ध लाभ मिल सकता है। इस प्रकार लाभ लागत का विवरण सारणी 2 में दिया गया है।

सारणी–2 अजोला से प्रति इकाई लाभ/लागत का ब्योरा

उत्पाद	**मात्रा**	**लाभ/लागत (रूपये)**
लागत		
क्यारी बनाने की मजदुरी	1 मजदुर 285/–	285/–
छांया करने के लिए ग्रीन नेट, छप्पर आदि	20 मीटर वर्ग मीटर दर 16 प्रति मीटर	320/–
प्लास्टिक शीट (काले रंग की)	25 मीटर दर 18/– प्रति मीटर	450/–
गोबर ताजा	25 किलोग्राम दर 2 प्रति किलो	50/–
अजोला बीज	5 किलोग्राम 50/– प्रति किलो	250/–
कुल लागत	–	**1355/–**
अजोला से लाभ	प्रतिदिन कुल उत्पादन (5 क्यारीयों से), 2.5 किलोग्राम	125रूपये प्रतिदिन की कमाई (**37,500 रूपये** का शुद्ध लाभ प्रतिवर्ष)
हरे चारे की बचत	15X3	45 रूपये की बचत प्रतिदिन

अजोला खिलाने से पशुओं में लाभ :

अजोला एक सपूंर्ण पोषक तत्वों का खजाना है जिससे पशुओं के सभी पोषक तत्वों की पूर्ति होती है। पशुओं को नियमित अजोला खिलाने से उनके उत्पादन में वृद्धि होने के साथ–साथ उनके शरीर में में भी वृद्धि होती है। वृद्धि के साथ उनमें चारा व पानी संतुलित मात्रा में ग्रहण करती है। तथा पशु व जानवर स्वस्थ रहते है। सबसे अधिक फायदा गाय में पाया गया है क्योंकि गाय चमड़े, कपड़े, मिट्टी आदी नहीं खाती इसका मुख्य कारण गाय को संतुलित चारा नही खिलाने पर उसके शरीर में पोषक तत्वों की कमी आती है जिससे वह चमड़ा, चप्पल, कपड़े व पोलिथिन को खाती है सर्वे में देखा गया कि जिस गाय को प्रतिदिन अजोला खिलाया वह इन सब को नही खाती हैं। अजोला का पशुओं व जानवरों के शरीर पर प्रभाव सारणी 3 में दिया गया है।

सारणी–3 अजोला को पशुओं को खिलाने से उनके उत्पादन में वृद्धि एवं लाभ

पशु का नाम	**मात्रा**	**वृद्धि शरीर भार प्रतिशत / उत्पादन**
गाय	1.5 कि.ग्रा. प्रति दिन	15 प्रतिशत
भैंस	1.5 कि.ग्रा. प्रति दिन	12 प्रतिशत
बकरी	1.0 कि.ग्रा. प्रति दिन	15.9 प्रतिशत
भेड़	1.0 कि.ग्रा. प्रति दिन	16.0 प्रतिशत
मुर्गी	150 ग्राम प्रति दिन	12.5 प्रतिशत
सुकर	2.0 कि.ग्रा. प्रति दिन	20.0 प्रतिशत
घोड़ा	1.5 कि.ग्रा. प्रति दिन	11.5 प्रतिशत

चित्र 1. किसानों द्वारा अजोला इकाई का भ्रमण

चित्र 2. कृषक महिलाओं द्वारा इकाई का भ्रमण

चित्र 3. अजोला पर प्रशिक्षण

चित्र 4. पूर्व उपमहानिदेशक,एन.आर.एम., भाकृअप द्वारा निरीक्षण

चित्र 5. प्लास्टिक टैंक में अजोला उत्पादन

चित्र 6. भैंस अजोला खाते हुए

चित्र 7. भेड़ अजोला खाते हुए

चित्र 8. गाय अजोला खाते हुए

कम्पोस्ट बनाने की उत्तम विधियाँ

महेश कुमार एंव रणजीत सिंह यादव

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

कम्पोस्टिंग एक सूक्ष्म जैविक विघटन प्रक्रिया है जिसमें मिट्टी में प्राकृतिक तौर से पाए जाने वाले बैक्टिरिया और अन्य छोटे जीव प्राकृतिक जैविक अपशिष्ट पदार्थों को पाचन प्रक्रिया के द्वारा कम समय में विघटित करके खाद में बदल देते हैं। कम्पोस्टिंग से प्राप्त उत्पाद को हम कम्पोस्ट या जैव उर्वरक के नाम से जानते हैं। इस खाद को हम हयूमस भी कहते हैं। कम्पोस्ट एक प्रकार की खाद है जो जैविक पदार्थों के अपघटन एवं पुर्नचक्रण से प्राप्त की जाती है। यह जैव कृषि का मुख्य घटक है। कम्पोस्ट बनाने की आधुनिक विधि कई चरणों में पूर्ण होती है और प्रत्येक चरण में जल, वायु एवं कार्बन तथा नाइट्रोजन से समृद्ध पदार्थों को बड़े नपे–तुले ढंग से डाला जाता है। पौधों के लिए कम्पोस्ट पोषक तत्त्वों से भरपूर होती है और यदि आपके पास खुला स्थान है तो घर/खेत पर ही आप पोषक तत्त्वों से भरपूर कम्पोस्ट तैयार कर सकते हैं। पौधों के लिए पोषक तत्त्वों से भरपूर मिट्टी की बहुत आवश्यकता होती है। यहां की मिट्टी में पोटाश और फॉस्फेट अच्छी मात्र में मिल जाता है, परंतु पौधों की वृद्धि व विकास के लिए अत्यंत आवश्यक तत्त्व नाइट्रोजन कम होता है और नाइट्रोजन उसे कम्पोस्ट द्वारा संतुलित रूप में उपलब्ध होता है। मानव ही नहीं, पशु–पक्षी सभी अपना मुख्य भोजन वनस्पति जगत से ही प्राप्त करते हैं और वह मल–मूत्र मिट्टी में मिल कर भूमि को उपजाऊ बना देता है। यदि इसको सही रूप में तैयार कर लिया जाए तो हम कम्पोस्ट तैयार करके पौधों को अत्यंत संतुलित पोषक तत्त्व प्रदान कर सकते हैं। भोजन का यह चक्र ही वनस्पति जगत में संतुलन बनाए रखता है। जंगलों में पत्तों के गिरने से सड़ने की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है व वनस्पतियों को निरंतर पोषक तत्त्व उपलब्ध होते रहते हैं। प्रकृति में यह सड़ना व गलना बैक्टीरिया की सहायता से होता रहता है। अधिकांश किसानों के बाड़ी या प्रक्षेत्र में स्वनिर्मित खाद के गड्ढे होते हैं। कृषक इस गड्ढे का उपयोग खाद बनाने में करते हैं। यहां घर के अपशिष्ट और फार्म के कचरे का इस्तेमाल खाद बनाने में करते हैं। ठीक प्रकार से न सड़ने के कारण उसमें खरपतवार के बीज और निमेटोड पाए जाते हैं, जो फसलों के लिए नुकसानदेह हैं। खाद बनाते समय इसे खुला छोड़ दिया जाता है और अत्यधिक गर्मी और बारिश से बचाव की सुविधा नहीं होती है। इन कचरों का उपयोग व्यवस्थित और वैज्ञानिक रीति से न होने के कारण खाद की गुणवत्ता निम्न स्तर की होती है, जिसमें जीवांश और पोषक तत्वों की मात्रा कम होती है। किसान बहुत कम खर्चे में स्वयं जैविक खादों का निर्माण कर सकते हैं। इनके पास उपलब्ध खाद गड्ढा अच्छी गुणवत्ता वाली खाद प्राप्त करने का अच्छा माध्यम हो सकता है, जिसे कंपोस्टिंग (सड़न) की अत्यंत सरल प्रक्रिया द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

खाद बनाने हेतु प्रयुक्त सामग्री

पौधों की पत्तियों, टहनियों, डंठल, भूसा, पैरा कुट्टी, घर से प्राप्त सब्जियों के टुकड़े आदि को छोटे–छोटे काटकर बांट देना चाहिए। घर और खेत पर उपलब्ध जानवरों के गोबर को उनके मूत्र के साथ एकत्रित करना चाहिए। जानवरों के बिछावन को इकट्ठा करने के लिए पशुशाला में भूसा, लकड़ी बुरादा या रेत का बिछावन बिछाना चाहिए और इसे 10–15 दिनों में हटाते रहना चाहिए। जानवरों के मूत्र को एक सामान्य कक्रीट टैंक में इकट्ठा करते रहना चाहिए।

गोबर और कचरा संग्रह करने का तरीका

खाद के गड्ढे को भरने से पूर्व उसे घर या प्रक्षेत्र पर पहले अलग–अलग एकत्रित करना चाहिए। इसके लिए दो छोटे और गहरे गड्ढे बनाए जाते हैं। इन गड्ढों में मल–मूत्र और इनका बिछावन और वनस्पतिक कचरे को अलग–अलग गड्ढों में इकट्ठा किया जाता है। पौध अवशेष, पत्ती, टहनी, डंठल, घर से प्राप्त सब्जी के टुकड़े को बारीक कर गड्ढे में नियमित रूप से गोबर के घोल से तर करके मिलाते रहना चाहिए। इन पदार्थों से पत्थर के टुकड़े, प्लास्टिक इत्यादि को अलग कर देना चाहिए।

खाद गड्ढे का आकार 6 मीटर लंबा, डेढ़ मीटर चौड़ा और एक मीटर गहरा होना चाहिए। हालांकि पशुधन की संख्या और आवश्यकतानुसार आकार को छोटा–बड़ा कर सकते हैं। गड्ढे का आकार यदि बड़ा हो तो उसे 2 या 3 बराबर भागों में बांट लेना चाहिए। खाद भरते समय जब पहला भाग भूतल से 45 सेमी. ऊंचा हो जाए तो उसे ढेर के रूप में बनाकर गोबर के घोल व मिट्टी से ढक देना चाहिए। फिर गड्ढे के शेष भाग में इसी तरह खाद भरना चाहिए। इससे वर्ष भर खेतों को उच्च गुणवत्ता वाली कंपोस्ट खाद की पूर्ति होती है। गड्ढों का चुनाव छायादार स्थान पर करना चाहिए और खाद बनाते समय नमी की पर्याप्त मात्रा होना आवश्यक है। गड्ढे के विभिन्न भागों के उपयोग के लिए समय नियोजित करना आवश्यक है, ताकि हर फसल के लिए खाद उपलब्ध हो सके।

खाद बनाने की वैज्ञानिक विधि :

जानवरों के मल–मूत्र, बिछावन और वनस्पति कचरों का संग्रह तब तक इन छोटे–छोटे गड्ढों में करना चाहिए जब तक कि दिए गए गड्ढों के आकार के अनुसार पूर्ति न हो जाए। गड्ढे भरने के पूर्व इन पदार्थों में प्रति क्विंटल कचरे की दर से एक किलोग्राम रॉक फास्फेट का प्रयोग करना चाहिए, जो कि सस्ता और आसानी से उपलब्ध हो जाता है।

संग्रहित कचरों का उपयोग गड्ढा के पहले भाग में भराई हेतु विभिन्न परतों में डालना चाहिए। सर्वप्रथम गड्ढों की साफ–सफाई कर उसकी सतह को मिट्टी या बालू से दबाकर ठोस बनाएं, फिर उसे गोबर के

घोल से तर करें। इसके बाद पहली परत के रूप में वनस्पतिक कचरे का तीन से चार इंच परत में एक समान बिछाएं, जिसे गोबर के घोल से तर करें। इसी क्रम में गड्ढा भराई को पूर्ण करें। भराई का कार्य भूतल सतह से 45 सेमी. ऊंचा करें। फिर उसे ढेरी बनाकर मिट्टी और गोबर के घोल से लीप दें। बिल्कुल यही प्रक्रिया गड्ढे के शेष भाग में दोहरानी चाहिए, जिसके बनाने का क्रम निश्चित करें। अपघटन प्रक्रिया के लिए सत्तर फीसदी नमी होनी चाहिए, जिसकी पूर्ति के लिए नियमित जल दें।

20 से 25 दिनों बाद जब गलन प्रक्रिया से उत्पन्न गर्मी कम हो जाए, तब खाद के विभिन्न परतों में सूक्ष्म जीव ट्राइकोडर्मा विरडी का छिड़काव करें। यह बाजार में आसानी से उपलब्ध है। इससे खाद की गलन क्रिया और गुणवत्ता में वृद्धि होती है। 6 से 8 दिनों बाद खाद पलटने का कार्य करें। इसमें प्रत्येक परत का पलटा जाना आवश्यक है। खाद पलटने की प्रक्रिया तीन बार हर पंद्रह दिनों में करें। यह क्रिया ढाई माह तक करते रहें। अंतिम बार पलटने के समय जैव उर्वरक जैसे राइजोबियम (दलहन फसलों के लिए), पीएसबी, एजोटोबैक्टर एजोस्पाइरिलम आदि खाद में मिश्रित करें। इससे खाद में लाभकारी जीवाणु की संख्या बढ़ती है और खाद की गुणवत्ता अधिक बढ़ जाती है। इसके एक माह बाद खाद का प्रयोग खेतों में करें। इसे खेतों में समान रूप से फैलाना चाहिए। कंपोसंटिग या सड़न की आसान प्रक्रिया को जानकर किसान स्वयं अपने परंपरागत गड्ढे से कम समय में उत्तम गुणों वाली खाद बना सकता है, जिसमें जीवांश और पोषक तत्व भरपूर मात्रा में होते हैं।

कम्पोस्ट बनाने में किन बातों का ध्यान रखें :

- कम्पोस्ट बनाते वक्त इसे ऐसी जगह तैयार करें जहाँ सीधी धूप न पड़े।
- तैयार होते वक्त कम्पोस्ट का तापमान बढ़ जाता है, धूप में गर्म होने से इसमें नमी बहुत जल्दी ख़त्म हो सकती है।
- नमी कम होने से जैविक विघटन की प्रक्रिया धीमी हो जाती है। ज्यादा सूखने पर यह पूरी तरह रूक भी सकती है।
- कम्पोस्ट मिश्रण केवल नम होना चाहिए, गीला होने पर इसमें सड़ने की प्रक्रिया शुरू हो सकती है।
- याद रखें कम्पोस्ट या जैविक विघटन एक जैव अभिक्रिया है जिसके विपरीत सड़ने की प्रक्रिया एक जैव रासायनिक प्रक्रिया है।
- सही तरीके से तैयार हो रहे कम्पोस्ट में दुर्गन्ध और कीड़े लगने की समस्या नहीं होती है।
- अगर मिश्रण से दुर्गन्ध आ रही हो या इसमें केंचुए के अलावा दूसरे कीड़े लग रहे हों तो इसमें और पदार्थ न डालें, अगर मिश्रण से दुर्गन्ध कुछ दिन में दूर न हो तो इस मिश्रण को फेंक दें।

- कम्पोस्ट में अम्लीयता (एसिडिटी) नहीं होनी चाहिए, नींबू या मौसमी आदि खट्टे पदार्थ अनुपात में कम रखें।
- जैविक प्रक्रिया होने के नाते कम्पोस्ट को आक्सीजन की अधिक जरुरत होती है, पूरी तरह से बंद जगह में कम्पोस्टिंग की प्रक्रिया धीमी या फिर बंद हो सकती है।

जैविक खेती में खादों का महत्व

भगवत सिंह राठौड एंव अशोक सिंह तोमर

भा.कृ.अनु.प.–काजरी, कृषि विज्ञान केन्द्र, जोधपुर (राजस्थान)

जैविक या कार्बनिक खाद–वर्ग के अंतर्गत पशु–पक्षियों के मल–मूत्र या शरीर के अवशेष से अथवा पेड़–पौधों से प्राप्त होने वाले पदार्थ आते हैं। ऐसी खादों के प्रयोग से मिट्टी की भौतिक अवस्था में सुधार होता है, मृदा में ह्यूमस का निर्माण होता है तथा अणुजीवियों के विकास के लिये उपयुक्त वातावरण बनता है। जैविक खाद विभिन्न प्रकार से बनाई जा सकती है।

गोबर खाद

भारत में प्रयोग में आने वाली सभी जैविक खादों में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। पशुओं के मल–मूत्र का महत्व तो आदिकाल से भारत के किसानों को ज्ञात रहा है परन्तु इस देश का दुर्भाग्य है कि आज भी करीब 60 प्रतिशत गोबर जलाने का काम आता है एवं खाद के रूप में प्रयोग होने वाला गोबर इस ढंग से रखा जाता है कि इसमें निहित पोषक तत्व बड़ी मात्रा में नष्ट हो जाते हैं। पशुओं के मूत्र के संरक्षण का भी कोई प्रबंध नहीं किया जाता। खाद में निहित पोषक तत्वों का मात्रा पशुओं के प्रकार, पशुओं के चारे, पशुओं की उम्र तथा खाद को रखने के ढंग आदि पर निर्भर करती है। ऐसी खाद बनाने के लिये प्रतिदिन सुबह गोबर एवं मूत्र से सनी बिचाली को अच्छी तरह मिलाकर 7 फुट लंबी एवं 6 फुट चौड़ी तथा 3.5 फुट एक गहरी खाई में डाल देते हैं। जब खाद की ढेरी जमीन से डेढ़ फुट ऊँची हो जाए तो उसे गोबर मिट्टी से पोतकर पुनः आगे खाई भरते हैं। सामान्यतः इस खाई में खाद भरने के बाद दूसरी खाई में खाद भरना शुरू कर देते हैं।

इस विधि से औसतन प्रति जानवर करीब 6 मीट्रिक टन खाद तैयार की जा सकती है। सड़ने–गलने के बाद जानवरों का मल–मूत्र एवं बिचाली 'गोबर खाद' के रूप में परिवर्तित हो जाती है। सड़ने–गलने की इस प्रक्रिया में बहुत से जीवाणु (कवक, बैक्टीरिया एवं एक्टिनोमाइसिटीज) भाग लेते हैं। इन जीवाणुओं में कुछ वायुजीवी होते हैं और कुछ अवायुजीवी। प्रक्षेत्रांगन या गोबर खाद तैयार करने की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इन जीवाणुओं के लिये अनुकूल परिस्थिति पैदा की जाए।

कम्पोस्ट खाद

इस प्रकार की खाद पेड़–पौधों की पत्तियों, जड़ों या अन्य किसी प्रकार के वास्तविक अवशेषों या मल, कूड़ा–कचरा एवं अन्य बेकार चीजों को खाद के ढेर में रखकर सड़ाने–गलाने से बनती है। इस क्रिया में पोषक तत्व इस रूप में बदल जाते हैं कि पौधे आसानी से उन्हें ग्रहण कर सके। कम्पोस्ट खाद तैयार करते

समय इतनी गर्मी पैदा होती है कि मल–मूत्र, कूड़ा–कचरा गंदा पानी आदि में रहने वाले हानिकारक रोगाणु मर जाते हैं तथा निरापद एवं गंधरहित उत्तम खाद तैयार होती है। कम्पोस्ट खाद को तैयार करने की इंदौर विधि में सड़ाने–गलाने की क्रिया वायुजीवी जीवाणुओं द्वारा होती है जबकि बेंगलूरु विधि में वायुजीवी एवं अवायुजीवी दोनों प्रकार के जीवाणु कार्य करते हैं।

इंदौर विधि

इंदौर विधि में वनस्पतिक अवशेषों की 15 सेमी. मोटी परतें, एक के ऊपर एक रखते हुए करीब 1 मीटर ऊँची ढेरी तैयार कर लेते हैं तथा इस सामग्री को मिला कर पशुओं के पैरों के पास डाल देते हैं। अगले दिन गोबर एवं मूत्र से सनी सामग्री को 1 मीटर लंबे व 2.5 मीटर चौड़े गढ्डों में डाल देते हैं। तीन–चार बार खाद सामग्री को 15–15 दिन के अंतर पर उलट कर फिर इसमें पानी डाल देते हैं। इस प्रकार की खाद लगभग 3–4 माह में तैयार हो जाती है। इसमें निम्न कमियाँ हैं :

1. इस विधि से कम्पोस्ट खाद तैयार करने में बहुत मेहनत पड़ती है।
2. खाद की ढेर तैयार करने, खाद–सामग्री के विभिन्न घटकों को यथानुपात रखने तथा खाद–सामग्री को उलट–पलट में बड़ी सावधानी बरतनी होती है।
3. यह विधि कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिये उपयुक्त नहीं है।
4. इस विधि से तैयार खाद हल्की होती है जिसमें नाइट्रोजन एवं जैव पदार्थ की मात्रा कम होती है।

बेंगलूर विधि

बेंगलूर विधि में 1 मीटर गहरी व 2.5 मीटर चौड़ी खाइयों में इंदौर विधि की तरह ही बिचाली को पशुओं के गोबर मूत्र से सनाकर भरते हैं। इस विधि में पहले 7–8 दिनों के पश्चात अवायुजीवी जीवाणु अपना कार्य करते हैं। इस विधि मे खाद सामग्री की ऊपर से मिट्टी के गारे से पुताई करते हैं जिससे नमी कम नहीं होती है एवं सड़ने–गलने की क्रिया भीतर चलती रहती है। इस विधि की खाद में इंदौर विधि की अपेक्षा नाइट्रोजन एवं जैव पदार्थ अधिक होते हैं।

हरी खाद

हरी वनस्पति सामग्री को विशेषतः हरे फलीदार पौधों को उसी खेत में उगाकर अथवा कहीं अन्य स्थान से लाकर जुताई करके मिट्टी में दबा देने की क्रिया को 'हरी खाद' डालना कहते हैं। इस प्रकार की जैविक खाद से भूमि की उर्वरता में वृद्धि होती है और मिट्टी की अनुकूल अवस्था एवं उचित भू–प्रबंध के साथ भूमि में डाली गई हरी वनस्पति सड़–गलकर बहुत से लाभदायक प्रभाव छोड़ती है जो भूमि की उर्वरता बढ़ाने में सहायक हैं। हरी खाद के प्रयोग से लवणीय एवं क्षारीय मिट्टियों में सुधार किया जा सकता है।

हरी खाद के पौधे के कारण वाष्पोत्सर्जन की तुलना में वाष्पीकरण कम होता है तथा मृदा जल से लवण का सतह पर आना रुक जाता है। हरी खाद के फसलों के लिये फलीदार एवं गैर–फलीदार फसलों का प्रयोग किया जा सकता है। फलीदार पौधों की जड़ों में ग्रंथियां होती हैं जिनमें स्थित राइजोबियम बैक्टीरिया वायुमंडल से नाइट्रोजन लेकर मिट्टी को दे देते हैं।

हरी खाद के लिये व्यवहार में आने वाले फसलों में सनई (कोटोलोरिया जून्शिया) तथा ढेंचा (सेस्बेनिया एक्यूलियेटा) अधिक उपयोगी है। दोनों फसलें मानसून शुरू होने के पूर्व बो दी जाती हैं तथा तेजी से बढ़ती है। इनके तनों के कड़े होने के पूर्व ही इन्हें जोतकर जमीन के अंदर दबा देते हैं। गैर–फलीदार फसलों से भी काफी मात्रा में सामग्री मिट्टी में हरी खाद के रूप में प्राप्त होती है।

इसी प्रकार अमलतास, आक, टेफरोजिया, पौंगामिया आदि वृक्षों एवं झाड़ियों से पत्तियां काटकर खेत में डालकर जुताई करने से पत्तियाँ मिट्टी में दब जाती हैं तथा विधिरत होकर खाद का कार्य करती है।

हरी खाद से पूरा–पूरा लाभ उठाने के लिये आवश्यक है कि हरी खाद डालने की तकनीक की पूरी जानकारी आवश्यक हो क्योंकि इसके ऊपर ही हरी खाद की सफलता निर्भर करती है। हरी खाद वाली फसलों की बुआई का समय इस प्रकार निश्चित करना चाहिये कि मिट्टी में उस पौधे को दबाया जा सके, जब आधिकाधिक पोषक तत्व खेत में उपलब्ध हो सकें। पौधों के दबाने और अगली फसल के बोने के बीच इतना अंतराल होना चाहिये कि हरी खाद द्वारा अधिकाधिक पोषक–तत्व अगली फसल को उचित समय पर मिल सके और कम से कम मात्रा रिसकर निकल सके।

खलियां

जैविक खाद के रूप में तिलहनी फसलों की खलियों का प्रयोग कर सकते हैं। इन फसलों के बीज में बड़ी मात्रा में प्रोटीन रहता है जिसमें 9 प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है। तिलहनों के बीच से तेल निकालने के बाद बची खली नाइट्रोजनयुक्त खाद का काम कर सकती है। खलियों में उपस्थित पोषक तत्व जैविक यौगिकों के रूप में रहते हैं तथा खलियों का मिट्टी में विघटन होने पर भूमि को उपलब्ध हो जाते हैं। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की जैविक खादों से भूमि की उर्वरता बिना किसी हानिकारक प्रभाव के बढ़ाई जा सकती है।

पौधशालाओं में पौधों के विकास हेतु आवश्यक मृदा और मृदारहित माध्यमों का प्रबन्धन

रणजीत सिंह यादव, महेश कुमार व प्रियब्रत सांतरा

भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

पौधशाला या नर्सरी अंग्रेजी के शब्द नर्स या नर्सिंग से लिया गया है। जिसका अर्थ है– पौधों की देखभाल, पालन पोषण और संरक्षण प्रदान करना। इसलिए नर्सरी या पौधशाला वह स्थान है, जहाँ बीज की बुवाई, पौधों को तैयार करना, तैयार पौधों की देखभाल और उन्हें रोपण के लिए उपलब्ध कराना होता है। सामान्यतौर पर व्यवसायिक पौधशालाओं में फल, फूल, सब्जियाँ, औषधीय और वानिकी पौधों को तैयार किया जाता है। बहुवर्षीय पौधों में पौधरोपण के 4 से 5 वर्ष पश्चात ही वास्तविक गुणवत्ता का पता चलता है, अतः इनकी गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए विश्वसनीय पौधशाला का महत्व बहुत बढ़ जाता है। पौधशालाओं में वानस्पतिक विधियों से संवर्धन होने के कारण रोगरहित, उत्पादक मातृ पौधों से ही संकर या कलियाँ ली जाती है। ऐसे पौधों से स्थापित पौधों की गुणवत्ता लम्बे समय तक बनी रहती है। इसके अतिरिक्त पौधशाला का क्षेत्र सीमित होने के कारण पौधों की देखभाल और पालन पोषण आसानी से किया जा सकता है। पर्यावरण की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी पॉली हाऊस या नेट हाऊस के द्वारा पौधों के अंकुरण एंव वृद्धि हेतु अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान की जा सकती है, अतः इस तरह पौधशाला में पौधों को सफलतापूर्वक तैयार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सब्जियों के संकर किस्मों के बीज महंगे होने साथ ही सीधे खेत में उगाने में असफलता के कारण इन्हें पौधशाला में तैयार करना अधिक उचित होता है। अतः एक आदर्श पौधशाला के लिए उपरोक्त सभी महत्वपूर्ण फायदों के साथ ही पौधों के समुचित विकास हेतु उचित मृदा या मृदा रहित माध्यम का चुनाव अत्यावश्यक होता है जिसका विस्तृत विवरण नीचे उल्लेखित है–

बागवानी की पौधशालाओं में पौध संवर्धन हेतु वर्षों से मृदा का पौध विकास के माध्यम के रूप में उपयोग किया जाता है। हालांकि वर्तमान में विभिन्न प्रकार के मृदारहित पौध संवर्धन माध्यमों का उपयोग किया जाता है जिसमें मुख्य रूप से काकोपिट, लीफ मॉल्ड, स्फैगनम मॉस, परलाईट, वर्मीकुलाईट, स्थूल सेण्ड, नारियल छाल इत्यादि का उपयोग अत्यधिक प्रचलित है।

1. पौध संवर्धन माध्यम क्या है ?

यह एक जैविक तथा अजैविक पदार्थों का मिश्रण होता है जो कि पौध उगाने के लिए उपयोग में लाया जाता है तथा यह पौधों को आवश्यक पोषक तत्व की आपूर्ति, पौधों को खडा रहने में सहारा तथा विकासशील पौधों की पानी की आवश्यकता की आपूर्ति करता है।

2. एक अच्छे पौध संवर्धन माध्यम में क्या गुण होने चाहिए ?

- जैविक पदार्थों की पर्याप्त मात्रा, उचित स्थूल घनत्व, हवा का आदान प्रदान, रन्ध्रावकाश, पीएच आंक, आयन विनिमय क्षमता इत्यादि गुणों का निर्धारण अत्यावश्यक होता है।
- एक अच्छे माध्यम को हमेशा सुदृढ़ व स्थिर होना चाहिए जो कि गीली तथा सूखी दोनों अवस्थाओं में पौधों को पर्याप्त सहारा प्रदान कर सके।
- एक अच्छे माध्यम में पर्याप्त रन्ध्रावकाश होने चाहिए जो कि अधिक पानी का निकास निकास कर हवा का संचार कर सके साथ ही पर्याप्त मात्रा में नमी बनाये रखे।
- एक अच्छा माध्यम हमेशा खरपतवार बीजों, कीड़ों, कृमियों, दीमक, जमीन जनित बिमारियों के कारकों इत्यादि से मुक्त तथा उदासीन पी.एच. आंक का होना चाहिए।
- एक अच्छे माध्यम को निर्जिवीकरण करने पर उसकी आकृति, संरचना एंव रन्ध्रावकाश में किसी तरह का कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

3. पौध संवर्धन माध्यमों के प्रकार :–

यह मुख्य रूप से मृदा एंव मृदा रहित माध्यमों में विभाजित किया जाता है।

मृदायुक्त पौध संवर्धन माध्यम : यह माध्यम ठोस, द्रव व गैस तीनों अवस्थाओं में पाया जा सकता है। यह माध्यम पौधों के विकास हेतु भौतिक व पोषण युक्त सहारा प्रदान करता है। यह माध्यम जैविक व अजैविक पदार्थों के रूप में ठोस होता है तथा द्रवीय रूप में आवश्यक खनिज तत्वों का मृदा विलयन उपयोग में लाया जाता है।

मृदा रहित पौध संवर्धन माध्यम :–

i) स्थूल सेण्ड :– यह 0.05 से 2.0 मिलीमीटर आकार के कंकड व पत्थरों के रूप में पायी जाती है जो कि पौध संवर्धन माध्यम के रूप में उपयोग की जाती है।

ii) स्फैगनम मॉस (Sphagnum Moss) :– यह स्फेगनम पैपीलोसम तथा स्फैगनम पैलूसट्रे नामक पौधों के अवशेष जिनमें कि अपने वजन से लगभग 20 गुणा अधिक पानी सोखने की क्षमता रखते है को नमीयुक्त तथा सुखाकर उपयोग में लाये जाते हैं जो वजन के बहुत ही हल्के होते हैं।

iii) पीट (Peat) :– यह जलीय अथवा दलदलीय जगह पर पायी जाने वाली वनस्पतियों के अवशेष होते हैं जो कि पानी में अर्द्धगलनीय अवस्था में संरक्षित किये जाते हैं। विभिन्न प्रकार के पीट खदानों का संगठन

वहाँ की वनस्पतियों तथा उनके क्षरण की दर व अवस्था पर निर्भर करते है। उदाहरण के लिए अम्लीय पीट, क्षारीय पीट, मक पीट, बेल्ड पीट इत्यादि।

iv) वर्मीकुलाईट (Vermiculite) :– यह एक अभ्रक आधारित जलयुक्त मैग्नीशियम, एल्युमिनियम, लौहा तथा सिलिकेट युक्त खनिज पदार्थ होता है जो कि गर्म करने पर पर्याप्त रूप से फैल जाता है। यह वजन में बहुत ही हल्का होता है तथा एक क्यूबिक फीट वाल्यूम लगभग 4–5 लीटर पानी को सोखने की क्षमता रखता है जो कि उसके संगठन पर निर्भर करता है।

v) परलाईट (Perlite) :– यह एक ग्रे सफेद रंग का पदार्थ होता है जो कि वोल्केनिक (Volcanic)उत्पत्ति से पाया जाता है। यह भी वजन में बहुत हल्का होता है तथा अपने वजन से कई गुना ज्यादा पानी धारण क्षमता रखता है। लगभग 200–300 लीटर पानी को एक क्यूबिक मीटर परलाईट सोख लेता है।

vi) पत्तियाँयुक्त मोल्ड (Leaf Mould) :– इसे मिट्‌टी में कुछ मात्रा अमोनियम सल्फेट डालकर उस पर पत्तियों का स्तर बना देते हैं जिसमें पर्याप्त पानी की आपूर्ति बनाये रखी जाती है। इन सभी घटकों को क्षरण के लिए छोड़ दिया जाता है तथा इस तरह पत्तियों का मोल्ड (Leaf Mold) तैयार हो जाता है।

vii) लकड़ी की राख (Wood Ash) :– यह जलानें वाली लकड़ियों अथवा पेड़ों की टहनियों या शाखाओं को जलाकर तैयार की जाती है जिसमें पर्याप्त मात्रा में पौटेशियम तत्व की मात्रा पायी जाती है।

viii) कोकोपीट (Cocopeat) :– यह नारियल से रेशे तैयार करने वाले कारखानों का एक उत्पाद (byproduct) है जिसमें पोटेशियम तथा बोरोन तत्व की मात्रा पर्याप्त रूप से पायी जाती है। इसमें घुलनशील क्षारों की मात्रा भी अत्यधिक पायी जाती है जिससे इसकी विद्युत चालकता (Electrical conductivity) अधिक होती है साथ ही इसका पी.एच. आँक 5.5 से 5.9 तक पाया जाता है। इसमें कार्बन व नाइट्रोजन का अनुपात (C:N ratio) 110:1 होता है तथा इसमें 95% रन्ध्रावकाश व 250 kg/m^3 आपेक्षिक घनत्व होता है।

ix) प्यूमिस (Pumice) :– यह एक खनिज पदार्थ है जिसमें सिलिकन डाई ऑक्साइड तथा एल्यूमिनियम ट्राई ऑक्साइड के साथ अल्प मात्रा में आयरन, कैल्सियम, मैग्नीशियम तथा सोडियम के ऑक्साइड भी पाये जाते हैं।

x) हड्डियों का चूर्ण (Bone Meal) :– यह गमलों में पौध संवर्धन तथा फूलों की क्यारियों में मुख्यरूप से उपयोग में लाए जाते हैं। इसमें कैल्सियम तथा फॉस्फोरस तत्व प्रचूर मात्रा में पाये जाते हैं।

xi) तेलिय खली (Oil cakes) :– तेलीय फसलों जैसे कि अरण्डी, मूगंफली, कपास इत्यादि के बीजों से तेल निकालने के बाद जो खली बचती है उसमें पर्याप्त पोषक तत्वों की मात्रा पाई जाती है जैसे कि 2–5% नाईट्रोजन, 1–2% फॉस्फोरस इत्यादि को गमलों के पौधों में एक पौध संवर्धन माध्यम के रूप में उपयोग में लिया जाता है।

xii) लकड़ी का बुरादा :– लकड़ियों की चिराई में प्रयुक्त आरा मशीनों (Sawmill) से एक अनुत्पाद के रूप में लकड़ी बुरादा बनता है जो कि मृदा रहित पौध संवर्धन हेतु एक उचित व प्रभावित माध्यम है।

उपरोक्त सभी मृदा रहित पौध संवर्धन के जैविक व अजैविक घटकों की विभिन्न मात्राओं को आपस में मिलाकर एक वांछनीय मृदा रहित माध्यम तैयार किया जा सकता है इसके अलावा अल्प मात्रा में खाद एंव उर्वरकों, विभिन्न मृदा सुधारकों जैसे कि पिसा हुआ चूना, जिप्सम, पाईराइट इत्यादि का उपयोग भी आवश्यकतानुसार किया जा सकता है। ये सब मिश्रण तैयार करते समय माध्यम के पी.एच. आंक (pH) एंव विद्युत चालकता (EC) का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

4. पौधशाला स्थापना हेतु अन्य ध्यान रखने योग्य बातें :

एक आदर्श व स्वस्थ पौधशाला के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :–

1. स्थान का चयन : पर्याप्त मात्रा में सूर्य का प्रकाश, सिंचाई के पानी की उपलब्धता, जल निकास व्यवस्था आदि का स्थान के चुनाव में ध्यान रखना आवश्यक है। इसके अलावा सिंचाई के पानी की गुणवत्ता तथा आवागमन की सुविधा का भी ध्यान रखना चाहिए।

2. पौध विकास हेतु उचित माध्यम का चुनाव : मृदायुक्त पौध संवर्धन माध्यम हेतु भूमि का चुनाव अथवा तो संगठन के चुनाव में जीवांश युक्त दोमट मिट्टी जिसका पी.एच. आंक 6 से 7.5 हो, उपयुक्त मानी जाती है। अधिक बलुई या तो अधिक चिकनी मृदाओं में जल एंव वायुसंचार की कमी के कारण पौधों की वृद्धि अच्छी नहीं हो पाती है। अधिक क्षारीय, लवणीय, ऊसर और कंकरीली भूमि पौधशालाओं के लिए उपयुक्त नहीं मानी जाती है। पूर्व में उल्लेखित मृदा रहित माध्यम के विभिन्न घटकों का उचित मिश्रण तैयार कर पौध विकास के लिए उपयोग किया जा सकता है।

3. पौध संवर्धन माध्यमों का उपचार : पौधशालाओं को कीट व रोग मुक्त रखने के लिए माध्यमों का उचित उपचार अत्यावश्यक होता है। इन उपचारों के दौरान यह ध्यान रखना चाहिए कि पौध वृद्धि माध्यमों के मूल संगठन में किसी भी तरह का बदलाव नहीं होना चाहिए इन माध्यमों को कीटनाशक दवाईयों, जमीन जनित रोगनाशक दवाईयों, दीमक की दवाईयों, सूत्रकृमि की दवाईयों, कवकनाशक दवाईयों इत्यादि से उपचारित

करना चाहिए जिससे पौधों में कीट व रोगों की सम्भावना को कम किया जा सके। इन माध्यमों को फार्मलीन का उपयोग कर जीवाणुरहित बनाया जा सकता है अथवा तो सौरीकरण विधि द्वारा भी इन माध्यमों का निर्जिवीकरण किया जा सकता है।

4. पौधशालाओं की देखभाल : पौधशालाओं में जो मातृ वक्ष या पौधे लगे होते हैं उन सभी को सड़ी हुई गोबर की खाद अथवा तो उपयुक्त उर्वरकों का प्रयोग कर उचित पोषण प्रदान करना चाहिए। विभिन्न पौध संवर्धन माध्यमों को सूत्रकृमि या किसी भी मृदा जनित रोग कारक का प्रकोप हो तो धूमन (Fumigation) द्वारा इन रोग कारकों का नियंत्रण करना चाहिए। पौधशाला के पौधों को स्वस्थ बनाएं रखने हेतु आवश्यक विभिन्न क्रियाओं का निर्धारित समय पर प्रयोग करना चाहिए।

मरुभूमि में मृदा व वर्षा जल संरक्षण व प्रबन्धन

राजेश कुमार गोयल

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

मिट्टी व पानी किसी भी फसल के उत्पादन के लिये मूलभूत आवश्यकताएं होती हैं। इनमें से किसी भी तत्व के अभाव में फसल उत्पादन संभव नहीं है। समय के साथ–साथ मिट्टी की उत्पादकता में भी कमी आती है इसलिये उत्पादक भूमि व जल के उचित संरक्षण के बिना फसल उत्पादन में दीर्घकालीन स्थायित्व नहीं ला जा सकता है। भौगोलिक क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान भारत का सबसे बडा राज्य है लेकिन औसत वार्षिक वर्षा के आधार से यह राज्य अन्य राज्यों की तुलना में भारत में सबसे पीछे है। राज्य में औसत वार्षिक वर्षा 60 सेमी देश की औसत वार्षिक वर्षा से आधी है। कम पानी व ज्यादा गर्मी यहाँ के जीवन के दो मुख्य बिन्दु है। राज्य का पश्चिमी भू–भाग जो थार मरुस्थल के नाम से भी जाना जाता है वहाँ जल संकट की समस्या और भी गम्भीर हो जाती है। इस क्षेत्र के अधिकांश भू–भाग में भूजल अत्यधिक गहरा व लवणीय है। मरुभूमि में सिंचाई के अन्य परम्परागत साधन जैसे नदी, तालाब, नहरों आदि का पूर्णतः अभाव है। उच्च वाष्पीकरण दर व लगातार तेज चलने वाली आंधियाँ इस भू–भाग को और भी अधिक विकट बना देती हैं। अतः यहाँ खेती पूरी तरह से वर्षा पर आधारित है। मरुभूमि में वर्षा ऋतु में वर्षा दिवस प्रायः 10 से 15 दिन होते है। वर्षा अत्यधिक कम लेकिन प्रायः तेज व अनियमित होती है। भूमि पर पर्याप्त वनस्पति न होने के कारण तेज वर्षा होने या हवाएं चलने पर जल और वायु द्वारा मृदा का क्षरण होता है। इन सभी विपरीत परिस्थितियों के कारण राज्य के इस भू–भाग को प्रायः सूखे व अकाल का सामना पड़ता है। विश्व के कुल जल उपयोग का लगभग दो तिहाई भाग कृषि कार्यो में उपयोग होता है। कृषि कार्यो में जल की भारी अपव्ययता का मुख्य कारण कृषि की अकुशल तकनीकियां है। जरूरत से अधिक जल से न केवल जल हानि होती है बल्कि इससे भूमि की उत्पादकता में भी कमी आती है। ऐसी परिस्थिति में स्थानीय संसाधनों के उचित संरक्षण व प्रबन्धन द्वारा ही फसल उत्पादन किया जा सकता है। उत्पादन में संसाधनों के महत्व को ध्यान रखते हुये भारत सरकार ने मृदा व जल संरक्षण कार्यो की शुरूआत प्रथम पंचवर्षीय योजना के आरम्भ से ही कर दी थी। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर ने पिछले कई वर्षो की शोध के द्वारा वर्षा जल व मृदा संरक्षण की तकनीकों को और अधिक प्रभावशाली व उन्नत बनाया है। संसाधन संरक्षण व प्रबन्धन की इन तकनीकों को अपनाकर विषम परिस्थितियों में भी भरपूर फसल पैदा की जा सकती है।

समोच्च खेती

परम्परागत विधि में प्रायः खेती ढाल के समानान्तर ऊपर से नीचे की जाती है व यह तरीका मृदा व जल क्षरण का एक मुख्य कारण है। यदि समस्त कृषि कार्य एवं बोआई–रोपाई ढाल के अभिलम्ब दिशा में समोच्च रेखा पर किया जाये तो मृदा व जल क्षरण को काफी हद तक कम या रोका जा सकता है। इस विधि में जुताई करते समय ढाल के विपरीत दिशा में सूक्ष्म अवरोधों का निर्माण होता है जो मृदा व जल क्षरण को रोकने में सहायक होता है। मृदा व जल संरक्षण के अतिरिक्त समोच्च खेती मृदा की उर्वरता का भी संरक्षण करती है जिससे फसलों की उपज में वृद्धि होती है।

समतलीकरण एवं मेड़बन्दी

उबड़–खाबड़ भूमि पर वर्षा जल का वितरण कहीं आवश्यकता से अधिक तो कहीं पर आवश्यकता से बहुत कम होता है। ये दोनों ही स्थितियां फसल उत्पादन के लिये बहुत प्रतिकूल है। खेत के समतलीकरण द्वारा वर्षाजल वितरण की इस असमानता को दूर किया जा सकता है। बहुत उबड़–खाबड़ भूमि में समतलीकरण का कार्य किश्तों में 2 से 3 साल में किया जा सकता है। ऊचें स्थानों से मिट्टी को काट कर निचले स्थानों में जमा करके समतलीकरण का कार्य पूरा किया जा सकता है। समतल सतह से जल का बहाव कम होने के कारण वर्षाजल भूमि में अधिक मात्रा में रिसता है व नमी गहराई तक बनी रहती है। खेत के चारों ओर मेड़ न होने से वर्षा जल अनियन्त्रित रुप से बहकर मृदा का अपरदन कर खेत में अवनालिकायें (Gullies) विकसित कर भूमि को खराब कर सकता है। अतः खेत को समतल कर चारों ओर न्यूनतम 50 से.मी. से 60 से.मी. ऊंची मेंड़ बनाकर वर्षाजल, पोषक तत्व, खाद व बीज को बाहर जाने से रोका जा सकता है। मेड़बन्दी का मुख्य उद्देश्य खेत का पानी खेत में रहना चाहिये।

समोच्च बांधन/वानस्पतिक अवरोध

जिन बड़े खेतो में अधिक ढ़लान के कारण समतलीकरण सभंव नहीं होता है वहां ढ़लान के अभिलम्ब दिशा मे मिट्‌टी के समोच्च अवरोध बनाकर वर्षाजल के बहाव व मृदा क्षरण को रोका जा सकता है। समान्यतः दो समोच्च अवरोधों के मध्य 60 से 70 मीटर की दूरी रखी जाती है जो स्थानीय वर्षामान व ढ़लान पर निर्भर करती है। समोच्च अवरोध 0.75 से 1 मीटर ऊँचे व 1 से 1.5 मीटर चौड़े आधार के बनाये जा सकते है। इन अवरोधों को अधिक मजबूती प्रदान करने के लिये इन पर स्थानीय वनस्पति जैसे मूंजा, सेवण आदि को लगाया जा सकता है। पानी के बहाव के मार्ग में इन अवरोधों के होने के कारण पानी को भूमि में रिसने के लिये अधिक समय मिलता है व खेत में एक समान नमी बनी रहती है। समोच्च अवरोधों का निर्माण कार्य हमेशा खेत के ऊचें स्थानों से आरम्भ करके निचले स्थानों पर समाप्त किया जाता है लेकिन समोच्च अवरोध सदैव ढ़लान के अभिलम्ब दिशा मे ही बनाये जाते है। समोच्च बांधन के निर्माण के

लिये मिट्टी को ढ़लान के ऊपर के स्थान से काट कर निचले स्थान पर जमा किया जाता है। प्रत्येक वर्षा के बाद समोच्च अवरोधों का निरीक्षण किया जाना चाहिये एवं किसी भी प्रकार की दरार या धंसने की स्थिती में समोच्च बांधन की तुरंत मरम्मत कर देनी चाहिये। समस्त कृषि कार्य यथा जुताई आदि ढ़लान के अभिलम्ब दिशा मे करने चाहिये।

समोच्च नाली

यह तकनीक प्रायः बंजर भूमि या चारागाह से उत्पादन प्राप्त करने के लिये प्रयुक्त की जाती है। इस तकनीक के तहत अधिक ढ़लान वाले खेत या चारागाह में ढ़लान के अभिलम्ब दिशा में समोच्च नाली बनायी जाती है। नाली से निकाली गई मिट्‌टी ढ़लान की तरफ मेड़ के रुप में डाल दी जाती है। वर्षा होने पर सतही बहाव इस नाली में इकठ्‌ठा हो जाता है जो पौधों को लगाने के लिये प्रारम्भिक अवस्था में बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। ढ़लान की तरफ बनाई गई मेंड़ बहते पानी के मार्ग में अवरोध का कार्य करती है। सामान्यतः नाली 0.30 से 0.40 मीटर गहरी व 0.60 से 0.80 मीटर चौडी बनाई जा सकती है। दो नालियों के मध्य 60 से 90 मीटर का अन्तराल पर्याप्त होता है। समोच्च नाली तकनीक विशेषतः ढ़लान वाले चारागाहों में वृक्ष व घास स्थापित करने में काफी सहायक होती है।

खेत में तालाब की तलछट का प्रयोग

बलुई मिट्‌टी में जल धारण क्षमता बहुत कम होती है इस कारण वर्षा का अधिकांश जल गहरे अन्तः स्त्राव के द्वारा बिना उपयोग के नीचे चला जाता है। वर्षाकाल के दौरान बहाव के साथ तालाबों में चिकनी काली मिट्‌टी जमा हो जाती है। इस मिट्‌टी की जल धारण क्षमता बलुई मिट्‌टी की अपेक्षा ज्यादा होती है। अतः गर्मियों मे तालाबों के खाली होने के बाद इनकी सतही काली मिट्‌टी को खेतों में बिछा देने से खेतों की बलुई मिट्‌टी की जल धारण क्षमता बढ़ाई जा सकती है व पानी अधिक समय तक फसलों के उपयोग के लिये भूमि में उपलब्ध रहेगा।

अच्छे जमाव, पौधों की बढ़वार तथा अधिकतम उपज के लिये खेत की जुताई एक आवश्यक कृषि कार्य है। इससे खेत में खड्‌डे, खरपतवार, मिट्‌टी में छिपे हानिकारक कीट आदि नष्ट हो जाते है और जैव पदार्थो का भूमि में मिलाव अच्छी तरह से हो जाता है। मिट्‌टी भुर–भुरी हो जाने से जड़ों का विकास भी अच्छी तरह से होता है और मिट्‌टी की जलधारण क्षमता बढ़ जाती है। खरीफ में आवश्यकता से अधिक जुताई करने पर तेज हवाओं द्वारा मिट्‌टी एंव नमी का ह्रास होता है अतः जुताई करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि खेत की तैयारी एवं बुआई के बीच कम समय अन्तराल हो। बुआई के लिये अच्छी तरह खेत तैयार करने के लिये स्वीप कल्टीवेटर द्वारा एक जुताई बरसात के समय तथा एक जुताई बुआई से पहले पर्याप्त होती है। जुताई हमेशा खेत के ढाल के अभिलम्ब दिशा में करनी चाहिये। इससे मृदा क्षरण व

जल के बहाव में काफी कमी आती हैं। संरक्षित व उचित जुताई द्वारा मृदा व नमी के ह्रास में कमी आती है व उर्जा का अपव्यय भी कम हो जाता है।

पट्टीदार सस्यन

पट्टीदार सस्यन (Strip cropping) भूमि एवं जल संरक्षण के दृष्किोण से मरुक्षेत्र में बहुत ही उपयोगी है। इसमें विभिन्न बढ़वार व स्वभाव वाली फसलों की निष्चित कतारों की पट्टियां एकांतर क्रम में खेत में बोयी जाती है। अनुसंधान के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि यदि तिल की चार कतारों के साथ मोठ की 6 कतारों की पट्टियां एकांतर क्रम में बोयी जायें तो अधिकतम लाभ मिल सकता है। इसी प्रकार सेवण घास के साथ खरीफ में दलहनी फसलों (मूंग, मोठ, ग्वार) के पट्टीदार सस्यन से वायु द्वारा मृदा क्षरण को रोकने के साथ–साथ प्रति इकाई क्षेत्र से उपज भी अधिकतम प्राप्त होती है। इस प्रकार मरु क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के सस्यन से अधिकतम उपज एवं लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जल संरक्षण की ऊपर दी गई विधियों के सफल प्रयोग से खरीफ की फसलों की अच्छी उपज के साथ–साथ रबी की फसलों की बुआई के लिए भी नमी मृदा में संरक्षित रहती है।

सतही पलवार

शुष्क क्षेत्रों में उच्च तापमान के द्वारा तीव्र वाष्पीकरण होता है जिससे मृदा में व्याप्त नमी का तेजी से ह्रास होता है व पौधे नमी के अभाव में सूखने लगते है। अतः संचित नमी को बचाये रखने के लिये खेत से निकाले गये खरपतवार व अन्य घास–फूस से सतह पर की गई पलवार मृदा के वातीय व जलीय क्षरण तथा मृदा नमी को बचाने में काफी सहायक होती है। सतही पलवार से भूमि के तापमान में कमी आती है फलस्वरुप जल वाष्पन कम हो जाता है। सतही पलवार के रुप में उपलब्धता के आधार पर फसलों के अवशिष्ट अंश, पत्तियां, सूखी घासें, लकड़ी का बुरादा या पालिथीन की चादरें काम में ली जा सकती हैं। लगभग 6 टन प्रति हैक्टर की दर से घास की पलवार लगाने से फसलों की उत्पादकता दुगनी की जा सकती है।

टिब्बा स्थिरीकरण

थार मरूस्थल में रेतीले टिब्बे बहुतायत में पाये जाते हैं। गर्मी के मौसम में तेज हवाओं के चलने के साथ इन टिब्बों की रेत उडकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुंच जाती है। यह रेत कृषि योग्य भूमि मकान सडकों आदि के लिये गम्भीर खतरा पैदा कर सकती है। इसलिये इन टिब्बों का स्थिरीकरण बहुत आवश्यक है। टिब्बों का स्थिरीकरण इन पर स्थानीय वनस्पति लगाकर किया जा सकता है। टिब्बों पर वनस्पति को पशुओं से सुरक्षित रखने के लिये टिब्बों के चारों ओर बाड लगा देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त टिब्बो की ओर वायु के आने की दिशा में 5 मीटर गुणा 5 मीटर में शतरंज की विसात के

आकार में सूक्ष्म वायु अवरोध स्थापित कर देने चाहिये। सूक्ष्म वायु अवरोधों को स्थापित कर देने के लिये घासों में सेवन व अंजन धामन झाडियों में कैर, फोग, बोर्डी व आक व पेडों में बबूल, कुमठ, विलायती बबूल व इजरायली बबूल लगा देने चाहिये।

वायु अवरोधक रक्षक पट्टियाँ

वायु अवरोधक रक्षक पट्टियॉ वास्तव में रोपित पेडों और झाडियों के सजीव अवरोध होते हैं। ये वायु के वेग, वाष्पीकरण और मृदा क्षरण को रोकने में सहायक होते हैं। रक्षक पट्टियों को वायु की सामान्य दिशा के लम्बवत् पंक्तिबद्ध लगाना चाहिए। वर्ष में यदि वायु एक से अधिक सामान्य दिशा से बहती हो तो एक से अधिक रक्षक पट्टियों का रोपण करना चाहिए। रक्षक पट्टियों से अधिकतम सुरक्षा तब मिलती है जब वायु के बहने की दिशा इनके ठीक लम्बवत् हो। रक्षक पट्टियों की चौडाई 3 से 5 पंक्तियाँ या अधिक हो सकती है। रक्षक पट्टियाँ जितनी अधिक ऊची होगीं उतनी अधिक दूरी तक वायु के वेग से रक्षा होगी। प्रायः वायु बहने की दिशा में 15 से 20 गुणा अवरोध की ऊँचाई के बराबर तक व वायु आने की दिशा में 5 गुणा पट्टी की ऊँचाई के बराबर की दूरी तक वायु के वेग को कम करती है। 5 पंक्तियाँ वाली रक्षक पट्टी के लिए मध्य पंक्ति के लिए बबूल, सिरस, नीम, शीशम व खेजडी के पेड लगाये जा सकते हैं। मध्य पंक्ति के दोनों ओर वाली पंक्तियों में कुमठ, विलायती बबूल व इजरायली बबूल लगा देने चाहिये। बाहरी पंक्तियों में कैर, फोग, बोर्डी की झाडियाँ लगायी जा सकती हैं।

नाड़ी

नाड़ी इस क्षेत्र में जल दोहन व संग्रहण की एक प्राचीन पद्धती है। नाड़ी में इकठ्ठा किया गया जल पशुओं एवं मानव के पीने के उपयोग में लाया जाता है। अभी भी ज्यादातर ग्रामीण हिस्सों में पीने के पानी के लिए इन्हीं ढांचों का प्रयोग किया जाता है। नाड़ियों को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों में उच्च वाष्पीकरण दर एवं रिसाव से हानि, उच्च अवसाद जमाव दर एवं जल का दुरुपयोग है। इस समस्या के निराकरण हेतु संस्थान ने उन्नत नाड़ी के प्रारूप का विकास किया है। इसमें जल अधिग्रहण क्षेत्रा मे पेड़ पौधे लगाना एवं अवसाद को बहाव क्षेत्र से पहले ही रोकना है। इसके अतिरिक्त नाड़ी में एल डी पी ई की परत लगा कर जल रिसाव को भी कम किया जा सकता है। प्रदूषण रोकने हेतु नाड़ी क्षेत्र में पशुओं एवं मानवों के आवागमन पर अंकुश लगाया जा सकता है। वाष्पीकरण को कम करने के लिए छायादार वृक्षों का स्थापन काफी प्रभावशाली होता है।

खड़ीन

ऊपरी सतह एवं चट्टानी तल से वर्षा जल बहाव के साथ–साथ चिकनी मिट्टी निचली सतहों पर इकठ्ठी हो जाती है। ऐसे स्थानों पर खेत की निकासी की तरफ मिट्टी के बाँध उचित अधिप्लवन मार्ग

(Surpassing arrangement) के साथ यदि बनाये जाए तो इन स्थानों को उपजाऊ खेतों में बदला जा सकता है। इन्हें प्रादेशिक भाषा में खड़ीन कहा जाता है। इस प्रकार की जल दोहन तकनीक एवं भू–उपयोग जैसलमेर जिले में व्यापक है। वर्षा कम होने की स्थिति में जल अधिग्रहण क्षेत्र एवं सिंचित क्षेत्र का अनुपात अधिक हो जाता है।

रेतीले खेतों में इन सभी कृषि तकनीकों को अपना कर अच्छी पैदावार ली जा सकती हैं। इन तकनीकों को भूमि विशेष के अनुसार एकीकृत रुप से या अलग अलग रुप में अपनाकर शुष्क क्षेत्रों में मृदा व जल संरक्षण किया जा सकता है व फसलों की उत्पादकता में दीर्धकालिक स्थायित्व प्राप्त किया जा सकता है।

टांका

टांका एक प्रकार का छोटा ऊपर से ढका हुआ भूमिगत खड्डा होता है इसका प्रयोग मुख्यतः पेयजल के लिये वर्षाजल संग्रहण हेतु किया जाता है। टांका आवश्यकता व उद्देश्य विशेष के अनुसार कहीं पर भी बनाया जा सकता है। परम्परागत तौर पर निजी टांके प्रायः घर के आंगन या चबूतरों में बनाये जाते हैं, जबकि सामुदायिक टांकों का निर्माण पंचायत भूमि में किया जाता है। चूंकि टांके वर्षा–जल संग्रहण के लिये बनाये जाते है इसलिए इनका निर्माण आंगन/चबूतरे या भूमि के प्राकृतिक ढाल की ओर सबसे निचले स्थान में किया जाता है। परम्परागत रुप से टांके का आकार चौकोर, गोल या आयताकार भी हो सकता है। जिस स्थान का वर्षा–जल टांके में एकत्रित किया जाता है उसे पायतान या आगोर कहते है और उसे वर्ष भर साफ रखा जाता है। संग्रहित पानी के रिसाव को रोकने के लिये टांके के अन्दर चिनाई की जाती है। आगोर से बहकर पानी सुराखों से होता हुआ टांके में प्रवेश करता है। सुराख के मुहानों पर जाली लगी होती हैं ताकि कचरा एवं वृक्षों की पत्तियां टांके के अन्दर प्रवेश न कर सके। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी), जोधपुर ने पिछले दो–तीन दशकों में शोध द्वारा टांके के परम्परागत स्वरुप को बहुउद्देश्यीय, उन्नत व परिष्कृत किया है।

उन्नत टांका : संरचना एवं निर्माण

टांके या कुण्ड के निर्माण के लिये ऐसे स्थान का चुनाव करना चाहिये जहाँ वर्षा जल स्वतः इकठ्ठा होता हो व संग्रहण के लिये प्राकृतिक रुप में पर्याप्त आगोर या पायतान मिल सके। साफ, कठोर व एक समान ढाल वाले आगोर से कम जगह में ज्यादा वर्षा जल संग्रहित किया जा सकता है। परम्परागत चौकोर या आयाताकार टांकों के स्थान पर गोल, बेलनाकार टांके अधिक मजबूत होते हैं व समान क्षमता के लिये कम निर्माण सामग्री की आवश्यकता होती है। परिवार के सदस्यों की संख्या, पशुधन व विशिष्ट जल उपयोग जैसे पौधशाला, घरेलू बागवानी इत्यादि के आधार पर टांके की क्षमता का निर्धारण किया जाता है।

जलशास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार टांके में वर्षाजल संग्रहण स्थानीय वर्षामान, आगोर का क्षेत्रफल व आकार, आगोर की प्रकृति आदि पर निर्भर करता है। निजी या सार्वजनिक टांके की जल संग्रहण क्षमता का निर्धारण निम्न सूत्र द्वारा किया जा सकता है।

आवश्यकता (लीटर) = (परिवार के सदस्य X 2555) + (पशुधन X 9125) + (पौधों की सख्या X 120)

टांका क्षमता (लीटर) = आवश्यकता X 1.10

उपरोक्त सूत्र में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन का जल खर्च पीने व खाना बनाने की आवश्यकतानुसार 7 लीटर लिया गया है। पशुओं के लिये औसतन 25 लीटर पानी प्रति पशु प्रतिदिन के हिसाब से वार्षिक गणना की गई है। पौधों के लिये सामान्यता वर्षा ऋतु का समय छोड़ कर शेष समय के लिये जीवन रक्षक सिंचाई के आधार पर क्षमता का निर्धारण किया गया है।

टांके की क्षमता का निर्धारण करने के बाद टांके की गहराई व गोलाई (व्यास) का निर्धारण किया जाता है । सामान्यतः टांके 3 से 5 मीटर गहरे बनाये जाते हैं जो जमीन के अन्दर की मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर करते हैं। अधिक कठोर मिट्टी या मुड़ में ज्यादा गहराई के साथ खुदाई की लागत बढ़ जाती है व मजबूती प्रदान करने के लिये अधिक निर्माण सामग्री की आवश्यकता होती है। एक बार गहराई का निर्धारण करने के बाद टांके की गोलाई (व्यास) निम्न सूत्र द्वारा निकाली जा सकती है।

$$\text{गोलाई (मीटर)} = \sqrt{\text{क्षमता (लीटर)} \ \text{x} \ 78.7 \ \text{x} \ \text{गहराई (मीटर)}}$$

निर्माण कार्य में चूने के स्थान पर सीमेन्ट का प्रयोग करने से टांके की आयु बढ़ जाती है। पचास हजार लीटर तक क्षमता वाले टांको के निर्माण में 1.25 से 1.5 फीट मोटी सीमेन्ट पत्थर की दीवार व 1 फुट मोटा सीमेन्ट कंकरीट का तला पर्याप्त मजबूती प्रदान कर सकता है। उन्नत टांकों में वर्षाजल के आगमन व अतिरिक्त पानी के निकास के लिये आवक व जावक का प्रावधान होता है। आवक स्थान पर बहाव के साथ आई मिट्टी को रोकने के लिये एक छोटी कुण्डी (सिल्ट ट्रेप) बनाई जाती है। आवक जावक स्थान पर छोटे अंवाछित जानवरों के टांके में प्रवेश पर रोक के लिये उचित आकार की लोहे की जाली लगाई जाती है। आगोर से वर्षाजल को सीधे टांके की बाहरी दीवारों में रिसने से रोकने के लिये टांके के चारों ओर 2 से 2.5 फीट चौडी सीमेन्ट कंकरीट की एक कालर बनाई जाती है। रेगिस्तान की औसत वर्षामान व सामान्य आगोर प्रकृति के अनुसार 50000 लीटर क्षमता के टांके के भरण के लिये 0.5 से 0.6 बीघा आगोर पर्याप्त होता है। टांके के आगोर को साफ, एक समान ढलान वाला व कठोर करके वर्षाजल के बहाव को बढाया जा सकता है। पक्के मकानों या हवेलियों के निकट बने टांको में भू–स्थित आगोर के साथ–साथ छतों का पानी भी पाइपों के द्वारा टांके में डाला जा सकता है। भू–स्थित आगोर की तुलना में

पक्की छतों से वर्षा जल का ज्यादा बहाव होता है व संग्रहित पानी में अशुद्धियां भी कम होती है। अतः अनुकूल परिस्थितियों में टांका निर्माण करते समय वर्षाजल संग्रहण के लिये छतों से वर्षाजल इकट्ठा करने का भी प्रावधान रखना चाहिए। उन्नत टांकों में संग्रहित जल की निकासी के लिये पारम्परिक रस्सी, बाल्टी के स्थान पर हैण्डपम्प लगाया जा सकता है। इससे न केवल जल की बचत होती है अपितु यह जल निकालने का एक सुरक्षित तरीका भी है। एक उन्नत व बहुउद्देश्यीय टांका बनाने पर लगभग 1 से 1.5 रूपये प्रतिलीटर खर्चा आता है जिसमे संग्रहित जल का उपयोग घरेलू आवश्यकता के बाद आर्थिक रुप से लाभदायक पेड़, पौधों व पौधशाला इत्यादि में भी किया जा सकता है। ठीक प्रकार से बनाये टांको की यदि नियमित देखभाल की जाये तो ये कई पीढियों की प्यास बुझाने के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण व अतिरिक्त आय का स्त्रोत बन सकते हैं। बढ़ती आबादी, कृषि योग्य भूमि पर आश्रितों की संख्या में वृद्धि, प्राकृतिक जल संसाधनों का अत्यधिक दोहन व निरन्तर गिरते भू जल स्तर के कारण मरूस्थल वासियों को वर्षा जल के परम्परागत स्रोतों को अपनाना व उन्नत करना होगा। नये स्त्रोतो के साथ–साथ इनका भी उचित प्रयोग करना होगा।

आगोर से अधिक वर्षाजल संग्रहण की तकनीकें

आगोर को अधिक वर्षाजल संग्रहण के लिए एक सीमा तक ठीक भी किया जा सकता है। हांलाकि ये उपाय उपलब्ध निवेश और वर्षाजल के अपेक्षित उपयोग पर निर्भर करते है। ऐसे क्षेत्र जहां पानी का कोई अन्य वैकल्पिक स्रोत न हो वहाँ लंबे समय के आधार पर उच्च प्रारंभिक निवेश पर उचित है।

- समतल व कठोर आगोर अधिक वर्षाजल अपवाह में मदद करता है। तकनीक की सफलता दोमट मिट्टी पर आम तौर पर अधिक होती है।
- रेगिस्तान मिट्टी में जहां वनस्पति न हो वहॉ थोडी मात्रा में सोडियम लवणों के छिडकाव से वर्षाजल अपवाह को बढाया जा सकता है ।
- पत्थर व अनुत्पादक वनस्पति जल के निर्बाध प्रवाह में बाधा करते है अतः पत्थर व अनुत्पादक वनस्पति को आगोर से निकाल कर ना वर्षाजल अपवाह बढ़ाया जा सकता है।
- रासायनिक उपचार जेसै मोम, डामर, कोलतार, सीमेन्ट आदि का प्रयोग करके भी आगोर से वर्षाजल अपवाह बढ़ाया जा सकता है।
- रेतीली मिट्टीओं की जल धारण क्षमता कम होती है अतः इन मिट्टीओं में तालाब की काली मिट्टी की एक परत लगा देने से वर्षाजल अपवाह बढ़ाया जा सकता है।

निर्मित टांका : देखभाल

- साल में कम से कम एक बार टांके की सम्पूर्ण सफाई। यदि उसमें कोई दरार आदि नजर आये तो सीमेन्ट द्वारा उसका उपचार।
- वर्षा पूर्व आगोर की सम्पूर्ण सफाई, एक समान ढाल व उसे दबाकर कठोर बनाना। आर्थिक क्षमता के अनुसार आगोर को सीमेन्ट कंकरीट द्वारा पक्का भी बनाया जा सकता है।
- आवक व जावक स्थान पर लगी जालियों की नियमित सफाई व जंग से बचाव के लिये रंग रोगन आदि।
- पानी में बदबू व जीवाणु आदि से बचाव के लिये वर्ष में एकबार लाल दवा व फिटकरी का प्रयोग।
- टांके के तले को टूटने/फटने से बचाने के लिये टांके में कुछ पानी हमेशा रखे।

"जलतृप्ति" –रेगिस्तान में पेड़ पौधे लगाने के लिए एक दोहरी दीवार वाला मिट्टी का गमला

एन. डी. यादव

भ.कृ.अनु.प.– के.शु.क्षे.अ.स., क्षेत्रीय अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर

भारतवर्ष का दो तिहाई भाग मरुस्थलीय समस्याओं से जुझ रहा है। इन क्षेत्रों मे पौधारोपण का कम होना यहाँ पर पानी की कमी का होना है। बलुई मिटटी होने के कारण पानी का ह्रास निश्छालन द्वारा बहुत होता है। पौधारोपण के पश्चात् प्रथम वर्ष पौधों के सुस्थापन हेतु बहुत नाजुक समय होता है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र बीकानेर ने पौधों को लगाने हेतु एक नई तकनीक विकसित की है जिसको 'जलतृप्ति' कहा गया है।

पश्चिमी राजस्थान में वृक्षारोपण के लिए पानी की कमी एक बड़ी समस्या है। टिब्बों की बहुत ऊँचाई पर सिंचाई के लिए बार–बार पानी की आपूर्ति, जल परिवहन में कठिनाई होती है। जलतृप्ति के माध्यम से सीमित पानी के साथ रोपण के लिए 90% से अधिक पानी की बचत एक लंबे सिंचाई अंतराल (15 से अधिक) के साथ प्राप्त की जा सकती है जो शुष्क क्षेत्र में वनीकरण के लिए एक वरदान होगा।

संरचना : यह दोहरी दीवार वाली मिट्टी के बर्तन (बेक्ड) है जिसमें दो अलग–अलग आकार के 12 से.मी. और 8 से.मी. चौड़े मिट्टी के बर्तन दीवार से दीवार प्रणाली के साथ एक दूसरे से जुड़े होते हैं। वृक्षों की जड़ों को पृथ्वी के नीचे से गुजरने के लिए 8 से.मी. छेद की चौड़ाई के साथ ऊंचाई 30 से.मी. है। गमले की दो दीवार के बीच में पानी भरा होता है और आंतरिक गमले (8 से.मी.) में पौधे को पर्याप्त मिट्टी के साथ लगाया जाता है।

डिवाइस का निर्माण : इस उपकरण में एक दोहरी दीवार वाले मिट्टी के बर्तन होते हैं, जिन्हें 'जलतृप्ति' नाम दिया गया है।

- बर्तन का बाहरी व्यास शीर्ष पर 25 से.मी. और आधार पर 18 से.मी. है।
- शीर्ष पर और आधार पर आंतरिक गमले का व्यास 15 और 12 से.मी. और ऊंचाई 30 से.मी. रखी जाती है।
- आंतरिक गमले को पॉलीथिन बैग के आकार से थोड़ा बड़ा रखा जाता है।
- दोनों बर्तनों को बेस पर आंतरिक बर्तन के खुले बेसल हिस्से के साथ जोड़ा जाता है।
- बाहरी बर्तन के बाहरी हिस्से को पेंट, सीमेंट या कोलतार की मदद से अभेद्य बनाया जाता है।

कार्य प्रणाली : डिवाइस द्वारा अवशोषित/वाष्पित किए गए पानी से मिट्टी में पानी की कमी हो जाती है जिसकी भरपाई खेत की मिट्टी में नमी बनाए रखने के लिए मिट्टी की दीवार से गुजरने वाले पानी से होती है। पानी की आवक तब रुक जाती है जब आंतरिक मिट्टी क्षेत्र की क्षमता या संतुलन में आ जाती है। इस प्रकार पानी बर्तन की बाहरी सतह के रंग के कारण छिद्र के माध्यम से किसी भी नुकसान के बिना पौधे की जड़ों के लिए आवश्यक होने पर चलता है। इस प्रकार ग्रीष्मकाल में 8–10 दिन और सर्दियों में 15 दिन तक 3 लीटर पानी पर्याप्त होता है।

गांव में ही कुम्हार की मदद से जलतृप्ति को ग्राम स्तर पर बनाया जा सकता है। निर्माण के लिए किसी विशेष बुनियादी ढांचे की आवश्यकता नहीं है। गढ़े, बेक्ड और चित्रित डिवाइस की कीमत लगभग रु 25/– प्रति यूनिट/हेक्टेयर आवश्यक उपकरण की कुल संख्या वृक्षारोपण की दूरी पर निर्भर करेगी।

डिवाइस की अनुमानित लागत लगभग रु 25 प्रति डिवाइस है। एक हेक्टेयर क्षेत्र में 10.8 मीटर दूरी (125 पौधे प्रति हेक्टेयर) के रोपण के लिए कुल डिवाइस की लागत रू 3125 होगी। उपकरण पेड़ों की पूरी तरह से स्थापना तक खेत में तीन साल से अधिक समय तक काम करता है।

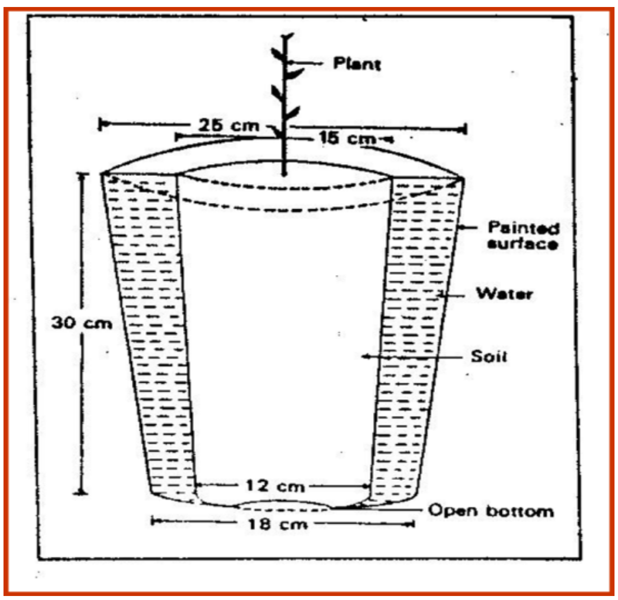

चित्र : जलतृप्ति की संरचना

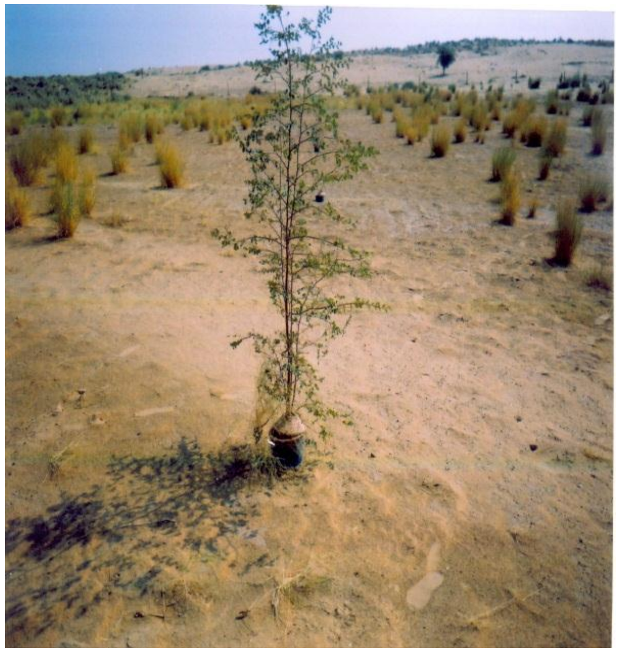

चित्र : जलतृप्ति में लगा बेर का पौधा

लाभ :

• पानी की बचत और ड्रिप और स्प्रिंकलर सिस्टम की तुलना में इसमें अधिक पानी की बचत होती है।

• कम सिंचाई आवृत्ति, श्रम की बचत, चेकों की कटाई, रिसना और वाष्पीकरण।

• नमी की आपूर्ति को नियंत्रित करता है। नमी हमेशा क्षेत्र क्षमता के पास उपलब्ध होती है और सामग्री स्वदेशी रूप से उपलब्ध होती है।

• यह प्रत्यारोपण के झटके को कम करता है और जिबित संख्या 100 प्रतिशत है।

• पौधों को सीटू में उठाया जा सकता है, इस तरह से पॉलीथिन जैसी अविकसित सामग्री के उपयोग से बचा जा सकता है और पौधों की वृद्धि तेज होती है।

• उर्वरकों, कीटनाशकों, कीटनाशकों, संशोधन, आदि की मात्रा कम हो जाती है, रेत के टीलों के स्थिरीकरण करने एवं खरपतवार का उगना कम हो जाता है।

• मिट्टी जो अत्यधिक जल–लॉग, खारा, क्षारीय या बजरी में शीर्ष 0–30 सेमी में हैं, में भी पौधे लगाये जा सकते हैं और ग्रामीण रोजगार में वृद्धि कर होती हैं।

इस प्रकार जलत्तृप्ति का प्रयोग करके दुर्गम स्थानों में भी पौध रोपण कर सकते है। पश्चिमी राजस्थान के टिब्बों, चारागाह, बन क्षेत्रों एवं परती जमीनों पैर पौधरोपण करके उनको उपजाऊ बना सकते है।

शुष्क क्षेत्रों के चरागाह में घास और चारा दलहनों की स्थापना

राम नारायण कुमावत

भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

भारत में कुल भौगोलिक क्षेत्र का 9 प्रतिशत (3.17 करोड़ हेक्टेयर) शुष्क क्षेत्र है। इस शुष्क क्षेत्र का सबसे अधिक भाग (62 प्रतिशत) अकेले राजस्थान राज्य में है। राजस्थान में शुष्क क्षेत्र राज्य के पश्चिमी क्षेत्र के 12 जिलों में फैला हुआ है। राज्य का यह क्षेत्र अपनी विषम परिस्थितियों के लिए दुसरे क्षेत्रों से विचित्र है। राजस्थान में पशुधन पश्चिमी राजस्थान की अर्थव्यवस्था का आधार है। पशुपालन आधारित खेती यहाँ का मुख्य व्यवसाय है। राजस्थान के इस शुष्क क्षेत्र में पशुओं की संख्या 1956 में 1.34 करोड़ से बढकर 2012 में 3.06 करोड़ हो गई है। प्रत्येक वर्ष लगभग 2.2 करोड़ टन सुखे चारे एंव 4.2 करोड़ टन हरे चारे की आवश्यकता है, जबकि वर्तमान में सूखे चारे का 64 प्रतिशत एंव हरे चारे का लगभग 20 प्रतिशत भाग ही उपलब्ध है। इन परिस्थितियों में पशुपालन में स्थायित्व इस शुष्क क्षेत्र में मौजूद विशाल सामुदायिक भु–भाग पर चरागाह विकास द्वारा की जा सकती है। चरागाह की स्थापना व विकास के लिए वैज्ञानिक पहलु के साथ–साथ सामाजिक एंव राजनैतिक पक्षों का भी ध्यान रखना जरूरी है। चरागाह के लाभों से ग्रामीणों का अवगत होना आवश्यक है। पंचायतों एंव अन्य स्थानिय संस्थाओं की भी महत्वपूर्ण भागीदारी की आवश्यकता है। इस कार्य से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े सभी लोगों को यह जानना जरूरी है कि विकसित चराई भूमि का संबंध क्षेत्र की आर्थिक प्रगति से है। चराई भूमि में चरागाह स्थापना एक महत्वपूर्ण क्रिया है। चरागाह विकास की स्थापना, विकास एंव प्रबंधन के लिए आवश्यक जानकारी निम्न प्रकार है।

चरागाह सुरक्षा

पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में प्राय पशुओं को बिना नियंत्रण के खुले में चराया जाता है जिससे चरागाह की उत्पादकता पर बुरा प्रभाव पडता है। साथ ही साथ वनस्पति की कमी के कारण अवांछित चराई एंव कटाई की सभांवना हमेशा बनी रहती है। अतः चरागाह की सुरक्षा करना आवश्यक है। यदि धन की उचित व्यवस्था है तो कांटेदार तारों की बाड़ लगाना चाहिए जो कि लंबे समय तक उपयोगी रहती है। उपयोगिता व रखरखाव के अनुसार तारबंदी सर्वोत्तम है परन्तु प्रारंभिक लागत ज्यादा रहती है। अतः कांटे वाले पेड़ों व झाड़ियों की जैविक बाड़ भी बनायी जा सकती है। तीसरे पर्याय के रूप में चरागाह के चारों ओर खाई एंव मेड़ बनायी जा सकती है। खाई की गहराई 1.25 मीटर, चौड़ाई 1.5 मीटर तथा मेड़ की ऊचांई 1.5 मीटर रखी जा सकती है। खाई की मिट्टी से अन्दर की तरफ मेड़ बनाई जाती है। इस मेड़ पर कांटेदार वृक्ष जैसे की कुम्मट, इजराइली बबूल, देशी बबूल, बावली, केर, फॉग, झरबेरी, थोर इत्यादि

लगाने से मेड़ की एंव खाई की सुरक्षा लंबे समय तक बनी रहती है। एक 10 हैक्टर चरागाह की सुरक्षा खाई व बाड़ तथा तारबंदी से करने पर वर्तमान में एक से पाँच लाख रूपये तक लागत आती है।

घास का चुनाव

पश्चिमी राजस्थान में प्रमुख रूप से चार घास चरागाह के लिए उपयोगी मानी गई है। बलुई मिट्टी तथा 250 मिलीमीटर से कम वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए सेवण घास तथा बलुई दोमट एंव 250 से 500 मिलीमीटर वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए धामन एंव मोड़ा धामन घास उपयुक्त पाई जाती है। दोमट एंव काली मिट्टी तथा 450 मिलीमीटर से अधिक वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए करड (मारवल घास) उपयुक्त होती है। राजस्थान के जैसलमेर, बीकानेर, बाड़मेर तथा जोधपुर के रेतीले क्षेत्रों में सेवण घास से 25–36 क्विंटल घास प्रति हैक्टर मिल जाती है। अच्छी जल निकास वाली मिट्टी एंव 300–400 मिलीमीटर वार्षिक वर्षा वाले पाली, जोधपुर, नागौर, जालोर जिलों में धामण एंव मोड़ा धामण से 20–30 क्विंटल चारा प्रति हैक्टर मिल सकता है। भारी मिट्टी तथा 400–500 मिलीमीटर वार्षिक वर्षा वाले जिलों में मारवल घास से 50–60 क्विंटल चारा प्रति हैक्टर मिल सकता है।

उन्नत किस्में

घास प्रजाति	किस्में
धामन	काजरी 358, काजरी 75, बुन्देल अंजन, काजरी अंजन 2178
मोड़ा धामन	काजरी 76, काजरी 296
सेवण	काजरी 30–5, काजरी सेवण –1
करड़	मारवल 8

खेत की तैयारी

बहुवर्षीय घासें एक बार लगाने पर लगभग 10 वर्षों तक चारा देती रहती है अतः जिस भी खेत का चुनाव किया जाए, पहले उस खेत से बेकार झाडियाँ यथा मोराली, हिंगोटा, रूंझ, जिंजनी, बुई, आक आदि को खोदकर जड़ सहित निकाल देना चाहिए। साथ ही बहुवर्षीय खरपतवारों को भी जमीन से खोदकर निकाल देना चाहिए, अन्यथा बीजों का अंकुरण प्रभावित होगा व पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में प्रतिस्पर्धा के कारण उनकी बढ़वार पर असर पड़ेगा। सामान्य फसलों की तरह एक–दो जुताई करके खेत को अच्छी तरह तैयार करके अंतिम जुताई के समय पाटा चलाना चाहिए। चरागाह भूमि में लाभदायक झाड़ियाँ व पेड़ों यथा झरबेरी, खेजड़ी, रोहिड़ा आदि का आच्छादन कुल क्षेत्र के 14 प्रतिशत से ज्यादा नही होना चाहिए। खेत की

तैयारी ग्रीष्मकालीन मानसून की वर्षा से पहले यानि जून महीने में पूर्ण कर लेनी चाहिए। खाद का प्रयोग भी जुताई के समय करना उचित रहता है। समतल व तैयार खेत में बुआई करने से बीजों को वांछित गहराई व दूरी पर बोया जाना चाहिए। तैयार खेत में उचित नमी की दशा में बुआई करने पर चरागाह की स्थापना अच्छी होती है।

बुआई का समय

बीजों के उचित अंकुरण के लिए जुलाई का महीना उत्तम है। बुआई प्रायः मानसून की प्रथम प्रभावी वर्षा के बाद की जाती है। बीजों का पर्याप्त अंकुरण बुआई बाद होने वाली वर्षा पर निर्भर करता है। वर्षा जितनी जल्दी होती है उतनी ही लाभदायक होती है अर्थात बुआई या तो मानसून आने के एक दो दिन पहले की जानी चाहिए या मानसून आने के तुरन्त बाद करनी चाहिए जिससे उपयुक्त नमी मिलने पर अधिकतम बीजों का अंकुरण हो जाए। जहाँ सिंचाई की सुविधा है वहाँ घास की जडों की रोपाई सर्दी के मौसम को छोड़कर कभी भी की जा सकती है। प्रायः बहुवर्षीय घासों के बीजों का अंकुरण एक महीने तक होता रहता है। पच्चास प्रतिशत अंकुरण लगभग 7 दिनों के अन्दर हो जाता है। खेत में 72 घंटे में अंकुरण शुरू हो जाता है। अगर वर्षा कम होती है या एक वर्षा के बाद वर्षा नहीं होती है तो बीज अंकुरित नही होते। कुछ बीज सुशुप्त हो जाते है व जब भी भूमि में पर्याप्त नमी उपलब्ध होती है, अंकुरण हो जाता है। शुष्क क्षेत्रों की बहुवर्षीय घासों में औसतन 30 प्रतिशत अंकुरण होता है।

बीज की मात्रा एंव फसल विन्यास

चरागाह स्थापना हेतु पर्याप्त बीज की आवश्यकता होती है। कम व ज्यादा बीज दोनों स्थितियों में चरागाह की स्थापना पर प्रतिकूल असर पड़ता है। चरागाह विकसित करने के लिए सामान्य वर्षा की दशा में बीज कम मात्रा में तथा वर्षा सामान्य से कम होने की स्थिति में बीज अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाए तो चरागाह विकसित होने में कम समय लगेगा। सामान्यतया चरागाह घासों में पौधे से पौधे की दूरी 50 से.मी. तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी 75 से.मी. रखते है। विभिन्न घासों के लिए सिफारिश की गई बीज की मात्रा नीचे दी गयी हैः

घास प्रजाति	बीज दर प्रति हेक्टर	फसल विन्यास
धामन	5–6 किलो	50 X 75 से.मी.
मोड़ा धामन	5–6 किलो	50 X 75 से.मी.
सेवण	6–7 किलो	75 X 75 से.मी.
करड़	2–3 किलो	50 X 75 से.मी.

बुआई

जहाँ तक हो सके घास के बीजों की बुआई लाइनों में करें। बुआई के दिन घास के बीजों को 4–5 गुणा गीली मिट्टी में अच्छी तरह मिला लें। मिट्टी मिले बीजों को लाइनों में डालकर बुआई करें। देशी हल या ट्रेक्टर से लाइने बनाकर हाथ से मिट्टी मिले बीजों की बुआई करें तथा हल के पीछे किसी झाड़ की टहनी बाँध देवें जिससे बीजों पर 1–2 सेमी मिट्टी की परत चढ़ जाए। शुष्क क्षेत्रों में जहाँ वर्षा कम होती है पहली वर्षा का पूरा फायदा उठाना चाहिए। ऐसे क्षेत्रों में जहाँ जुताई करना संभव न हो वहाँ चरागाह स्थापित करने के लिए घास के बीजों की गोलीयां बनाकर बुआई की जानी चाहिए। घास के बीजों की तैयार गोलियों को वर्षा पूर्व भी लाइनों में बोया जा सकता है। सामान्यतया चरागाह की स्थापना के लिए घास के बीज की बुआई करते है लेकिन छोटे क्षेत्रफल या परिस्थितियां विपरीत हो तो चरागाह की स्थापना पौध द्वारा या पुराने पौधों की जड़ों की रोपाई से भी कर सकते है। पौध रोपाई के समय लगभग ड़ेढ महीना अवधि की होनी चाहिए। चरागाह लगाने के लिए तैयार खेत में वर्षा वाले दिन पुराने पौधे के 2–3 जड़ वाले घास के कल्ले बुआई के काम में प्रयोग किए जा सकते है। लवणीय भूमि में चरागाह स्थापित करने के लिए पौध या जड़ें ज्यादा कारगर होती है। ढलान वाली जमीन में भूमि व जल संरक्षण के उपाय जैसे कंटूर नालियाँ बनाकर घास के बीजों की बुआई करें। ये नालियाँ 8–10 मीटर की दूरी पर 60 सेमी चौड़ी और 30 सेमी गहरी बनाए। कंटूर नालियाँ हमेशा ढाल के विपरीत बनायें ताकि हवा व पानी द्वारा होने वाले भूमि कटाव को कम या रोका जा सके।

खाद एंव उर्वरक

चरागाह से चारे के अधिक उत्पादन के लिए खाद एंव उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए। खेत तैयार करते समय बुआई से पूर्व 5–10 टन अच्छी सडी हुई गोबर की खाद खेत में मिलाएं। बुआई के समय 20 किलोग्राम नत्रजन एंव 20 किलोग्राम फास्फोरस प्रति हैक्टर प्रयोग करें तथा 20–25 दिन बाद वर्षा होने पर 20 किलोग्राम नत्रजन का छिड़काव करें जिससे घास की गुणवत्ता बढ़ जाएगी।

चरागाह की देखभाल एंव उपयोग

चरागाह की उत्पादकता बढ़ाने के लिए क्षेत्र में ऐसी व्यवस्था करें की जल का संचय अधिक से अधिक हो। चरागाह में पहले वर्ष चराई न करें व चारा काट कर पशुओं को खिलाएँ। यह कटाई 50 प्रतिशत फूल आने पर करें। यह क्रम तब तक जारी रखें जब तक कि उचित मात्रा में चारा मिलता रहे। चरागाह लगाने के 2 वर्ष बाद पशुओं की चराई करायें तथा आवारा पशुओं से चरागाह को बचाएं। पहले 1–2 वर्ष चरागाह में घास की कटाई करने से घास के बूटे बन जाते है ताकि फिर चराई करने से घास के बूटे जानवर के पैरों से उखड़ने का डर नही रहता है। चरागाह में समय समय पर निराई–गुडाई करते रहे तथा कम उपयोगी

झाडियों व पड़ों आदि को न आने दें। झाडियों व पेड़ों को भी चरागाह के कुल 14 प्रतिशत क्षेत्रफल से ज्यादा न उगने दे क्योंकि ज्यादा झाड़ियाँ होने से घास की गुणवत्ता व उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। उन्नत तकनीकी से स्थापित चरागाह से अच्छी वर्षा वाले साल में तीन कटाईयाँ ली जा सकती है और औसत वर्षा वाले साल में केवल एक कटाई लेनी चाहिए। साधारणतया एक कटाई से दूसरी कटाई के बीच 30–40 दिन का समय होता है। कम वर्षा वाले वर्ष में जब कोई भी फसल चारे के लिए उपलब्ध नहीं होती तब सेवण या धामन के स्थापित चरागाह से तीन सप्ताह में आर्थिक उपज ली जा सकती है। इन घासों में कोई भी पौषण बाधक तत्व न होने के कारण कभी भी चारे को काटकर जानवरों को खिलाया जा सकता है। यद्यपि कम पैदावार के कारण घास की कटाई लागत ज्यादा आती है, परन्तु अच्छी तरह से स्थापित व उचित प्रबंधन की दशा में चरागाह से अधिक उपज ली जा सकती है। घास के कटाई जमीन से 10–15 सेमी की ऊँचाई पर की जाती है। कटाई उचित समय तथा ऊँचाई पर नहीं करने से चरागाह के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अगर हरे चारे की पैदावार अधिक हो तो इसका कुछ हिस्सा सुखा लेना चाहिए जो चारे की कमी के समय में पशुओं को खिलाना चाहिए।

पशुओं को चरागाह में चराकर भी इसका उपयोग किया जा सकता है। चरागाह की स्थापना के प्रथम वर्ष चराई की अनुशंसा नही की जाती है। वहन क्षमता, जो कि शुष्क क्षेत्र के अच्छे चरागाहों के लिए 25–30 प्रोढ पशु इकाई प्रति 100 हेक्टर तक वर्ष भर के लिए होती है के अनुसार चराई करानी चाहिए। चराई कम पैदावार वाले चरागाह के लिए कटाई की लागत बचाती है। चराई से पशुओं के खुरों से जमीन खुल जाती है व जमीन में जल शोषण बढता है और चरागाह की उम्र भी बढ जाती है। जानवरों का गोबर जमीन का उपजाऊपन बढाता है। अत्यधिक व अवैध चराई से चरागाह का उत्पादन कम हो जाता है व अवांछित खरपतवार उग जाते है जो कि चरागाह की उत्पादकता को प्रभावित करते है। चरागाह में पशुओं को चराने हेतु तीन प्रकार की चराई पद्धतियाँ लगातार चराई, परिवर्तित चराई तथा स्थगित चराई है। इनमें परिवर्तित तथा स्थगित चरी पद्धतियाँ सबसे उपयुक्त है। इस तरह की चराई से चरागाह को लंबे समय तक पैदावार हेतु टिकाऊ रखा जा सकता है। चरागाह स्थापना के दुसरे साल से जब घास की फुटान 30–35 दिन की हो जाए तो चराई करानी चाहिए तथा दुसरी चराई प्रथम चराई के 35–40 दिन बाद करानी चाहिए। अगर घास सूख भी जाती है तो भी चरागाहों की चराई करवाकर सम्पूर्ण पैदावार का उपयोग किया जा सकता है।

चारा उत्पादन

चरागाह का उत्पादन भूमि की दशा, जलवायु, पौधों की उम्र व प्रबंधन से प्रभावित होता है। घास के चरागाहों से औसतन 20–40 क्विंटल सुखा चारा प्रति वर्ष प्रति हेक्टर लिया जा सकता है। सेवण घास से औसतन 100–120 क्विंटल हरा चारा प्रति हेक्टर प्रति वर्ष प्राप्त हो सकता है जिससे 35–40 क्विंटल सुखा

चारा मिलता है। अच्छे चरागाह से उचित प्रबंधन करने पर 75 से 100 क्विंटल सुखा चारा प्रति हेक्टर प्रति वर्ष प्राप्त किया जा सकता है। उन्नत तकनीकी अपनाकर धामन से 70–140 क्विंटल हरा चारा व 17 से 28 क्विंटल सुखा चारा प्रति हेक्टर प्रति वर्ष लिया जा सकता है। मोड़ा धामन से 50–70 क्विंटल हरा तथा 15 क्विंटल सुखा चारा प्रति हेक्टर प्रति वर्ष लिया जा सकता है। मारवल घास से प्रति हेक्टर 50–60 क्विंटल सुखा चारा प्रति वर्ष प्राप्त हो सकता है। चरागाह से उपरोक्त चारा 2–3 कटाई में जुलाई से अक्तूबर माह तक प्राप्त हो सकता है।

घास एंव दलहन चारा मिश्रण

पशुओं को वर्षभर पौष्टिक एंव उत्तम एंव गुणवत्तायुक्त चारा मिलता रहे इसके लिए जहाँ बहुवर्षीय घासों का चरागाह लगाया जा रहा है उस खेत में घास के साथ बहुवर्षीय दलहन चारा जैसे कि तितली मटर (क्लीटोरिया टरनेसिया) लगाये। पश्चिमी राजस्थान के चरागाहों में मौसमी दलहन यथा बेकर तथा बहुवर्षीय दलहन झील को भी घासों के साथ उगाया जा सकता है। एकवर्षीय दलहनों को घास के साथ न उगाकर अलग पट्टी में उगाना चाहिए। इसके लिए घास की 5 मीटर चौडी पट्टी के बाद सेम या चवंला दलहनों को 5 मीटर चौड़ी पट्टी में उगाने से अधिक लाभ मिलता है। ये दलहनी पौधे जहाँ भूमि की उर्वरता बढ़ाते है वहीं चरागाह में चारे की पैदावार में भी 25–30 प्रतिशत बढ़ोतरी करते है।

शुष्क क्षेत्रों में कृषि वानिकी सम्बंधित समन्वित कृषि प्रणालियाँ

एस. पी. एस. तँवर

भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

शुष्क कृषि की उपयोगिता इससे प्रमाणित होती है कि भारत वर्ष के समस्त सिंचाई स्त्रोतों के दोहन के पश्चात भी पचास प्रतिशत कृषि योग्य भूमि असिंचित ही रहेगी। वर्षा की अल्पता व अनियमितता, उच्च तापमान, तेज हवा की गति, उच्च वाष्पोत्सर्जन, निम्न उर्वरता एवं जल धारण क्षमता इन क्षेत्रों में फसल उत्पादन को जोखिम भरा व्यवसाय बनाते हैं। फलस्वरूप यहाँ परंपरागत समन्वित कृषि पद्धति का विकास हुआ। इसमें किसान जोखिम को कम करने हेतु वर्षाकाल में फसलोत्पादन के अलावा भी बहु उद्यम करता है जैसे मिलवा खेती, पशुपालन, पेड़ों व जंगल से वस्तुओं का संग्रहण करना आदि। यह तरीका कम उत्पादन या आय हेतु तो टिकाऊ है किन्तु अधिक उत्पादन हेतु कारगर नहीं हैं। किसान आधुनिक कृषि व आदानों के उपयोग से परहेज करता है और ''कम लागत, कम जोखिम व कम मुनाफा'' के चक्रव्यूह में फँस जाता है। समय के साथ जनसंख्या व किसान की जरूरतों में इजाफा हुआ है। इसलिए वैज्ञानिक तरीकों से उत्पादन बढ़ाना आवश्यक हो गया है। शुष्क क्षेत्रों में वैज्ञानिक खेती दो मानकों पर खरी उतरनी चाहिए वे हैं अधिक उत्पादन व आमदनी में टिकाऊपन। इस हेतु पिछले छः दशकों से केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी) सतत् प्रयत्नशील है। विभिन्न उन्नत सस्य क्रियाओं से वर्षा जल के संरक्षण व दक्षता पूर्ण उपयोग द्वारा फसलोत्पादन में वृद्धि की तकनीकें विकसित की है। शुष्क क्षेत्रों में टिकाऊपन केवल फसल उत्पादन बढ़ने से ही नहीं आ सकता। इसके लिए ऐसी वैज्ञानिक समन्वित कृषि प्रणाली की आवश्यकता है जो सीमित संसाधनों का बहु उद्यमों में इष्टतम उपयोग कर जोखिम को कम कर सके। अधिक उत्पादन स्तर पर फसल उत्पादन के साथ–साथ पशुधन, कृषि वानिकी, उद्यानिकी, चारागाह, कुटीर उद्योग आदि में सह अस्तित्व व सामंजस्य हो। इस लेख में इस उद्देश्य को पूरा करने हेतु संस्थान द्वारा विकसित की हुई विभिन्न तकनीकों व प्रणालियों का विवरण प्रस्तुत है।

शुष्क कृषि हेतु उन्नत सस्य क्रियाएँ

खेत की उपयुक्त जुताई

जुताई की उचित संख्या व विधि मृदा संरचना पर निर्भर करती है। बलूई मिट्टी में भारी मिट्टी की अपेक्षा कम जुताई पर्याप्त है। किन्तु इन मृदाओं में एक ही गहराई पर बार–बार जुताई करने पर कठोर परत विकसित हो जाती है जो वर्षा के पानी व जड़ों को नीचे जाने से रोकती है। इसे तोड़ने हेतु एक से दो वर्ष के अन्तराल पर ग्रीष्मकाल में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करें। बालुई मृदा में खरीफ में

अधिक जुताई से नमी का ह्रास होता है। इस दशा में संरक्षित जुताई आवश्यक है। इसमें खेत की जुताई व बुवाई में बहुत कम अंतराल होना चाहिए। स्वीप कल्टीवेटर द्वारा एक जुताई बरसात के समय तथा एक जुताई बुवाई से तुरन्त पहले पर्याप्त है।

फसल की बुवाई व स्थापन

आम तौर पर बारानी कृषि में किसान छिड़काव विधि द्वारा फसलों की बुवाई करते है। इससे प्रायः पौधे असमान रूप से वितरित होते हैं और नमी व पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, अतः हमेशा कतारों में ही बुवाई करें। शुष्क क्षेत्रों में नमी की कमी के कारण सिंचित कृषि की तुलना में पौध संख्या 10 से 15 प्रतिशत कम रखी जाती है। यदि सूखे की स्थिति उत्पन्न हो रही हो तो पौधों की संख्या 20–30 प्रतिशत कम की जा सकती है। अनुसंधान द्वारा पाया गया है कि 300–450 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में बाजरे व दलहन की फसलों में कतार से कतार की दूरी 55–60 से.मी. रखने पर भी उतनी ही उपज प्राप्त होती है जितनी 30, 40, व 50 से.मी. दूरी रखने पर आती है। इससे कल्टीवेटर से निराई गुडाई करना भी संभव होता है जो कम दूरी की पंक्तियों में संभव नहीं होता है।

मृदा पपड़ी नियंत्रण

शुष्क क्षेत्र की मृदाओं में बुवाई के बाद हल्की वर्षा हो जाने पर पपड़ी बनने की समस्या आम है, जिससे फसलों का, खासकर बाजरे का अंकुरण काफी कम होता है। इस कारण पौधों की पर्यापत संख्या प्राप्त नहीं होती और उपज काफी कम हो जाती है। इसके निवारण हेतु बुवाई के बाद पंक्तियों पर देशी खाद डालने से मृदा पपड़ी की मजबूती कम होती है, जिससे फसल का अंकुरण अच्छा रहता है। बाजरे को दलहन के बीजों के साथ मिलकर बोने से भी फसल का जमाव अच्छा पाया गया है।

खरपतवार नियंत्रण

शुष्क क्षेत्रों में छिड़क कर बुवाई करने पर खरपतवार नियंत्रण बहुत दुष्कर हो जाता है। अतः फसल हमेशा कतारों में ही बोयें। प्रथम 30 दिनों तक फसल को खरपतवार रहित रखना अत्यंत आवश्यक है। यह यांत्रिक साधनों या खरपतवारनाशी दवाओं से नियंत्रित किया जा सकता है। अगर बुवाई से पहले एक प्रारंभिक जुताई की जाये तो खरपतवार पर नियंत्रण रहता है। जिन खेतों में मोथा (*साइप्रेस रॉटंडस*) का प्रकोप हो, वहां मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करें। कतार में बोई हुई फसल में 25–30 दिन पश्चात् स्वीप लगे कल्टीवेटर से गुड़ाई करें। काजरी द्वारा विकसित उन्नत कस्सी का प्रयोग कर कम परिश्रम से अधिक क्षेत्र में निराई–गुड़ाई की जा सकती है।

नमी संरक्षण एवं जल प्रबंधन

शुष्क क्षेत्र में अन्तःसरण, अपवाह व वाष्पीकरण में तालमेल बिठाकर भूमि में अधिकतम नमी सुरक्षित रखना अत्यंत आवश्यक है। परिक्षणों से पता चला है कि केवल मेड़बंदी करने से ही 36 प्रतिशत तक अधिक नमी संरक्षित की जा सकती है।

तालाब की तलछट

बालुई मृदा में जल धारण क्षमता कम होती है। इसे बढ़ाने हेतु तालाब की तलछट बहुत कारगर सिद्ध हुई है। 76 टन प्रति हेक्टेयर की दर से तलछट को 30–40 से.मी. गहराई तक मिलाने पर बाजरा व मूंग की उपज में 40–50 प्रतिशत वृद्धि देखी गई है।

सतही पलवार (मल्च)

नमी के तीव्र वाष्पीकरण को रोकने हेतु खेत से निकले खरपतवार व अन्य घास–फूस को मृदा की सतह पर पलवार के रूप में डाल देते हैं ताकि मृदा में नमी बची रहे। उपलब्धता के आधार पर 4–5 टन प्रति हेक्टेयर की दर से फसलों के अवशिष्ट, सूखी घास, लकड़ी का बुरादा आदि काम में लिया जा सकता है। इसके अलावा पॉलिथीन मल्च भी काम में ली जा सकती हैं। द्विरंगी पॉलिथीन मल्च (ऊपर से चाँदी के रंग व अन्दर से काले रंग की) लगाने से नमी का संरक्षण तो होगा ही साथ में खरपतवार भी नहीं उगेंगें। किन्तु इसकी लागत अधिक होने से इसका उपयोग व्यावसायिक फसलों में ही फायदेमंद रहता है। विभिन्न पलवारों का असर सूखे के समय अधिक स्पष्ट होता है।

भूमि तल पर जल संरक्षण (वाटर हार्वेस्टिंग)

मरू क्षेत्र के पहाड़ी व पथरीले इलाकों से व उथली भूमि वाले इलाकों से वर्षा का पानी जलाशयों में एकत्रित कर सूखे के समय जीवन दायिनी सिंचाई के लिए प्रयोग कर फसल को नष्ट होने से बचाया जा सकता है। अति शुष्क समतल इलाकों में जहाँ ज्यादा अपवाह नहीं मिल पाता वहां डोली बनाकर पानी बड़े क्षेत्र से खेती करने योग्य कम क्षेत्र की तरफ मोड़ दिया जाता है। सामान्यतः 4 से 12 हेक्टेयर क्षेत्र का जल 1 हेक्टेयर क्षेत्र में फैला दिया जाता है। एक अन्य विधि में तीन मीटर चौड़ी खेती की पट्टी के दोनों तरफ 0.75 मीटर चौड़ा सूक्ष्म जलग्रहण क्षेत्र बनाया जाता है। सूक्ष्म जलग्रहण पट्टी का ढाल 0.5 प्रतिशत रखा जाता है और इसे दबाकर सख्त कर दिया जाता है, ताकि वर्षा जल का अपवाह किया जा सके। इसी प्रकार नाली–डोली विधि भी अपनाई जा सकती है जिसमें ट्रैक्टर द्वारा 60 से.मी. की डोली बनाई जाती है व 40 से.मी. की नाली रखी जाती है। फसल की दो कतारें नाली में लगायी जाती है।

वायु अवरोधक एंव रक्षक पट्टियाँ

तेज हवायें भूमि की नमी के वाष्पीकरण का प्रमुख कारण है। हवाओं के वेग को कम करने, वाष्पीकरण एवं मृदा क्षरण को रोकने हेतु पेड़ों व झाड़ियों के सजीव अवरोधक लगाये जाते है। इन्हें वायु की सामान्य दिशा में लम्बत् पंक्तिबद्ध लगाया जाता है। इसकी चौड़ाई 3–5 पंक्तियाँ हो सकती है। यह वायु बहने की दिशा में पेड़ की ऊँचाई के 15 से 20 गुणा क्षेत्र में व वायु के आने वाली दिशा में 5 गुणा क्षेत्र तक प्रभावी है, साथ ही इनसे नियमित रूप से जलाऊ लकड़ी प्राप्त होती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

शुष्क क्षेत्रों में फसल को न सिर्फ पानी की कमी होती है, अपितु भूमि की कम उर्वरा शक्ति के कारण पोषण की भी कमी बनी रहती है। साथ ही किसान वर्षा की अनिश्चितता के कारण उर्वरकों का बेहद कम उपयोग करता है। ऐसी स्थिति में जैव उर्वरकों का प्रयोग लाभदायक हो गया है व इन क्षेत्रों में इनका प्रभाव भी बहुत स्पष्ट नजर आता है। अति शुष्क जलवायु में प्रयोग द्वारा पाया गया है कि बाजरे में *अजोस्पैरिल्लम ब्रैसिलेंसिस* का बीजोपचार कर 12–15 किलो नाइट्रोजन उर्वरक के बराबर उपज में वृद्धि होती है। जबकि दलहनी फसलों में उचित *राइजोबियम* कल्चर से बीजोपचार द्वारा 20 किलो नाइट्रोजन उर्वरक के बराबर प्रभाव दर्ज किया गया है। फॅास्फोरस हेतु पी. एस. बी. का इस्तेमाल करें। इसी तरह दहलनी फसलों की उर्वता बढाने के खासियत का फायदा बाजरे की फसल को देने हेतु बाजरा–दलहन का 2:2 अनुपात में अन्त्रासस्य करें या फसल चक्र अपनाएँ। उर्वरकों की मात्रा मृदा परीक्षण के बाद ही तय करें। बाजरे में नाइट्रोजन उर्वरक बुवाई के अलावा 3–4 बार विभाजित करके दें। अगर बाद में नमी की कमी हो तो ⅓ मात्रा का छिड़काव करें। अधिक सूखे की हालात में दूसरी व तीसरी किस्त को रोक सकते है। चूंकि भूमि में जैविक कारक की अत्यधिक कमी है, उर्वरकों के साथ साथ देशी खाद देने से न केवल फसल की उपज में स्थिरता आती है अपितु उर्वरकों की दक्षता भी बढती है।

जैव नियामकों का प्रयोग

जैव नियामक थायोयूरिया के उपयोग से सूखे के कारण प्रतिकूल परिस्थितियों फसल उत्पादकता में होने वाली गिरावट को कम किया जा सकता हैं इसमें बाजरा, मूंग व मोठ की फसल में 500 पीपीएम (0.5 ग्राम थायोयूरिया/लीटर पानी) से बीजोपचार करें व विभिन्न अवस्थाओं पर इसका छिड़काव करें (सारणी 1)।

सारणी 1: खरीफ फसलों में थायोयूरिया का प्रयोग

फसल	मात्रा	फसल में छिड़काव का समय
बाजरा	1000 पीपीएम	पहला वानस्पतिक बढ़वार व दूसरा फूल आने पर
ग्वार	1000 पीपीएम	फूल आने व दाना भरते समय
मोठ	500 पीपीएम	फूल आने पर (25 दिन तक) व दाना भरते समय

शुष्क क्षेत्रों हेतु समन्वित कृषि प्रणालियाँ

शुष्क क्षेत्रों में अनियमित वर्षा के कारण सस्य फसलों का उत्पादन बहुत अनिश्चित तथा जोखिमपूर्ण होने के साथ ही इससे किसान की सभी आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया जा सकता। शुष्क क्षेत्रों में अधिकांशतः पशुपालन आधारित अर्थव्यवस्था होने के कारण चारे की समस्या का निराकरण करना खेती में सर्वोपरि है। कृषि से प्राप्त आय को स्थायित्व प्रदान करने हेतु ऐसी कृषि उत्पादन प्रणाली की जरूरत थी जो उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग कर सके। इसमें फसलोत्पादन के साथ साथ घास व पेड़ों का समावेश व परती भूमि, चरागाहों का विकास किया जाता है। उपरोक्त पहलुओं को मद्देनजर रखते हुए काजरी, जोधपुर ने दो दशक पहले समन्वित कृषि परियोजना प्रारंभ की। चूँकि शुष्क क्षेत्र में किसानों के सामाजिक व आर्थिक ढाँचे में भी विविधता है। यहाँ दो परिस्थितियाँ मुख्य हैं, एक में किसान गाँव में स्थायी निवास बना कर रहता है व वर्षा काल में खरीफ की फसलें ले कर साल के शेष समय में खेत को अरक्षित छोड़ देता है व दूसरी परिस्थिति में काश्तकार ढाणी बनाकर वर्ष पर्यन्त खेत में ही रहकर देखभाल करता है। इसी को ध्यान में रखते हुए काजरी ने निम्नलिखित फार्म मॉडल्स विकसित किये है।

फसल विविधिकरण मॉडल

यह मॉडल वर्षाकाल में 450 मि.मी. वर्षा क्षेत्र में खेती करने वाले किसानों के लिए उपयोगी है। इसमें फसल विविधिकरण के लिए कुल खेत का 30 प्रतिशत भाग बाजरे में, 40 प्रतिशत भाग दलहनों में, 20 प्रतिशत भाग ग्वार में तथा बचे हुए 10 प्रतिशत भाग में तिलहनी फसलों पर जोर दिया जाता है। मानसून के 20 जुलाई से अधिक विलम्ब होने पर यह मॉडल काम नहीं करता। इस स्थिति में फसल विविधिकरण में दालें, चारा उपयोगी फसलें (लोबिया, चरी बाजरा) व तिलहन फसलों को ही लेना चाहिए। किसान को उन्नत किस्मों, सस्य क्रियाओं व जल प्रबंधन विधियों का समावेश करना चाहिए। उपरोक्त मॉडल में मरू क्षेत्र में 40–50 बीघा खेत पर 2–3 गाय व 8–10 भेड़ बकरी का वर्ष पर्यन्त चारा उपलब्ध हो जाता है और औसतन 1–1.25 लाख की शुद्ध आय व 300–350 मानव कार्य दिवसों का सर्जन हो जाता है।

समन्वित कृषि मॉडल

जो किसान ढाणी बनाकर खेत में ही रहते हैं उनके लिए कृषि विविधीकरण अपनाकर अधिक उत्पादकता, आय एवं सतत् कृषि विकास की प्रबल संभावनाएं है। इसके पूर्ण विकसित होने में 5–7 वर्ष का समय अवश्य लगता हैं किन्तु उसके बाद किसान की आय, भूमि व जल की उत्पादक क्षमता में निरंतर वृद्धि होती रहती है। चूँकि शुष्क प्रदेशों में विशेषकर पश्चिमी राजस्थान में जोत का आकर बड़ा होता है इसलिए 4–9 हेक्टेयर जोत हेतु समन्वित कृषि मॉडल विकसित किया है। 450 मि.मी. से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में पूर्णतः वर्षा आधारित होने से इससे छोटी जोत पर किसान की समस्त जरूरतें पूर्ण नहीं हो पाती व किसान बटाई पर लेकर अपनी जोत का आकार बढ़ा लेता है। इसमें विभिन्न पद्धतियाँ का अनुपात सारणी 2 में दिया गया है।

सारणी 2: शुष्क क्षेत्रों हेतु समन्वित कृषि प्रणाली का विवरण

कृषि पद्धति	**घटक**	**क्षेत्रफल (प्रतिशत)**
फसल पद्धति	शुद्ध अथवा अन्त्रासस्य बाजरा, दलहन व तिलहनी फसलें	15
कृषि वानिकी	खेजड़ी + फसलें	10
कृषि वानिकी	अंजन वृक्ष + फसलें	10
कृषि उद्यानिकी	बडेड बेर + फसलें	10
कृषि चारागाह	धामण घास + फसलें	10
वन चारागाह	मोपेन/अंजन वृक्ष/बेर + धामण घास	10
वन चारागाह	बेर + धामण घास	25
वानिकी	इजराइली बबूल	10

इस मॉडल को अपनी परिस्थितियों के अनुसार फेर बदल कर किसान 5–7 गायो व 15–20 भेड़ बकरियों का वर्ष भार पालन पोषण कर सकता है तथा विभिनन कृषि उत्पादों जैसे अनाज, दालें, तिलहन, चारा, लूंग व पाला, पशु आहार, जलाऊ लकड़ी, गोबर व मींगनी की खाद, बेर आदि का भी उत्पादन कर सकता है। इस प्रकार वह अपने परिवार के लिए साल भर रोजगार प्राप्त कर, 2.5–3.0 लाख रूपये की आमदनी अर्जित कर सकता है। यह प्रणाली अकाल व सूखे की स्थिति से भी कम प्रभावित होती है तथा प्राकृतिक संसाधनों की क्षमता में वृद्धि कर असिंचित क्षेत्रों में टिकाऊ खेती का मार्ग प्रशस्त करती है (चित्र 1)।

विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में संसाधनों के संरक्षण एवं समेकित प्रबंधन हेतु उपयुक्त शुष्क कृषि प्रणालियों की सिफारिश की गयी है, जिसका विवरण चित्र 2 में दर्शाया गया हैः

1. 250 मि.मी. से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में

- घासों तथा झाड़ियों द्वारा ओरण एवं गोचर का विकास
- चरागाह एवं पशुपालन में सामंजस्य स्थापित करना वन चारागाह प्रणाली का अपनाना
- बहु उपयोगी सूखा सहनशील वृक्षों को उगाना

2. 250–350 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में

- बहु उपयोगी सूखा सहनशील वृक्षों को उगाना
- खेती का पशुपालन के साथ सामंजस्य स्थापित करना
- फसलों के साथ–साथ कृषि वानिकी एवं वन चारागाह प्रणाली को अपनाना
- खडीन व अन्य परंपरागत तरीकों से जल संग्रहण कर खेती करना

3. 350–550 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में

- अच्छी भूमि में फसल विविधिकरण अपनाना मुख्यतः खाद्यानें व तिलहनी फसलों के साथ दलहनी फसलों को अन्त्रासस्य अथवा फसल चक्र में लेना
- वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणाली अपनाना
- जलग्रहण क्षेत्र के आधार पर समन्वित भूमि उपयोग
- फसल एवं पशुपालन का समाकलन

शुष्क क्षेत्र में टिकाऊ खेती करना चुनौतीपूर्ण है। किन्तु उन्नत समन्वित कृषि प्रणाली व नमी संरक्षण हेतु वैज्ञानिक आधार पर विकसित सस्य क्रियाओं को अपनाकर इस लक्ष्य को निश्चय ही प्राप्त किया जा सकता है।

फसलें

कृषि वानिकी (खेजड़ी + फसलें)

कृषि उद्यानिकी (बेर + फसलें)

कृषि वानिकी (अंजन वृक्ष + फसलें)

वन चारागाह (बेर + धामण घास)

वन चारागाह (अंजन वृक्ष + धामण घास)

भेड़ व बकरियाँ

थारपाकर गायें

मेड़ पर इजराइली बबूल

चित्र 1: काजरी में स्थापित समन्वित कृषि मॉडल के विभिन्न घटक

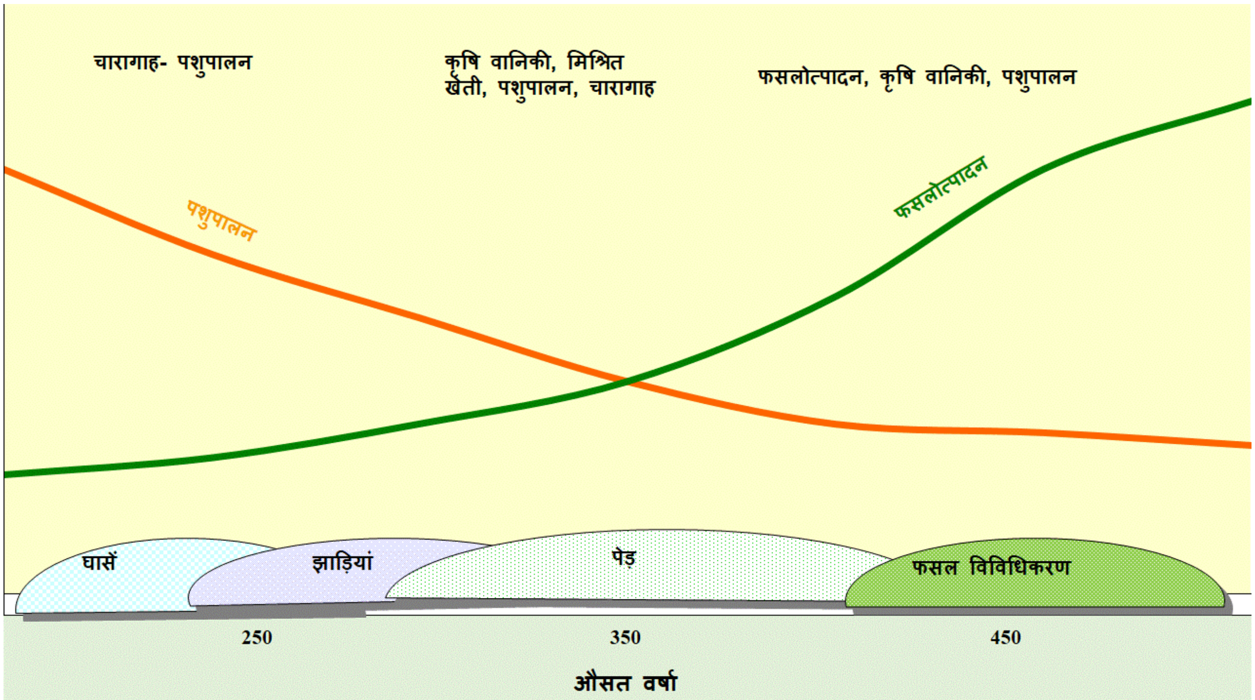

चित्र 2: वर्षा आधारित विभिन्न कृषि प्रणालियाँ

थार रेगिस्तान में रेत टिब्बा स्थिरीकरण : रेत नियंत्रण उपायों के लिए दृष्टिकोण

पी. सी. मोहराना

भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

थार रेगिस्तान के रेत के टीले

भारत में ग्रेट इंडियन डेजर्ट या थार रेगिस्तान पूर्व में अरावली पहाड़ियों और पश्चिम में भारत–पाक सीमा के बीच फैले देश के छः हिस्से में स्थित है। रेत के टीले विविध प्रकार की आकृति विज्ञान और प्रकारों के साथ हमारे रेगिस्तान के शानदार लैंडफॉर्म हैं। रेत के टीले १००६६१ वर्ग किमी या पश्चिमी राजस्थान के कुल भौगोलिक क्षेत्र का ४८% भाग को कवर करते हैं। पश्चिमी राजस्थान में प्रमुख टिंचर बाड़मेर (१५७६२ वर्ग किमी, ७.६%), जैसलमेर (२१६८६ वर्ग किमी, १०.४%), बीकानेर, २०६५२ वर्ग किमी, १०%), चुरू (१५७६२ वर्ग किमी, ७.४%), जोधपुर (५२४४) में होते हैं। वर्ग किमी, २.५ %) और गंगानगर जिला (४८३१ वर्ग किमी, २.३%)। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने इस रेगिस्तान में ०६ प्रमुख टिब्बा प्रकार और २१ उप प्रकार की पहचान की है। उन्होंने इन टिब्बा को पुराने टिब्बा सिस्टम और नए टिब्बा सिस्टम को उनके कॉन्फ़िगरेशन, उत्पत्ति और भूवैज्ञानिक/जलवायु समय के तराजू के आधार पर वर्गीकृत किया है। रेखीय, परवलयिक, अनुप्रस्थ, तारा, नेटवर्क और प्रमुख बाधा टिब्बा पुराने सिस्टम से संबंधित हैं, जबकि नई प्रणाली के टिब्बा में बारचन, रेत की लकीरें और नेबखास शामिल हैं। पुराने और स्थिर टिब्बा १०–४० मीटर ऊंचे हैं जबकि मोबाइल टिब्बा १–४ मीटर ऊंचे हैं।

सेंड डयून स्थिरीकरण की आवश्यकता

- थार मरुस्थल क्षेत्र एक रेतीली उच्चभूमि है, जहाँ पर रेत के टीले प्रमुख लैंडफॉर्म इकाइयां हैं। रेत के टीलों के साथ–साथ रेतीले मैदानों के अंतर्गत व्यापक क्षेत्र है। रेत की आवाजाही और धूलभरी आंधियां रेगिस्तान के लोगों के जीवन को असहज बना देती हैं। लगभग १.५७ लाख हेक्टेयर (पश्चिमी राजस्थान के कुल भौगोलिक क्षेत्र का ७२ %) हवा के कटाव से प्रभावित होने का अनुमान है। इसमें बहुत गंभीर श्रेणी के अंतर्गत ५८०० वर्ग किमी क्षेत्र, २५५४० वर्ग किमी, गंभीर श्रेणी, ७३७४० वर्ग किमी क्षेत्र, मध्यम और ५२६६० वर्ग किमी क्षेत्र शामिल हैं। एक दो अलग–अलग प्रकार की स्थिति में आएगा। रेत के टीले जो किसान के खेत में हैं और जो सरकारी नियंत्रण में हैं (वनविभाग)। जबकि वृक्षारोपण वनविभाग नियंत्रित टिब्बा का हिस्सा होगा, कृषि के लिए किसान के स्वामित्व वाले टिब्बा की खेती की जाती है। कई मामलों में, विभिन्न गहराई की ढीली रेत टिंडे के सबसे ऊपरी हिस्से (कुछ सेमी से 1 मीटर गहरी) पर होगी। गर्मियों (मार्च–जून के अंत) के दौरान,

ये भूमि बिना किसी पौधे के अवशेषों के भी बंजर रहती है, जिससे रेत आसानी से निकल जाती है और प्रमुख हवा की दिशा के आधार पर आकार ले लेती है। इस तरह की ढील रेत हवा के द्वारा पास के क्रॉप लैंड को घेर लेती है। पवन के कटाव का असर कृषि अर्थव्यवस्था पर पड़ता है क्यों कि हवा पोषक तत्वों से भरपूर मिट्टी को पीछे छोड़ देती है, जो एक मोटे सब्सट्रेट को पीछे छोड़ देता है जो पोषक तत्वों में खराब होता है।

- रेत के नष्ट होने या टेंडर के तनों और पत्तियों पर घर्षण क्रिया से फसल को नुकसान होता है।
- छोटी ऊंचाई वाली फसलों को नमक के कणों (चित्र 1) के माध्यम से दफन करें। पवन चक्रियों द्वारा पोषक तत्वों से भरपूर शीर्ष मिट्टी को हटाने पर भूमि की उत्पादन क्षमता बुरी तरह प्रभावित होती है। एक तूफानी दिन में, मिट्टी का नुकसान ५० किलो एच –१ से ४२० किलो ग्राम एच –१ हो सकता है। कृषि के अलावा, इसका इंफ्रास्ट्रक्चर पर प्रभाव पड़ता है और धूल उत्सर्जन मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करने के लिए जाना जाता है। इसलिए, ऐसे टिब्बा परिदृश्य को संरक्षण, प्रबंधन और बहाली की आवश्यकता होती है।

सड़कों पर रेत निक्षेप	फसल भूमि पर रेत का अतिक्रमण	मृदा अपरदन और वृक्ष की जड़ का अनावरण
फसल भूमि अतीत में देचू में शिखा और ढ़लान पर ढ़ीली रेत के साथ एक परवलयिक टिब्बा	फसल भूमि पैराबोलिक टिब्बा और इसके प्रभाव पर वृक्षारोपण	फसल भूमि जोधपुर के सेतरावा गांव के पास ग्रिड (चेकर बोर्ड) पैटर्न में लगाए गए लसीउरस सिंडीकस (घास)

चित्र 1. पवन के कटाव की समस्या और रेत टिब्बा स्थिरीकरण गतिविधियों का प्रभाव

काजरी द्वारा रेत टिब्बा स्थिरीकरण तकनीक

रेत टिब्बा पर रेत से बने मुक्त गतिविधियों को कम करने के लिए रेत टिब्बा स्थिरीकरण तकनीक एक क्षेत्र आधारित तकनीक है ताकि क्रॉप लैंड या इन्फ्रास्ट्रक्चर पर अपने आगे की गतिविधियों की जांच की जा सके। तकनीकों में वैज्ञानिक समझ के साथ व्यवस्थित प्रक्रिया शामिल हैं। दून क्षेत्र की बाड़, सूक्ष्म पवन विराम की स्थापना, ५ मी. चेसबोर्ड पैटर्न में ड्यून के सबसे ऊपर की ओर सूक्ष्म पवन विराम की स्थापना या ऊर्ध्वाधर या क्षैतिज पैटर्न में ५ मी. समानांतर स्ट्रिप्स में, घास की बुवाई और रोपाई मानसून की शुरुआत के साथ पेड़ों/झाड़ियों और घास और लता के बीज को फिर से तैयार करना और १०–१५ वर्षों के लिए इस तरह के टीलों का निरंतर और उचित प्रबंधन करना। इसी तरह, काजरी के आश्रय रोपण की तकनीक हवा से संबंधित गतिविधियों के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने में सफल रही।

माइक्रो–विंड ब्रेक को बढ़ाने के लिए स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्रियों का अनुसरण करने का सुझाव दिया गया हैः

- ब्रशवुड सामग्रीः लेप्टेडेनिया पायरोटेक्निका (खिम्प), ज़िज़िफस न्यूमुलरिया (पाला), क्रोटलारिया बुरहिया (सानिया) और पैनिकम तुर्गिडम (मुरथ)।
- पेड़ की प्रजातियाँः बबूल की प्रजातियाँ, प्रोसोपिस एसपीपी। बबूल की पत्ती, पार्किसोनिया आर्टिकुलेटा और टैमरिक्स आर्टिकुलेटा।
- घासः लसीसुरस सिंडिकस और सेनक्रस कनिंघिस
- लताएंः सिट्रूलस कोलोसिन्थिस

रोपण सामग्री : शुरू में टिब्बा स्थिरीकरण कार्यक्रम में ज्यादातर विदेशी पेड़ और झाड़ियों के रोपण शामिल थे, लेकिन जल्द ही यह महसूस किया गया कि स्थानीय रूप से अनुकूलित प्रजातियां जो स्थानीय आबादी को कुछ आर्थिक वापसी प्रदान कर सकती हैं, ग्रामीणों द्वारा पसंद की जाती हैं। वर्षा क्षेत्रों के अनुसार, काजरी ने रेत के टीलों को स्थिर करने के लिए कई वनस्पति प्रजातियों (पेड़ों, झाड़ियों और घास) की वकालत की है। (तालिका 1)

तालिका 1. रेत के टीलों को स्थिर करने के लिए उपयुक्त वनस्पति प्रजातियाँ

वार्षिक वर्षा (मिमी)	**पेड़**	**झाड़ियां**	**घास**
१५० — ३००	बबूल की पत्तियां, बबूल सेनेगल	कैलिगोनम पॉलीगानोइड्स, ज़िज़िपस सुम्मुलरिया, सिट्रुलस कोलोसिन्थिस	लसीसुरस सिंडीसस
३०० — ४००	बबूल tortilis, बबूल सेनेगल, Prosopis Cineraria, Tecomella undulata, पार्किंसोनिया व्यक्त, बबूल नूबिका, Colophos permum मॉपेन, सौहार्दपूर्ण rothili	ज़िज़िफ़स मौरिटिआना, ज़िज़िपस सुम्मुलरिया, कैलिगोनम पॉलीगोनोइड्स, सिट्रुलसकोलोकोनिथिस	सेनचुरस क्यूनिगिस, सेनचुरस सेटिगरस, लसीसुरस सिंडीसस, सैचुरस पूजा
४०० — ५५०	बबूल tortilis, Prosopis Cineraria, Dalbargia sisoo, Ailanthus excels, Albizzia lebbeck, Acacia Senegal,। टेकोमेला अंडुलाटा, पार्किंसोनिया आर्टिकुलेट, कोलोफोस परमम मोपेन	ज़िज़िपस मौरिटिआना, कैसिया औरिक्लाटाटा	सेनचुरस क्यूनिगिस, सेनचुरस सेटिगरस, सैकरमम मुंजा और पैनिकम एंटीडोटेल

पूरे पश्चिमी राजस्थान में रेत के टीलों पर लगभग ४ लाख हेक्टेयर क्षेत्र को राज्य वन विभाग द्वारा काजरी द्वारा उपरोक्त तकनीकों का उपयोग करके स्थिर किया गया है।

टिब्बा स्थिरीकरण की तकनीक तीन मुख्य तरीकों, अर्थात्, जैविक, यांत्रिक और रासायनिक प्रकारों का अनुसरण करती है, जिसमें से जैविक स्थिरीकरण के लिए विवरण अधिक प्रभावी साबित हुए हैं।

जैविक स्थिरीकरण

जैविक विधि वनों की कटाई या वनीकरण के संदर्भ में वनस्पति का उपयोग करती है। यह एक वनस्पति आवरण के रखरखाव द्वारा पूरा किए गए स्थायी स्थिरीकरण के रास्ते में से एक है।

रोपण तकनीक : रेत के टीलों पर वनस्पति के रोपण से पहले, स्थानीय स्तरपर उपलब्ध पौधों की सामग्री का उपयोग करके कम ऊंचाई के लंबे समानांतर अवरोधों (या सूक्ष्म पवनचक्र) को खड़ा करना है। बाधाओं को प्रचलित हवा की दिशा में ५ मीटर से १० मीटर के अंतराल पर रखा जाता है। जहां हवा की दिशा परिवर्तनशील होती है, क्रॉस–बैरियर भी खड़े किए जाते हैं, इस प्रकार एक ग्रिड पैटर्न बनता है। पैटर्न हवा के वेग, ढलान की स्थिरता और रेत के टिब्बा के प्रकार जैसे कई कारकों पर निर्भर करता है। ग्रिड/वर्गों के भीतर रेत आमतौर पर पर्याप्त रूप से स्थिर होता है ताकि रोपाई वाले रोपों की स्थापना हो सके।

रोपण का समय : उच्च जीवित रहने की दर सुनिश्चित करने के लिए, बरसात के मौसम (जुलाई से सितंबर) की शुरुआत के बाद रोपाई की जाती है, जब रेत नम होती है। आई जी एन पी (IGNP) स्टेज क्षेत्रों में, रोपण जुलाई से अक्टूबर तक किया जाता है। यह अप्रैल और मई की शुरुआत में भी किया जा सकता है, क्योंकि पर्याप्त सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है।

रोपण की गहराई : बीकानेर में किए गए प्रयोगों से पता चला है कि ३५ से ४० सेमी की गहराई पर रोपण के परिणाम स्वरूप अधिक अंकुर जीवित हो गए। हरियाणा और राजस्थान में, मानक अभ्यास ४०–४५ सेमी गहरे गड्ढों में रोपण करना है।

व्यापक अंतराल : नमी के लाभ का लाभ उठाने के संदर्भ में, अंगूठे के एक नियम के रूप में, कम बारिश और लंबे समय तक शुष्क अवधि की स्थिति में, नमी के लिए प्रतिस्पर्धा को कम करने और पौधों में उच्च नमी तनाव के विकास को कम करने के लिए व्यापक अंतराल को अपनाया जाना है। बबूल टरटीलिस और अन्य वृक्ष प्रजातियों के मामले में, ४X२ मीटर की दूरी को अपनाया गया है, जबकि आई जी एन पी (IGNP) स्टेज क्षेत्र में, अंतर ३X३ मीटर है। राजस्थान के अन्य क्षेत्रों में, ५X४ मीटर के अंतर को अपनाया जाता है। हालांकि, यह महसूस किया गया है कि आई जी एन पी (IGNP) स्टेज क्षेत्रों के लिए ४X४ मीटर की दूरी अधिक उपयुक्त होगी।

पानी देना : असाधारण रूप से सूखे वर्षों में, जीवित रहने के लिए और उपलब्ध मिट्टी की नमी को टैप करने के लिए पर्याप्त रूप से गहरी जड़ प्रणाली के विकास के लिए रोपाई की जीवन–रक्षक सिंचाई आवश्यक हो जाती है। सतही जड़ों के विकास को रोकने के लिए रेत को गहराई से सिक्त किया जाना चाहिए जो बाद में मर जाएगा।

एरियल सीडिंग : एरियल सीडिंग २५० मिमी और गर्मियों के तापमान ४० डिग्री सेल्सियस की औसत वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए भी संभव हो सकती है। दुर्गम टीलों और रेतीले बंजर भूमि का वनीकरण भी एरियल सीडिंग तकनीक से संभव है, बशर्ते उपयुक्त प्रजातियों के बीजों को मानसून में प्रसारित किया जाए, सभी कीट नियंत्रण उपायों को अपनाया जाए। यदि एक अच्छी वर्षा के साथ हवाई बीजारोपण होता है तो सफलता की संभावना बढ़ जाएगी।

शुष्क क्षेत्र में प्रमुख औषधीय पौधे एवं नर्सरी प्रबंधन

जे.पी. सिंह एंव नारायण राम

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

प्राचीन समय से ही भारतवर्ष में परम्परागत रूप से औषधीय पौधों का महत्व रहा है। आज भी ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्रों मे जड़ी–बुटियों के उपयोग की प्रमुखता है। विगत वर्षों में विश्व बाजार में भी औषधीय पौधें के उत्पादों की मांग पहले से काफी अधिक बढ़ी है। विश्व की कुल वनौषधि सम्पदा का एक बड़ा हिस्सा भारतवर्ष के विभिन्न भौगोलिक एंव जलवायु वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। लेकिन कालांतर में प्राकृतिक संसाधनों के अधाधुंध दोहन से अनेक औषधीय पौधों की उपलब्धता कम हो गयी है एवं कुछ महत्वपूर्ण औषधीय पौधे तो लुप्तप्राय की श्रेणी में आ गये हैं। वस्तुतः वन/रेंजभूमि क्षेत्रों में कमी होने के कारण भी वन्य औषधीय पौधों के प्राकृतिक पुनरोत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

शुष्क एंव अर्द्धशुष्क क्षेत्र में जहाँ बहुत कम वर्षा होती है, अनेक प्रकार के औषधीय पौधे पाये जाते हैं पश्चिमी राजस्थान का क्षेत्र भी औषधीय पौधों के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि हमारे देश के अन्य क्षेत्र हैं। यहाँ पर कुछ इस तरह के पौधे पाये जाते हैं जो दूसरे जगह नहीं होते। अतः जो मरूस्थलीय औषधीय पौधें हैं उनका महत्व और भी बढ़ जाता है। इसके साथ ही यहाँ के जो स्थानीय पौधें हैं उनमें यहां के शुष्क वातावरण को सहन करने की अदभुत क्षमता है, और विषम परिस्थितियों में उगकर पर्यावरण संतुलन मे भी अपना योगदान देते हैं। क्योंकि ये पौधे रेतीले टीबो, रेतीली, कंकरीली पथरीली, क्षारीय आदि भूमि में भी उगते है। यहाँ के शाकीय स्थानीय औषधीय पौधे जैसेः बजरदंती, बाकरा, काटी या छोटा गोखरू, चमघास, भांगरी, चपरी, साटा, तुम्बा, सिनावरी या पुनर्नवा, आसगंध, जवासा, हरमाल, ग्वारपाठा, शखंपुष्पी, लुनवा, रई, रिंगांनी या कटेली, बाल, रामबुई, चिरियोरेखेत, बुरघास आदि पौधों को विभिन्न औषधियों में प्रयुक्त करते है। इसके साथ ही जैसलमेंर जिले में पिंपा, खिरोली, भाकरकंदा आदि औषधीय पौधें विशेष रूप से मिलते हैं। यहाँ की झाडियां जैसे कैर, खीप, फोग, मुराल, जील या रक्तपाला, अन्धोखीप, अरनी, हिंगौट, आक, बोर्डी, लाणा, खारालाणा, लूनी, गंगेरन, जिंजवा, कंकेरो व गोंदी आदि का उपयोग किया जाता है।

गिलोय, पिलवन आदि औषधीय लताएं हैं तो पेड़ों में रोहिडा, कुमट, जाल, खेजडी की औषधियों में मांग है। इनके अतिरिक्त फलदार पेड़ जैसे आंवला, बेल, गोंदी, लसोरा, सहजना आदि का भी विभिन्न औषधियों में उपयोग होता है। इन सभी पौधों की ठीक से पहचान व पौधें का कौनसा भाग औषधियों में प्रयुक्त होता है इन बातों की जानकारी आवश्यक है। कुछ औषधीय पौधों की बहुत अधिक मांग है, उनकी

खेती के लिए बढ़ावा दिया जा रहा है और इन्हे औषधीय फसलों के रूप में लेते है क्योकि इनका व्यवसायिक महत्व बहुत अधिक है। वर्तमान परिपेक्ष्य में आज सभी परम्परागत कृषि पद्धति के साथ फसल विविधिकरण की बात करते हैं। इस दृष्टिकोण से यहाँ की विषम परिस्थितियों को देखते हुए विशेषकर बहुवर्षिय औषधीय फसलों का बहुत महत्व है। इन औषधीय पौधों की खेती हेतु सीधे ही बीज बुवाई की जाती है साथ ही कुछ औषधीय पौधों की पहले नर्सरी में पौध तैयार करके बाद में रोपण किया जाता है। प्रस्तुत लेख में शुष्क एंव अर्द्धशुष्क क्षेत्रों के कुछ औषधीय पौधों एवं उनकी नर्सरी तैयार करने का वर्णन किया गया है।

गुग्गल : गुग्गल का वानस्पतिक नाम कोमीफेरा वीटाई है यह पश्चिमी राजस्थान क्षेत्र का बहुत ही महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है (चित्र 1) एवं अत्यधिक दोहन से आज खतरे में है। गुग्गल को कफनाशक, वायुनाशक आदि के लिए जाना जाता है। गुग्गल की बढ़ती मांग को देखते हुए यह आवश्यक है कि इसका अधिक से अधिक रोपण किया जाए। गुग्गल का प्रवर्धन दो तरह से कर सकते है एक तो बीज द्वारा, दूसरे शाखाओं की कलम द्वारा। बीज द्वारा पौध तैयार करने के लिए इसके पके फल इकट्ठा कर लेते है, और उनसे बीज निकालकर नर्सरी में पॉलीथीन थैली में बोते हैं। अप्रेल–मई में एकत्रित किये बीजों की तुलना में जुलाई सितम्बर में एकत्रित बीजों में अधिक अंकुरण होता है। प्रायः यह पाया गया है कि इसके गहरे रंग के बीजों में हलके रंग की अपेक्षा अच्छा अंकुरण होता है। यदि कटिंग द्वारा पौध तैयार करनी है तो 30 सेंटीमीटर लम्बे व 2 से 3 सेंटीमीटर व्यास वाली शाखाओं के टुकड़ो को 15 सेंटीमीटर नीचे तक पालीथीन थैली में मार्च के माह में लगा देते है तथा लगभग 6 माह पौधों को बरसात के मौसम में रोपित करते है। इसे भी कम पानी की आवश्यकता होती है। शीत ऋतु में दिसम्बर, फरवरी में प्राकृतिक रूप से भी गुग्गल के पौधों से गोंद निकलता है। इसकी तने में चीरा लगाते है जिससे पीला गोंद जैसा रेजिन निकलता है, यहीं रेजिन औषधियों में काम आता है।

चित्र 1: गुग्गल

सतावर : सतावर का वानस्पतिक नाम एस्पेरेगस रेसीमोसस है जो कि एक बहुवर्षीय आरोही पादप है (चित्र 2)। इसका शतावरी, बहुसुतावरी, शतवीर्य आदि नामों से भी प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख मिलता है। सतावर की कंदिल जड़ें ही औषधीयों में प्रयुक्त की जाती है जो कि लंबी–लंबी गुच्छों में होती है। सतावर की कंदिल जड़ों को शीतवीर्य, मेधाकारक, जढाराग्निवर्धक, शुकवर्धक, बलकारक, दुग्धवर्धक आदि माना गया है। सतावर की कंदिल जड़ों की विभिन्न औषधीयों हेतु बहुत मांग है। इसकी खेती हेतु बलुई दोमट मिट्टी जिसमें जलनिकास की अच्छी व्यवस्था हो, उपयुक्त पायी गयी है।

सतावर का बीजों द्वारा पौध तैयार करके रोपण किया जाता है, इसके लिए लगभग 2.5 से 3 किग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। इसकी नर्सरी तैयार करने हेतु मई के अन्तिम सप्ताह में बीजो की बुवाई करते हैं। बीजों को नर्सरी में पॉलीथीन में या जमीन में क्यारी बनाकर बोया जा सकता है। बीजों के अंकुरण में लगभग एक माह का समय लग जाता है। पौध तैयार होने में लगभग तीन माह का समय लगता है। इस तरह पौध जुलाई से अगस्त तक रोपण हेतु तैयार हो जाती है।

चित्र 2: सतावर

अश्वगंधा : अश्वगंधा का वानस्पतिक नाम विदानिया सोमनिफेरा है इसे आसगंध नागौरी के नाम से भी जाना जाता है (चित्र 3)। प्राकृतिक रूप से यह गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, केरल आदि राज्यों में पायी जाती है। अश्वगंधा की जड़ों का उपयोग विभिन्न आयुर्वेदिक व यूनानी औषधीयों के निर्माण में वृहत स्तर पर किया जाता है। साथ ही इसकी पत्तियों, फल व बीजों का उपयोग भी विभिन्न रोगों के निदान हेतु किया जाता है। मुख्यतयाः इसका

उपयोग शक्तिवर्धक औषधीयों को बनाने में करते हैं। साथ ही इसे गठिया के दर्द, जोड़ों की सूजन, पक्षाघात तथा रक्तचाप आदि के उपचार हेतु करते हैं। यह शुष्क क्षेत्र की एक बहुत ही महत्वपूर्ण औषधीय फसलों में है।

अश्वगंधा की व्यवसायिक औषधीय फसल के लिए बलुई दुमट या हल्की लाल मिट्टी, जिसमें जल निकास की समुचित व्यवस्था हो उपयुक्त माना गया है। इसमें बीजों द्वारा सीधे ही बुवाई की जाती है तथा नर्सरी में पौध तैयार करके भी रोपण करते है। इसके लिए बीजों को नर्सरी क्यारियों में बोया जाता है। एक सप्ताह में बीजों का अंकुरण हो जाता है। लगभग 6 सप्ताह के उपरान्त पौधे रोपण हेतु तैयार हो जाते है।

चित्र 3: अश्वगंधा

तुलसी : तुलसी का वानस्पतिक नाम ओसिमम सेन्कटम है जो कि औषधीय गुणों से परिपूर्ण होने के साथ–साथ सुगन्धित तेल का भी महत्वपूर्ण स्त्रोत है (चित्र 4)। तुलसी का तेल विभिन्न प्रकार की औषधियाँ बनाने में प्रयुक्त किया जाता है। विभिन्न औषधियों में इसकी मांग को देखते हुए व्यवसायिक रूप से तुलसी की खेती की जा रही है। तुलसी का प्रवर्धन बीजों द्वारा किया जाता है जिसमें प्रति हेक्टेयर लगभग 500 से 600 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। नर्सरी में पौध मई से जून माह तक तैयार करते हैं बोने से पूर्व बीजों को मिट्टी में मिला लेना चाहिए। बीज बोने के बाद हल्की सिंचाई कर दी जाती है। प्रायः 30 से 40 दिन बाद पौध खेत में रोपाई हेतु तैयार हो जाती है।

चित्र 4: तुलसी

कालमेघ : कालमेघ का वानस्पतिक नाम एन्ड्रोग्राफिस पेनीकुलाटा है जो कि एक शाकीय पौधा है। यह पौधा छायादार व नमी वाले स्थान पर पाया जाता है। यह पीलिया, यकृत संबंधी रोग और श्वास संबंधी रोगों में लाभकारी है। पौधे का क्वाथ रक्त शोधक एंव ज्वर में काम आता है। इसका सम्पूर्ण पौधा अर्थात पंचांग औषधीय उपयोग हेतु प्रयुक्त किया जाता है। कालमेघ वनीय क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से भी मिलता है तथा इसकी औषधीय फसल के रूप में खेती भी की जाती है। इसकी खेती के लिए बलुई दोमट मिट्‌टी जिसमें जल निकास की अच्छी व्यवस्था हो उपयुक्त होती है। कालमेघ की खेती हेतु नर्सरी में पौध भी तैयार करते हैं। इसके लिए जून माह में बीजों को क्यारियों में बुवाई कर देते हैं व उक हेक्टयर हेतु लगभग 450–500 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। नर्सरी में आवश्यकतानुसार नमी बनी रहनी चाहिये। जब पौधे 30 से 35 दिनो में लगभग 20 सेमी. के हो जाएं तो खेत में रोपाई करते है।

गुड़मार : गुड़मार का वानस्पतिक नाम जायमनेमा सिलवेस्टर है। वैसे तो प्राकृतिक रूप से इसकी उपलब्धता है लेकिन इसकी मांग को देखते हुए खेती की अच्छी संभावनाएं है। गुड़मार को बीजों व कलमों द्वारा लगाया जाता है। बीजों को फरवरी मार्च में पॉलीथीन में बोते है। इसके पश्चात खेत में रोपित करते है।

गिलोय : गिलोय का वानस्पतिक नाम टीनोस्पोरा कॉर्डीफोलिया है यह एक बहुवर्षीय बेल है, जो पठारी या रेतीली भूमि में उगने वाले झाडियों या पेड़ों पर प्राकृतिक रूप से उगती है। गिलोय की विभिन्न औषधीयों में मांग को देखते हुए इसकी खेती लाभदायक है। गिलोय का प्रर्वधन कलमों से किया जाता है। कलमों को

जिनकी लम्बाई 20 से 25 से.मी. हो मई जून में नर्सरी में लगाते हैं। 20 से 30 दिनों में कलमों से जडें निकल आती है। इस प्रकार 2–3 माह में पौधे रोपने के लिए तैयार हो जाते है।

अडूसा : अडूसा का वानस्पतिक नाम अधातोडा जेलेनिका है। यह प्राकृतिक रूप से सभी जगह पाया जाता है। औषधीय उपयोग हेतु इसके पत्ते, जड़, फूल काम में लिए जाते है। इसका प्रवर्धन बीज व कलम दोनों से किया जा सकता है। बीजों को मई जून में पॉलिथीन की थैली में बोते है। अंकुरण में 7 से 10 दिन का समय लगता है। तथा जूलाई अगस्त में पौध रोपण हेतू तैयार हो जाती है।

पामारोजा (रोशाघास) : रोशाघास का वानस्पतिक नाम सिम्बोपोगोन मारटिनी है एंव सुगंधित महत्वपूर्ण फसल है। इसकी पत्तियों व अपरिपक्व पुष्पकुंजो से जल वाष्पिकरण द्वारा तेल प्राप्त किया जाता है, जिसका उपयोग मुख्यतः अगरबत्ती, सुगंधित प्रसाधन सामग्रियों आदि बनाने में होता है। रोशाघास को बीजों द्वारा नर्सरी में पौध तैयार करके या पुराने पौधों के जड़दार कल्लों द्वारा लगाया जा सकता है। अप्रेल–मई में नर्सरी तैयार करके बीज बोते है तथा बीजों को 10 से.मी. दूर कतारों में 1 से 2 से.मी. गहराई पर क्यारियों में बीज बोते हैं। प्रतिदिन सिंचाई करते हैं। अधिक गर्मी होने पर सुबह शाम सिंचाई व्यवस्था आवश्यक है। एक सप्ताह में अंकुरण हो जाता है व लगभग 2 माह बाद जब पौधे लगभग 20 से.मी. हो जाएं तो उन्हे जड़ सहित उखाडकर खेत में रोपण करें।

लेमनघास - नींबूघास : लेमनघास को नींबू घास के नाम से भी जाना जाता है। इसका वानस्पतिक नाम सिम्बोपोगोन फ्लेक्सुओसस है। इसकी पत्तियों से सुगंधित तेल हेतु इसकी व्यवसायिक खेती की जा रही है। लेमनघास तेल का उपयोग मुख्यतया विभिन्न सौन्दर्य प्रसाधनों, साबुनों आदि के निर्माण के कारण इसके तेल की राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मांग बढ़ रही है जिससे इसकी खेती पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इसकी खेती के लिए प्रायः पुराने पौधों की जड़ों (स्लिप्स) द्वारा रोपाई करते हैं साथ ही बीजों द्वारा पौध तैयार करके किया जाता है। बीजों को अप्रेल मई में नर्सरी तैयार करके बोते हैं। एक सप्ताह में अंकुरण हो जाता है। लगभग 2 माह बाद रोपाई की जाती है।

ग्वारपाठा (एलोय विरा) : इसे घृतकुमारी या घीक्वार के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ की शुष्क जलवायु हेतू यह एक उपयुक्त औषधिय फसल है (चित्र 5)। यहाँ मीठा व खारा दोनो तरह का ग्वारपाठा मिलता है। मीठा ग्वारपाठा प्रायः सब्जी के लिए उपयोग करते है लेकिन औषधी हेतु खारा किस्म का महत्व है। इसकी खेती हेतु सिंचित व असिंचित दोनो प्रकार की भूमि उपयुक्त है। इसका प्रवर्धन सर्कस द्वारा किया जाता है। प्रथम वर्ष में ही लगाने से पहले गोबर की खाद 2.5 टन प्रति हैक्टर के हिसाब से डालते

है। एक वर्ष के उपरांत इससे उपज के साथ छोटे पौधे भी प्राप्त हो जाते हैं जिन्हे आगे रोपण हेतु प्रयुक्त करते है। ग्वारपाठा के पत्तों के गूदें को विशेष विधियों द्वारा सूखाकर जमाने से जो पदार्थ तैयार होता है उसे एलुवा या मुसब्वर कहते है, यह भूरे से काले रंग का कुछ चमकीला होता है। विभिन्न रोगों के निदान हेतु ग्वारपाठा का उपयोग परम्परागत चिकित्सा पद्धतियों में किया जाता है इसके अतिरिक्त सौन्दर्य प्रसाधनों के निर्माण में भी किया जाता है।

चित्र 5: ग्वारपाठा

ईसबगोल (प्लंटेगो ओवाटा) : ईसबगोल सिंचित क्षेत्र की बहुत ही महत्वपूर्ण शीतकालीन व्यवसायिक फसल है (चित्र 6)। ईसबगोल की मांग विश्व बाजार में बहुत अधिक है। इसकी उच्च उपज व उत्तम गुणवत्ता हेतू अच्छी किस्म का बीज बोयें। गुजरात इसबगोल 2 या जी आई 2, आर आई 89 अच्छी किस्में है।

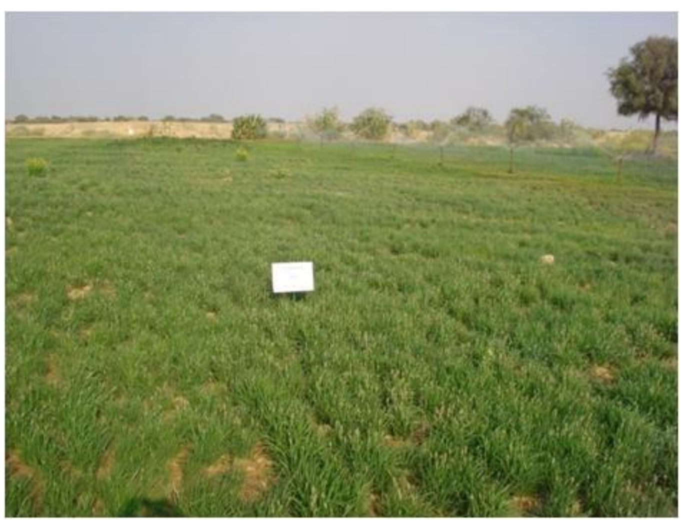

चित्र 6: ईसबगोल की फसल

सोनामुखी (केसिया एंगुस्टीफोलिया) : इसे सनाप भी कहते है। यहाँ की शुष्क जलवायु में यह भी उपयुक्त औषधीय फसल है (चित्र 7) इसकी पत्तियाँ व बीजों का निर्यात किया जाता है। यह भी बहुवर्षिय होने के कारण कम वर्षा में बारानी क्षेत्रों में आसानी से उगायी जा सकती है।

चित्र 7: सोनामुखी

शंखपुष्पी (कोन्वाल्वूलस माईक्रोफिलस) : यह एक बहुवर्षिय औषधीय शाकीय पादप है (चित्र 8)। आजकल शंखपुष्पी की खेती भी पश्चिमी राजस्थान में बारानी दशा में की जा रही है, इसकी काफी मांग भी है।

चित्र 8: शंखपुष्पी

पिम्पा (केरेलुमा इडयुलिस) : पिम्पा पश्चिमी राजस्थान में विशेषकर जैसलमेर जिले में पाया जाता है जो कि बहुत अधिक सूखा अवरोधी मांसलोद्भिद प्रजाति है (चित्र 9)। थार मरूस्थल में पिम्पा का परम्परागत औषधी में उपयोग रहा है। स्थानीय वासियों द्वारा ऐसा माना जाता है कि ताजा पिम्पा खाने से प्यास शांत होती है, साथ ही कब्ज व दूसरी पाचन सम्बंधी विकारों में लाभदायक है। यह हड्डियों के लिए लाभकारी एवं रक्तशोधक माना जाता है। पिम्पा को शीतल, कृमिहर एवं रक्त विकारों में उपयोगी माना गया है। पिम्पा प्रजाति के संवर्धन की ओर ध्यान देना होगा, जिससे विलुप्त होने से बचाया जा सके। इसे आसानी से उगाया जा सकता है।

चित्र 9: पिम्पा

डोढ़ा (ग्लोसोनीमा वेरयन्स) : इसके फल जिसको स्थानीय जन खिरोली कहते है, को कच्चा खाते है। यह भी पश्चिमी राजस्थान में प्रमुखता से जैसलमेर जिले में मिलती है (चित्र 10)। इसका फल औषधीय गुणों युक्त बलवर्द्धक होता है। इसमें फलों का रस खांसी, गले व मांसपेशियों के दर्द में लाभदायक माना गया है।

चित्र 10: डोढ़ा

औषधीय पौधों की सफल खेती हेतु आवश्यकता इस बात की है कि जिन औषधीय फसलों की खेती करना चाहते है, ये यहाँ की जलवायु के अनुरूप उपयुक्त हों। दूसरा जो बीज या पौध लगायें वह अच्छी किस्म का होना चाहिए व प्रमाणिक हो जिससे उपज भी अच्छी होगी और प्राप्त उत्पाद का मूल्य बाजार में उचित मिल सके। साथ ही औषधीय पौधों का व्यवहारिक अनुभव भी होना जरूरी है। इन फसलों में देशी खाद का उपयोग करे। रासायनिक कीटनाशक, खरपतवार नाशक का उपयोग नहीं करे। आवश्यक बात यह है कि जो भी औषधीय पौधों के औषधियों में प्रयुक्त भाग है, उसका संग्रह सही तरीके से और नियत समय पर किया जाए। क्योंकि यदि इसका ध्यान नहीं रखते तो इससे उसकी गुणवत्ता प्रभावित होती है। साथ ही भंडारण का भी ध्यान जरुरी है। इसके साथ ही यदि आप स्थानीय जंगली औषधियों का संग्रह कर बेचना चाहते है तो उनकी ठीक पहचान होना बहुत जरूरी है। उनके स्थानीय नामों के साथ उनका वानस्पतिक नाम व व्यापारिक नाम आदि की जानकारी भी आवश्यक है। क्योंकि एक औषधीय पौधें के अलग अलग स्थानीय नाम हो सकते है। हमें इन जंगली पौधों का संग्रह करते समय विवेकसंगत उपयोग करना चाहिए आवश्यकता से अधिक दोहन नही करें अर्थात संग्रह कार्य पर्यावरणहितैषी हों। साथ ही विशेष रूप से जो यहां के परम्परागत औषधीय पौधें जैसे कि गुग्गल, पिम्पा, खिरोली, भाकरकंदा आदि हैं उनके संरक्षण व संवर्धन में हम सभी की सहभागिता जरूरी है ताकि यहां के दुर्लभ औषधीय पौधों को मरूस्थल में विलुप्त होने से बचाया जा सके।

औषधीय व सुगन्धित पौधों की खेती हेतु प्रमुख बिन्दु :–

- जहां किसान सफलतापूर्वक औषधीय पौधों की खेती कर रहे है वहां जाकर उनको देखे एवं किसानों के अनुभव को साझा करें।
- जिन औषधीय फसलों की खेती करना चाहते हैं उसके विपणन के विषय में अवश्य जानकारी रखें।
- औषधीय पौधों की खेती में प्रयोगात्मक स्तर पर अनेक फसलें ले सकते है, लेकिन बड़े पैमाने पर चुनन्दा फसलों का चुनाव करें।
- औषधीय पौधों की नर्सरी या पौधशाला हेतु विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। यदि बीज क्यारियों में बोते है तो उन्हे कतारों में बुवाई करनी चाहिए। बीज बोने की गहराई उनके बीजों के आकार पर निर्भर करता है।
- औषधीय पौधों की उन्नत प्रजाति का बीज प्रयोग में लें तथा कलम या कटिंग हेतु स्वस्थ पौधे का चयन करें।
- औषधीय एंव सुगन्धित पौधों की खेती के प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेकर अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

पश्चिमी राजस्थान में ढ़ीगरी मशरूम की खेतीः एक वैकल्पिक व्यवसाय

एस. के. सिंह

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

मशरूम को पोषक और औषधीय गुणों के आधार पर 100 से अधिक देशों में सफलतापूर्वक उगाया जा रहा है। मशरूम भारतवर्ष में एक नया खाद्य पदार्थ है, जिसके विशिष्ट पौष्टिक एवं औषधीय गुणों को जन जन में प्रचारित करने की आवश्यकता है। स्टार्च तथा शर्करा मशरूम में नहीं के बराबर है जिसके कारण यह मधुमेह के रोगियों व मोटापे के शिकार लोगों के लिये उत्तम है। मशरूम में कोलेस्ट्राल विहीन गुणवत्ता वाली कम वसा होती है, इन गुणों के कारण हृदय रोगियों के लिये यह उत्तम आहार है। मशरूम में सामान्य सब्जियों की तुलना में प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है। सूखी हुई ढ़ीगरी और अन्य सूखे मशरूमों में 20 से 30 प्रतिशत तक प्रोटीन होता है। दूध, अण्डा, मांस, मछली, पालक, एवं दालों की तुलना में मशरूम में बहुत ही अच्छी गुणवत्ता वाली प्रोटीन पायी जाती है। मशरूम प्रोटीन की गुणवत्ता मांसाहारी भोजन के बराबर आंकी गयी है।

मशरूम में फॉलिक एसिड़ तथा विटामिन बी काम्पलेक्स के साथ आयरन एवं प्रोटीन भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, परिणामस्वरुप एनीमिया रोगियों के लिये यह दवाई का काम करता है। गर्भवती महिलाओं और बढ़ते हुये बच्चों को मशरूम खाने की सलाह दी जाती है। इसके अलावा मशरूम में पोटैशियम, सोडियम, मैग्नीशियम जैसे लवण प्रचुर मात्रा में होते हैं। विशिष्ट मशरूमों में कैंसर प्रतिरोधक क्षमता, खून में कोलेस्ट्राल, रक्तचाप व ब्लड शुगर कम करने की क्षमता होती है।

मशरूम के कई तरह के व्यंजन घरेलू स्तर पर बनाया जा सकते हैं जिसमें मशरूम चीला, मशरूम पकौड़े, मशरूम अंडा पकौडा, मशरूम ब्रेड पकौडा, मशरूम पुलाव, मशरूम सब्जी, मशरूम आमलेट, मशरूम सैडविच, मशरूम सूप आदि प्रमुख हैं। मशरूम के अनेक चाईनीज पकवान के अलावा मशरूम का संसाधन कर इसे अधिक मूल्य पर बेचा जा सकता है, इसमें उत्तम अचार आदि सम्मिलित है।

मशरूम का उत्पादन फसल काटने के बाद बचे हुये भूसे पर कृत्रिम रूप से बन्द कमरों में किया जाता है। ऐसा अनुमान है कि भारतवर्ष में प्रति वर्ष लगभग 30 से 35 करोड़ टन कृषि अवशेष उत्पन्न होता है तथा इसका लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा (17 टन) खेतों में ही जलाने के लिये अथवा सड़ने के लिये छोड़ दिया जाता है। इसका एक प्रतिशत भी यदि मशरूम उत्पादन के लिये प्रयोग किया जाये जो भारतवर्ष एक प्रमुख मशरूम उत्पादक देश बन सकता है। वर्तमान में हमारे देश में मशरूम की पैदावार 70 हजार टन प्रति वर्ष है, वैसे तो भारत में मुख्यतः बटन मशरूम की खेती की जाती है परन्तु यहाँ पर आयस्टर मशरूम

(*प्लुरोटस*), दूधिया मशरूम (*केलोसाइबी इन्डिका*), धान की पराली पर उगने वाली मशरूम (*वॉल्वेरियेला*) और शिटाके मशरूम (*लेन्टीन्युला इढोढस*) को भी सफलतापूर्वक उगाया जा रहा है।

मशरूम की खेती घर के भीतर करने योग्य एक कृषि लघु उद्योग है और इसे अन्य फसलों के समान खेत की आवश्यकता नहीं होती। अतः यह छोटे, भूमिहीन किसानों एवं गृहणियों के लिये उपयुक्त व्यवसाय है। जिसे अपनाकर बढ़ती हुई बेरोजगारी एवं अपर्याप्त पोषण की समस्याओं को कम किया जा सकता है।

मशरूम के बीज का निर्माण वानस्पतिक प्रवर्धन तकनीक द्वारा किया जाता है। मशरूम के छत्रक से कीटाणु रहित अवस्था में कवक जाल बनाया जाता है। इसके लिये एक अच्छी प्रयोगशाला एवं तकनीकी जानकारी का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिये मशरूम बीज (स्पॉन) किसी सरकारी या गैर सरकारी मशरूम बीज उत्पादक संस्थाओं से ही प्राप्त करना चाहिये।

मशरूम का बीज प्रायः गेंहू के दानों पर बनाया जाता है। गेंहू को उसके दुगुनी मात्रा में पानी डालकर 20–25 मिनट तक उबाला जाता है, अतिरिक्त पानी निकालने के बाद उसे छाया में 2–3 घण्टों तक सुखाया जाता है। इसके पश्चात इन दानों में 2 प्रतिशत जिप्सम (कैल्शियम सल्फेट) तथा 0.5 प्रतिशत चॉक पाउडर (कैल्शियम कार्बोनेट) अच्छी तरह मिला देते हैं। अब इन दानों को ग्लुकोज या दूध की बोतल में लगभग 300 ग्राम प्रति बोतल के हिसाब से भर कर बन्द कर दिया जाता है। अब इन बोतलों को 22 पौंड प्रति वर्ग इंच के दबाव पर ऑटोक्लेव में डेढ़ से 2 घण्टे के लिये रखा जाता है। ऑटोक्लेव से निकाल कर बोतलों को ठण्डा होने के बाद पहले से तैयार शुद्ध कवकजाल संवर्धन को इन बोतलों में डाल देते हैं और 25 डिग्री सेल्सियस पर उष्मायित्र में रख दिया जाता है। इस प्रकार लगभग तीन सप्ताह में मास्टर संवर्धन तैयार हो जाता है।

बीजाई के लिये बीज बनाने हेतु गेंहू उबालने से लेकर रसायन मिलाने तक की प्रक्रिया समान ही होती है, परन्तु कांच की बोतलों की जगह पोलीप्रोपाइलिन के लिफाफों का प्रयोग किया जाता है। इन लिफाफों में 500 ग्राम बीज भर मोटे प्लास्टिक की छल्ले में पिरो लिया जाता है और रुई के ढ़क्कन से लिफाफे के मुंह को बन्द कर दिया जाता है। इसके बाद इन लिफाफों को 22 पौंड प्रति वर्ग इंच के दबाव पर ऑटोक्लेव में डेढ़ घण्टे तक जीवाणु रहित किया जाता है। ठण्डा होने के बाद इन लिफाफों को निजर्मीकृत निवेशन कमरे में ले जाया जाता है। पहले से बनाये गये मास्टर संवर्धन से कुछ दाने प्रत्येक पोलीप्रोपाइलीन के लिफाफे में डाल दिया जाता है। इन लिफाफों को 25 डिग्री सेल्सियस तापमान पर उष्मायित्र में 2–3 सप्ताह के लिये रखा जाता है। यह शुद्ध संवर्धन अब बीजाई के लिये उपयोग में लाये जाते हैं।

ढ़ीगरी या ऑयस्टर मशरूम इस क्षेत्र की सर्वाधिक लोकप्रिय मशरूम है और विश्व मशरूम उत्पादन में इसका बटन और शिटाके मशरूम के बाद तीसरा स्थान है। ढ़ीगरी, आकार में सिप्पीनुमा, बड़े चम्मच, प्लेट

या पंखनुमा होती है जिसे छत्रक कहते है। इस मशरूम की विभिन्न प्रजातियों में छत्रक विभिन्न रंगों जैसे सफेद, भूरा, पीला, गुलाबी, कत्थई आदि का होता है। आज विश्व में ढ़िगरी की कई प्रजातियों का व्यवसायिक उत्पादन हो रहा है जिनमें *प्लुरोटस सेपीडस, प्लुरोटस साजोर काजू, प्लुरोटस फ्लोरीडा, प्लुरोटस फ्लेबीलेटस, प्लुरोटस साईट्रिनोपीलीएटस, प्लुरोटस ऑस्ट्रीएटस* आदि प्रमुख है।

व्यवसायिक स्तर पर ढ़िगरी की खेती अधिकतर उपचारित गेंहू के भूसे पर की जाती है, इसके लिये करीब 90 से 100 लीटर पानी में 10 से 12 किलोग्राम सूखे भूसे को प्लास्टिक या लोहे के ड्रम में भिगो दिया जाता है। साथ ही साथ 10 लीटर पानी में 7.5 ग्राम बाविस्टीन तथा 125 मिलीलीटर फार्मेलीन घोलकर इसे भूसे में मिला दिया जाता है। इसके तुरन्त बाद ड्रम को ढ़क देना चाहिये, करीब 18 घण्टे बाद गीले भूसे को एक साफ जाली पर रखा जाता है जिससे अधिक पानी निकल जाये फिर भूसे को त्रिपाल पर निकाल कर आधे घण्टे के लिये सूखा लिया जाता है।

बीजाई की दर 250 ग्राम तैयार बीज प्रति 10 से 12 किलोग्राम गीले भूसे में मिलाया जाता है। बीजाई थोड़े भूसे को पोलीथीन के थैले में भर कर थोड़ा बीज डालकर फिर भूसा और बीज परत के रुप में डाल दिया जाता है। इस प्रकार 4 किलोग्राम भूसे में 3 से 4 बार बीच बीच में बीज मिलाकर पोलीथीन की थैली को ऊपर से बन्द कर दिया जाता है। इन थैलियों के दोनों कोने नीचे से काट दिये जाते है और बीजाई के बाद हर थैली में सूजे की सहायता से 25 से 30 छेद कर दिये जाते है। बीजाई के बाद भूसे से भरी इन पोलीथीन के थैलों को एक अंधेरे बन्द कमरे में 12 से 18 दिनों के लिये (24–27 डिग्री सेल्सियस) भूसे में मशरूम के कवक जाल को फैलने के लिये यानि स्पॉनरन के लिये लोहे या बांस के रैको में रख दिया जाता है। इस दौरान कवक जाल फैलकर थैलों में छत्रक की शुरुआत करने लगते हैं।

जब मशरूम का कवकजाल पूरी तरह भूसे में फैल जाये तब पॉलीथीन को पूरी तरह हटाकर भूसे के ब्लॉक को उत्पादन कक्ष में रैकों पर रख दिया जाता है और दिन में 2–3 बार पानी से छिड़काव किया जाता है। यदि उत्पादन कक्ष का तापमान 28°C से ज्यादा बढ़ जाये जो फर्श व दीवारों पर पानी का छिड़काव करते रहना चाहिये। स्वच्छ हवा के लिये कमरे की खिड़की को एक से आधे घण्टे के लिये खोल देना चाहिये। 4 से 8 दिनों में मशरूम के छत्रक बनकर बड़े होने लगते है। करीब 7 से 8 दिनों में ये छत्रक तोड़ने लायक हो जाते है। इस प्रकार 4 से 5 बार नये छत्रक बनते है और पहली तुड़ाई के बाद फिर से हर ब्लॉक में नये छत्रक बनते है और बड़े होने पर तोड़ लिये जाते है। एक फसल लगभग डेढ़ महीने तक चलती है। छत्रकों को तोड़ने के बाद ताज़ा ही बाजार में बेचा जा सकता है।

राजस्थान की जलवायु में ढ़िगरी की खेती प्रायः अक्टूबर से फरवरी तक आसानी से की जा सकती है। ठण्डे मौसम में *प्लुरोटस ऑस्ट्रीएटस, प्लुरोटस फ्लोरीडा, प्लुरोटस कार्नुकोपिया* तथा *प्लुरोटस ऐरेन्जोई* तथा

गर्मियों में (20°C से 28°C) में *प्लुरोटस सेपीडस, प्लुरोटस फ्लेबीलेटस, प्लुरोटस साजोर–काजू, प्लुरोटस साईट्रिनोपीनीएटस* तथा *प्लुरोटस मैमब्रेनेसियस* आसानी से उगायी जा सकती है।

शुष्क क्षेत्रों में कृषि प्रणालियों के वृक्षों पर लगने वाले कीटों का प्रबंधन

निशा पटेल

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

शुष्क क्षेत्रों में वृक्ष कृषि प्रणालियों का अभिन्न हिस्सा होते हैं. वृक्ष भूमि क्षरण को रोकते हैं और फसलों का गर्म हवाओं से बचाव करते हैं. खेतों में फसल के साथ आमतौर पर किसी प्रकार की झाड़ियों या वृक्षों का भी समावेश किया जाता है जिससे विविधतापूर्ण, लाभप्रद, स्वस्थ एवं टिकाऊ भूमि–उपयोग सुनिश्चित होने के साथ साथ कृषकों को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। वर्षा न होने या कम होने की स्थिति में फसलों से उपज प्राप्त नहीं हो पाती परन्तु वृक्षों से खाने के लिए फल अथवा सब्जी, पशुओं के लिये चारा और छाया, औजारों के लिए लकड़ी, ईंधन आदि प्राप्त हो जाते हैं बेर एवं खेजड़ी की पत्तियां पौष्टिक होने के कारण दुधारू गायों और बकरियों को खिलाई जाती है। वृक्षों के स्वस्थ्य और उत्पादकता पर कई कारकों का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कीटों और बीमारियों से होने वाला नुकसान उनमें से एक प्रमुख कारक है। बीज अंकुरण और पौध की अवस्था से लेकर बड़े होने तक वृक्षों पर विभिन्न प्रकार की बीमारियों और कीड़े का आक्रमण होता है। इस लेख में शुष्क क्षेत्रों में कृषि प्रणालियों में आमतौर पर लगाये जाने वाले पेड़ों पर लगने वाले कीड़ों की पहचान, उनके नुकसान के लक्षण एवं उनके उपयुक्त नियंत्रण उपायों के बारे में जानकारी दी गई है।

वृक्षों को नुकसान पहुँचाने वाले प्रमुख कीट

इस क्षेत्र में आम तौर पर खेतों में फसलों के बीच या बाड़ों पर बेर, खेजड़ी, अनार, नीम कुमट और गोंदा के पेड़ लगाये जाते हैं. इन वृक्षों पर कई प्रकार के कीटों का आक्रमण होता है। कुछ कीट वृक्षों को अत्यधिक नुकसान पहुंचाते हैं वहीं कुछ द्वारा पहुंचाया गया नुकसान अनदेखा किया जा सकता है। इस क्षेत्र के अधिकतर कीट बहुभक्षी अर्थात कई प्रकार का भोजन करने वाले होते हैं और अनेक प्रकार के पौधों को नुकसान पहुंचाते हैं। वृक्षों पर आक्रमण करने वाले प्रमुख कीड़े हैं दीमक, सफेद लट, मीली बग, फुदका, चेपा, फड़के, टिड्डे, सफेद मक्खी, छाला भृंग और फल मक्खी। नुकसान पहुँचाने वाले कीटों को ठीक से पहचानना और उनके भोजन जीवन चक्र आदि के बारे में जानना इनको प्रभावी ढंग से नियंत्रित करने की दिशा में पहला कदम हैं। यहाँ पर वृक्षों पर लगने वाले प्रमुख कीड़ों एवं उनके नियंत्रण के बारे में उपाय दिए गए हैं।

दीमक

दीमक सफेद मटमैले कोमल शरीर वाले कीड़े हैं जो जमीन में बहुत बड़े समूहों में रहते हैं। कुछ लोग इन्हें सफेद चींटियाँ भी कहते हैं। हालांकि, दीमक चींटियाँ नहीं हैं। दीमक का भोजन मुख्य रूप से सेल्यूलोस नामक पदार्थ होता है जो पेड़ पौधों में और लकड़ी में मिलता है। ये पौधों की जड़ों को खा जाते हैं जिससे पौधे मुरझा कर सूख जाते हैं। पौधों में पानी की कमी या सूखे की अवस्था में इनका आक्रमण अधिक होता है। दीमक का प्रकोप वर्षा की कमी या देरी से अधिक बढ़ जाता है। कीट जमीन में सुरंग बनाकर पौधों की जड़ों को खाते हैं। प्रकोप अधिक होने पर ये तने को भी खाते है तथा नर्सरी में छोटी अवस्था में दीमक के हमले के कारण कई पौधे सूख कर खत्म हो जाते हैं. बड़े हो जाने के बाद दीमक के कारण पेड़ों के खत्म होने की संभावना कम होती है हालांकि ऐसे पेड़ों पर अक्सर दीमक द्वारा बनाई मिटटी की गैलरी दिखाई देती हैं। जिन क्षेत्रों में दीमक की समस्या हमेशा होती हो वहां पौधे लगाने से पूर्व नियंत्रण के उपाय शुरू कर देने चाहिए। यदि पौधे स्वस्थ होते हैं तो दीमक से उनके मरने की सम्भावना कम रहती है। मिट्टी में नमी की पर्याप्त मात्रा भी छोटे पौधों को सुरक्षा प्रदान करती है। दीमक प्रतिरोधी या सहिष्णु किस्मों के उपयोग से इस कीट से बचा जा सकता है। मिट्टी में नीम, तुम्बा या अरंडी की खल डालने से दीमक की समस्या कम होती है।

प्रबंधन

- दीमक के नियंत्रण के लिए उपचार पौध लगाने से से पहले या साथ ही शुरू कर लेना चाहिए. पौध लगाने के स्थान पर अच्छी तरह सड़ी हुई खाद ही डालना चाहिए क्योंकि यदि खाद ठीक प्रकार से सड़ी हुई न हो तो वह भी दीमक को आकर्षित करती है।
- नर्सरी में बीज लगाने से पहले बीजोपचार करना चाहिए जो पौधों की प्रारंभिक अवस्था में दीमक व मिटटी में रहने वाले कीटों से पौधों को बचाता है। बीजोपचार के लिए 4 मिली लीटर क्लोरपायरीफॉस 20 इ सी या 10 मिली लीटर इमिडाक्लोप्रिड 600 एफएस प्रति किलो बीज के हिसाब से बीज में मिलाकर बीजों को छाया में सुखा लेना चाहिए।
- जिन क्षेत्रों में में दीमक की स्थाई समस्या हो वहां पर बुवाई से पहले भूमि उपचार करना आवश्यक है. जमीन में २५ किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से एंडोसल्फान या क्लोरपायरीफॉस पाउडर भूमि में डालना चाहिए ।
- अगर खेत में दीमक लग जाए तो जहाँ दीमक लगी हो फसल के उस हिस्से में ही कीटनाशी जैसे क्लोरपायरीफॉस का प्रयोग करें, पूरे खेत में नहीं।
- जहाँ सिंचाई की सुविधा हो खड़ी फसल में सिंचाई के पानी के साथ क्लोरपायरीफास २० इ सी ४ लीटर प्रति हेक्टेयर डालें.

सफेद लट

सफेद लट के वयस्क नीम, खेजड़ी, बेर, आदि के पत्तों को खाकर नुकसान पहुचाते हैं। इसकी लटें खरीफ की करीब करीब सभी फसलों जैसे मूंग मोठ बाजरा आदि की जड़ों को खाकर हानि पहुंचाती है। इसका प्रकोप जून–जुलाई में अधिक होता है मानसून की पहली तेज बारिश होते ही रात को खेतों में जमीन से निकलते हैं तथा आस–पास के वृक्षों पर बैठ जाते हैं। कुछ समय तक प्रजनन की क्रिया करने के बाद पत्तों को खाना शुरू कर देते हैं। यह पेड़ों की नई पतियों एवं प्ररोहो को नुकसान पहुँचाता है इससे पत्तियों में छिद्र हो जाते है। दिन में मादा प्रौढ़ जमीन में पहुंचने के बाद अंडे देने का कार्य करती हैं। अंडों से 7 से 10 दिन के बाद पहली अवस्था के लट निकल आते हैं और करीब 10–15 दिन बाद दूसरी अवस्था की लट बनकर फसलों की जड़ों को तेजी से खाना शुरू कर देते हैं, जिससे पौधा सूखकर मर जाता है। यह कीट 3–4 सप्ताह तक दूसरी अवस्था में रहने के बाद तीसरी अवस्था की अंग्रेजी के (सी) अक्षर के आकार की लट बन जाती है जो फसलों की जड़ों के फैलाव क्षेत्र तक पहुंच जाती हैं। इस अवस्था में इस कीट को मारना कठिन कार्य है। यह अवस्था करीब छह सप्ताह तक रहती है। उसके बाद ये लटें प्यूपों में बदल जाती हैं और करीब 2–3 सप्ताह के बाद प्रौढ़ बन जाती हैं।

रोकथाम : सफेद लट की रोकथाम सामूहिक तौर पर करनी चाहिए। एक क्षेत्र के व्यक्ति अपने खेतों के आस–पास वृक्षों पर बैठे प्रौढ़ों को प्रथम बरसात के बाद डंडों से हिलाकर नीचे गिरा लें। उन्हें एकत्र कर मिट्टी के तेल या कीटनाशी मिले पानी में डालकर मार दें। इसके नियंत्रण के लिए पहली वर्षा के तुरन्त बाद वृक्षों पर कीटनाशी क्यूनालफास 25 ईसी 2 मिली या कार्बेरिल 50 डब्लूपी 3 ग्राम प्रतिलीटर पानी में घोल बनाकर फुट स्प्रेयर पंप की सहायता से छिड़काव करें।

मीली बग

मीली बग रूई के जैसे दिखने वाले मुलायम अंडाकार शरीर वाले रस चूसने वाले कीट होते हैं। वयस्क मीली बग पत्तियो, तनो एवं जड़ों को सफेद मोम पाउडर जैसे पदार्थ से ढंक देते हैं। यह अपने चूसने वाले मुखांगो की सहायता से पत्तियो व तनों से बड़ी मात्रा मे रस चूसकर पौधो को आवश्यक पोषक तत्वो से वंचित कर देता है। यह कीट अतिरिक्त रस को मधुरस जैसे चिपचिपे पदार्थ के रूप मे मलत्याग के द्वारा बाहर निकालता है जो काली फफूंद को भी बढ़ावा देता है और इससे पौधे की प्रकाश संश्लेषण क्रिया पर विपरित प्रभाव पड़ता है। पत्तियां सिकुड़ कर मुड़ जाती है एवं पौधा पीला पड़कर सूखने लगता है परिणामस्वरूप उपज बहुत कम या निम्न गुणवत्तायुक्त होती है। प्रकोपित फल बाजारो मे बेचने योग्य नही रहते।

इस कीट का सर्वाधिक प्रकोप अगस्त से नवंबर माह के बीच अक्सर देखा जाता है। यह कीट शीत ऋतु में अण्डा अवस्था में सुशुप्तावस्था में रहता है। इस दौरान यह भूमि में या तने की छाल के अंदर या मुड़ी हुई पत्तियों में जीवित रहता है। इस कीट की मादा अण्डे सामान्यतः टहनियो, शाखाओ, या पोषक पौधो की छाल के अंदर अंड थैलियो मे देती है जो कि सफेद मोम जैसे पाउडर संरचना से ढंकी रहती है। प्रत्येक अंड थैलियो में लगभग 500 तक अण्डे हो सकते है। इस कीट की वर्ष मे लगभग 10–15 पीढीयाँ पायी जाती है। चीटियां मिली बग द्वारा स्त्रावित मीठा मधुरस से आकर्षित होती हैं और मिली बग के विकास एवं परिवहन मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। ये मिली बग को खाने वाले परजीवी, परभक्षी या प्राकृतिक शत्रुओं से भी मीली बग की रक्षा करती है।

नियंत्रण के उपाय : मीली बग का शरीर मोम की परत से ढंका रहता है जिसकी वजह से इन पर कीटनाशियो का असर कम होता है। इसलिये इनका समन्वित नियंत्रण करने की आवश्यकता होती है –

इनके रोकथाम के लिये जुलाई से सितंबर के मध्य पौधो के आसपास गुड़ाई करना चाहिये एवं क्लोरपायरीफास चूर्ण 50 ग्राम प्रति पौधे की दर से मिटटी मे मिलाना चाहिये जिससे अंडे नष्ट हो जाये। खेतो में उपस्थित पूर्व फसलों या ग्रसित पौधो के अवशेषो को जलाकर नष्ट कर देना चाहिये। खरपतवार जो कि इसके पोषक पौधों का काम करते है इन्हे उखाड़कर नष्ट करना चाहिये। अंडो को नष्ट करने के लिये खेतो मे सिंचाई करना चाहिये। वृक्षो के प्रकोपित शाखाओ को कांट–छांट कर हिलाये बगैर नष्ट करना चाहिये। प्रकोपित खेतो से दूसरे खेतो मे औजारो को प्रयोग करने से पहले अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये। प्रकोप की शुरूवाती अवस्था मे हाथो द्वारा या साबुन डिटरजेंट युक्त पानी के तेज फुहारो से इसकी रोकथाम की जा सकती है क्योंकि तेज फुहारो से यह नीचे जमीन पर गिरेंगे जिन्हे एकत्रित कर नष्ट किया जा सकता है।

वृक्ष की तनो पर कीट को चढ़ने से रोकने के लिये प्लास्टिक का चिपचिपा पट्टी या कीटनाशी युक्त पट्टी लगाना चाहिये। फसल कटाई के बाद खेतो मे गहरी जुताई करना चाहिये। चीटियों के समूहो को भी नष्ट करते रहना चाहिये। इस कीट के कई प्राकृतिक शत्रु हैं जो इनका प्रभावी तरीके से नियंत्रण करते हैं। इनके संरक्षण से मीली बग की संख्या आर्थिक क्षति स्तर के ऊपर नही जा पाती है।

चेपा (एफिड)

वृक्षों पर लगने वाले प्रमुख कीड़ों में से एक है चेपा, यानी अफिड्स इस कीट को माहू या मोयला भी कहा जाता है। एफिड छोटे, नाशपाती के आकार के, कोमल शरीर वाले, हरे, पीले, भूरे या काले रंग के कीट होते हैं। पौधों पर ये बड़ी संख्या में मिलते हैं। ये पत्तियों व अन्य कोमल भागों से रस चूसकर पौधों को हानि पहुंचाते हैं। ये एक मीठा पदार्थ मधुबिन्दु भी स्रावित करते हैं जिसे अंग्रेजी में हनीड्यू कहते हैं जिससे

पत्तियों पर चिपचिपाहट हो जाती है। इस पदार्थ पर काली फफूंद लगने से पौधों की भोजन बनाने की क्षमता प्रभावित होती है और उनकी उत्पादकता बहुत कम हो जाती है, पौधे मुरझा कर सूखने लगते हैं। ये पौधों में वायरस भी संचारित करते हैं जिनसे पत्तिया सिकुड़ जाती हैं या पीली पड़ जाती हैं। आम तौर पर वयस्क एफिड पंखहीन होते हैं, पर जब उनकी संख्या काफी बढ़ जाती है तब वे पंखों सहित भी मिलते हैं। गर्म मौसम में अवयस्क एफिड सात–आठ दिनों में वयस्क बन जाते हैं। हर वयस्क एफिड अनुकूल मौसम में करीब 80 संतानें पैदा कर सकता है जिसके कारण इनकी संख्या तेजी से बढ़ती है। इनकी एक साल में कई पीढ़ियाँ होती हैं। यदि मौसम बादलों वाला हो तो कीटों की संख्या तेजी से बढ़ती है।

प्रबंधन :

- नाइट्रोजन वाली खाद जैसे यूरिया आदि का अधिक उपयोग करने से चूसने वाले कीड़ों का प्रकोप ज्यादा होता है अतः नाइट्रोजन खाद का अधिक प्रयोग न करें।
- अधिक प्रकोपित पत्तों हिस्सों को निकाल कर नष्ट कर दें।
- इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 1 मि.ली./3 लीटर या डाइमेथोएट 30 ई.सी. 2 मि.ली./लीटर या क्विनलफॉस 25 ई.सी. 2 मि.ली/लीटर का छिड़काव करें।
- लेडी बर्ड बीटल नाम का भृंग चेपा को खाकर उसकी संख्या कम करता है इसलिए लेडी बर्ड भृंग का संरक्षण करें।

फुदके या जेसिड्स

जेसिड तैला या फुदका पत्तियों का रस चूसने वाले छोटे आकार के हल्के हरे या भूरे रंग के कीड़े होते हैं। इनकी चाल से इनको पहचाना जा सकता है क्योंकि ये तिरछे चलते हैं. इनके मुखांग छेदने और चूसने वाले होते होते हैं वयस्क एवं अवयस्क पत्तों की निचली सतह से रस चूसते हैं, जिसके कारण पत्तियां पीली हो जाती हैं और ऊपर की ओर मुड जाती हैं। पत्तियों का आकार कप जैसा हो जाता है और किनारे जले हुये से दिखते हैं। यह जेसिड्स का विशेष लक्षण है प्रभावित पत्ते बाद में लाल रंग के भुरभुरे होकर झड़ जाते हैं। गर्म, शुष्क मौसम में इनकी संख्या काफी बढ़ जाती है। जैसिड वायरस और माइकोप्लाज्मा जैसे रोगों को फैलाते हैं इनके वयस्क तथा छोटी अवस्था वाले कीट निम्फ पत्तों के दोनों ओर की निचली तरफ से रस चूसते हैं जिसके कारण पौधे कमजोर हो और उनकी बढ़त रुक जाती है।

प्रबंधन :

- बीजों का इमिडाक्लोप्रिड से उपचार करें। ये लगभग प्रथम 45 दिनों तक पौधे को कीट प्रकोप से बचाती है।

- फूल आने से पहले की अवस्था में इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 1 मि.ली./3 लीटर या डाइमेथोएट 30 ई.सी. 2 मि.ली./लीटर का छिड़काव करें। १० दिनके अंतराल पर दोहराएं।

सफेद मक्खी (वाइट फ्लाई)

सफेद मक्खी बहुत छोटे आकार का कीट होती है। वयस्कों की लंबाई लगभग 1.5 मिमी होती है इनके पंखों और शरीर पर सफेद पाउडर सा पदार्थ चिपका होता है सफेद मक्खी ज्यादातर पत्तियों की निचली सतह पर पाई जाती है। यदि पौधों को हिलाया जाये तो उस पर से कई छोटे छोटे सफेद कीट उड़ते दिखाई देते है। इस कीट के वयस्क एवं छोटी अवस्था दोनों ही पत्तों से रस चूसते हैं जिसके कारण उत्पादकता कम हो जाती है। इनके अवयस्क जिन्हें निम्फ कहते हैं पत्तियों से चिपक कर लगातार उनका रस चूसते रहते हैं। सफेद मक्खी के आक्रमण से पत्तियां पीली पड़ जाती हैं एवं मुड़ जाती हैं। इनके द्वारा मीठे द्रव्य के स्राव के कारण पत्तियों पर काली फफूंद लग जाती है जिस से प्रकाश संश्लेशण कम हो जाता है और पौधों की भोजन बनाने की क्षमता कम हो जाती है। यह कीट वायरस जनित पत्ती मोडक रोग भी फैलाता है इनकी एक साल में कई पीढ़ियाँ होती हैं। गर्म मौसम में इनकी संख्या तेजी से बढ़ती है।

प्रबंधन : इनके प्रबंधन का सबसे अच्छा तरीका है प्रबंधन की विभिन्न तकनीकों का समावेश। जिसमे शामिल है उपयुक्त किस्म का चयन, फसल चक्र अपनाना, उचित शस्य क्रियाएं समय पर अपनाना, उचित पोषक तत्व और जल प्रबंधन। श्वेत मक्खी प्रकोप अगस्त–सितंबर के दौरान सूखे मौसम की स्थिति में अधिक होता है। कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से बचना चाहिए। नीम उत्पादों का छिड़काव इनका प्रजनन कम कर देता है जिससे श्वेत मक्खी को नियंत्रित करने में मदद मिलती है। इसलिए इसके छिड़काव करना चाहिए। फसल की नियमित निगरानी से इनके नियंत्रण में मदद मिलती है। नीम बीज अर्क (4 प्रतिशत) या डाइमेथोएट 30 ई.सी. 2 मि.ली./लीटर या मिथाइल डेमिटोन 30 ई. सी. 2 मि.ली/लीटर या इमिडाक्लोप्रिड 200 एस एल 0.3 मि.ली./ प्रति ली पानी का छिड़काव करें।

फड़के

फड़के जिन्हें अंग्रेजी में ग्रास हॉपर कहते हैं भी कई बार फसलों और वृक्षों को काफी नुकसान पहुंचाते हैं। फड़का एक बहु भक्षी कीट है, जिसका प्रजनन रेतीली जमीन में ज्यादा होता है। मादा भुरभुरी भूमि में उपयुक्त स्थान मिलने पर अपने अंड रोपक को जमीन में डाल कर झागदार द्रव्य निकाल कर अंडकोष का निर्माण करती है। एक अंडकोष में 60–100 तक अंडे होते है। इसके बाद पुनरू मादा पुनरू अंडों के ऊपर झागदार द्रव्य निकालती है। पिछली टांगों से मिट्टी डाल कर सतह को बराबर कर देती है, जिसे अंड पिंड कहते है। प्रत्येक मादा इस प्रकार के दो तीन अंड पिंड रखती है। इन अण्डों से शिशु कीट निकल कर आस पास उपलब्ध वनस्पति पर आक्रमण शुरू कर देता है। फड़का अवयस्क और प्रौढ़ दोनों ही अवस्था में

फसल को नुकसान पहुंचाता है। खरीफ एवं रबी की फसल कट जान के बाद मिट्टी पलटने वाल हल से गहरी जुताई करना चाहिए। खेत में 30–40 से.मी चौड़ी तथा 60 सेमी गहरी खाई बना कर इस कीट को प्रारंभिक अवस्था में नियंत्रित किया जा सकता है। 25 किलो क्यूनालफोस 1–5 प्रतिशत चूर्ण प्रति हैक्टर से भुरकाव कर इस कीट का अन्त किया जा सकता है।

फल मक्खी

यह कीट बेर को सबसे अधिक नुकसान पहुँचाता है। इस मक्खी की वयस्क मादा फलों के लगने के तुरन्त बार उनमें अण्डे देती है। ये अण्डे लार्वा में बदल कर फल को अन्दर खा कर से नुकसान पहुँचाते है। इसके आक्रमण से फल का गूदा सड़ जाता है और फल खाने योग्य नहीं रहता। इसके आक्रमण से फलों की गुठली के चारों ओर एक खाली स्थान हो जाता है तथा लटे अन्दर से फल खाने के बाद बाहर आ जाती है। इसके बाद में मिट्‌टी में प्यूपा के रूप में छिपी रहती है तथा कुछ दिन बाद व्यस्क बनकर पुनः फलों पर अण्डे देती है। इसकी रोकथाम एवं नियंत्रण के लिए मई–जून में बाग की मिट्‌टी पलटे। फल लगने के बाद जब अधिकांश फल मटर के दाने के साइज के हो जाए उस समय क्यूनालफास 25 ईसी 1 मिलीलीटर प्रतिलीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। दूसरा छिड़काव पहले छिड़काव के 20–25 दिन बाद करें।

छाल भक्षी कीट

छाल भक्षी कीट अनेक वृक्षों को नुकसान पहुंचाता है। कीट बरसात के मौसम में अंडे देता है, जिसमें से निकल कर छोटी लटें शाखाओं के कोण तक पहुँचती हैं। यहाँ से अन्दर घुस कर रात को छाल को अन्दर से खाती रहती है। जिस स्थान से मुख्य तने से शाखाएं जुडी होती हैं वह कमजोर हो जाता है। पूरी शाखा में भोजन की आपूर्ति में रुकावट के कारण सूख जाती है और फल आने पर अधिक बोझ के कारण टूट जाती हैं। शाख और तने वाले जोड़ पर कचरे से भरे हुए जाले से पेड़ पर इस कीड़े का प्रकोप आसानी से पहचाना जा सकता है. जाला हटा कर छेद को साफ करके उसके अन्दर लोहे का तार डाल के इस कीट की लटों को मारा जा सकता है।

छेद के आसपास छाल को साफ करके उसमे इंजेक्शन द्वारा या रुई के फाहे के माध्यम से कीटनाशक डाला जा सकता है। इसके बाद छेद को हमेशा मिट्टी या या किसी अन्य सामग्री के साथ बंद कर देना चाहिए ताकि कीटनाशी का असर बेहतर हो। यह कीट नई शाखाओं के जोड़ पर छाल के अन्दर घुस कर जोड़ को कमजोर कर देता है फलस्वरूप वह शाखा टूट जाती है, जिससे उस शाखा पर लगे फलों को सीधा नुकसान होता है। इसकी रोकथाम के लिए खेत को साफ सुथरा रखे, गर्मी में पेड़ों के बीच में गहरी जुताई करें। जुलाई–अगस्त में डाइक्लोरवास 76 ईसी 2 मिलीलीटर प्रतिलीटर पानी में घोल बनाकर नई शाखाओं के जोड़ों पर दो–तीन बार छिड़काव करना चाहिए।

नीम आधारित कीटनाशी

नीम प्रकृति की एक अनमोल देन है इस वृक्ष में अनेकों प्रकार की औषधियाँ हैं, इसके पत्तों और बीजों में कई प्रकार के कीटनाशक तत्व है। रासायनिक कीटनाशकों की तुलना में नीम से बने कीटनाशक बेहतर होते हैं। क्योंकि यह पर्यवरण को दूषित नहीं करते रसायनिक कीटनाशक शत्रु कीटों के अलावा मित्र कीटों को भी खत्म कर देते हैं जिससे प्राकृतिक असंतुलन पैदा होता है। आधुनिक कीटनाशक बहुत लम्बे समय तक अपघटित नहीं होते जिससे वे मृदा और जल स्त्रोतों को प्रदूषित खाद्य श्रृंखला में दीर्घजीवी होने के कारण आज सारी पृथ्वी और उसके जलस्रोत प्रदूषित हो चुके हैं। परंतु नीम ऐसा प्राकृतिक कीटनाशक है, जो अपना काम करने के बाद शीघ्र ही अपघटित हो जाता है तथा पृथ्वी की उर्वरता शक्ति बढ़ा देता है।निम्बौली को घर में इस्तेमाल होने वाले बिजली से चलने वाले मिक्सर/ग्राइंडर से या चूने के लेप और मुसली का प्रयोग करते हुए बारीक कूट लें। निम्बौली से छिलके को अलग करने के लिए ओसाई करें। कूटी गई निम्बौली को छलनी से छान लें। छानने के बाद इस पाउडर को 100 ग्रा. 30 मि.ली के अनुपात में पानी के साथ मिला लें। फिर सहयोजक (साबुन/डिटर्जेन्ट पाउडर) को इस मिश्रण में प्रत्येक 100 ग्रा. के निम्बौली के पाउडर में 5 मि.ली./ग्रासहयोजक के अनुपात में मिला दें। इस मिश्रण को रातभर रखें। सुबह इसे हिलाते हुए मलमल के कपड़े से छान लें। मलमल के कपड़े पर बचे अवशेष के माध्यम से इतना पानी गुजारा जाना चाहिए कि छान में निम्बौली के पाउडर और जल का अनुपात 2 लीटर पानी में 100 ग्राम पाउडर रह जाए। इस छान को फिर से हिलाएं जिससे कि निम्बोली सत (एनएसकेई) का क्रीमी विक्षेपण प्राप्त हो सके जिससे कि छिड़काव किया जा सकता है। छिड़काव शाम के समय किया जाना चाहिए जबकि यूवी किरणों की तीव्रता कम होती है और पूरी पत्तियों पर छिड़काव किया जाना अनिवार्य है।

निम्बौली सत् (एनएसकेई) बनाने की विधि

निम्बौली बारीक कूट लें ↓ कपड़े में बांधकर रातभर पानी में भिगो दें ↓ सुबह इस घोल को बारीक कपड़े से छान लें ↓ इस घोल का छिड़काव करें ↓ एक हैक्टेयर के लिएः 25 कि.ग्रा. निम्बौली ↓ 500 लीटर पानी + 5 कि.ग्रा. साबुन/सर्फ

अपने खेत पर में लाभप्रद कीड़ों को प्रोत्साहित करें एंव बढाएं

सभी कीट और मकड़ियाँ हमारे शत्रु नहीं होते हैं बल्कि कई कीट हमारे लिये इतने आवश्यक होते हैं कि उनके बिना हमारा अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है। आमतौर पर हमारे घरों बगीचों और खेतों में दिखाई देने वाले सभी कीट प्रजातियों में से सिर्फ ३ प्रतिशत से कम ही हमें नुकसान पहुंचने वाले होते हैं शेष 97 प्रतिशत से अधिक या तो लाभकारी कीट होते हैं या फिर साधारण कीट जो न तो हानिकारक है और न ही फायदेमंद हमारे बगीचों और खेतों में सामान्यतः प्राकृतिक दुश्मन या लाभदायक कहे जाने वाले कीड़ों को

बढ़ावा देना और इन स्थानों को उनके के लिए निवास स्थान के रूप में विकसित करना, नुकसान पहुंचाने वाले कीड़ों के समस्याओं को कम करने का एक बढ़िया तरीका है। कई कीड़े महत्वपूर्ण परभक्षी हैं और नुकसान पहुँचाने वाले कीटों को खा जाते हैं। हमारे खेतों और बगीचों को स्वस्थ रखने के लिए और अधिक उपज के लिए आवश्यक है कि हम अपने मित्र और दुश्मन कीटों को पहचानें और ऐसी परिस्थितियां बनाएं जो लाभप्रद कीड़ों को बढ़ावा दें। इनकी मदद से नुकसान पहुंचने वाले कीड़ों की संख्या कम करें। हमारे खेतों में आमतौर पर मिलने वाले प्रमुख मित्र कीट है लेडी बर्ड भृंग, लेस विंग कीट, सिर्फइड मक्खी ,मकड़ियां आदि।

लेडी बर्ड बीटल के वयस्क, बगीचों और खेतों में अक्सर दिखने वाले नारंगी या लाल पर काली धारियों वाले कीट लेडी बर्ड बीटल कहलाते हैं। इनके वयस्क और लार्वा दोनों ही परभक्षी होते हैं और कई प्रकार के कीड़ों जैसे लटों, चेपा जैसिड, मीली बग, सफेद मक्खी, विभिन्न कीटों के अंडो और पौधों को नुकसान पहुंचाने वाली मकड़ियों को अपना भोजन बनाते हैं। वयस्क फूलों के रस (नेक्टर) और पराग की ओर आकर्षित होते हैं।

लेस विंग कीट इनके पंख लगभग 3 से 4 इंच लम्बे और हरे या भूरे रंग के पारदर्शी होते हैं और जिसमें नसें दिखाई देती हैं. इस मक्खी के वयस्क फूलों परागण करते हैं और इसके लार्वा छोटे हानिकारक कीटों को खाते हैं। इनके लार्वा भूरे या हरे रंग के होते हैं और उन पौधों पर होते हैं जहाँ रस चूसने वाले छोटे छोटे कीटों की अधिक संख्या होती है।

सिर्फिड माक्खिया किसानों की मित्र कीट होती हैं। वयस्क सिर्फिड के पेट पर काले और पीले या सफेद धारीदार घेरे जैसे बने होते हैं। देखने में ये, मधु मक्खी और या ततैये जैसे दिखती हैं। सिर्फिड मक्खिया खेतों और बगीचों में रस चूसने वाले कीट जैसे चेपा, जैसिड, छोटे आकार की लट और मीलीबग आदि का नियंत्रण करती हैं।

मकड़ियां सभी प्रकार के पौधों पर विविध तरह की मकड़ियां रहती हैं और ये प्रचुर मात्रा में विभिन्न तरह के हानिकारक कीटों को अपना भोजन बनाती हैं।

परभक्षी बर्र पीले बर्र अनेक कीटों को अपना शिकार बनाते हैं जिन्हें कि नाशीजीव माना जाता है। प्रत्येक सामाजिक बर्र कालोनी में एक रानी और अनेक मादा कमेरी शामिल होती हैं और अनेक प्रकार की बांझ रानियां भी होती हैं। कॉलोनी का आकार और संरचना भिन्न–भिन्न होती है और यह कुछ दर्जन से लेकर अनेक हजारों तक हो सकती हैं।

मित्र कीटों को कैसे प्रोत्साहित करें ?

- वनस्पति की विविधता द्वारा मित्र कीटों को प्रोत्साहित करें। अपने खेत पर देशी पौधे उगायें, विशेषकर जिन पर अधिक मात्रा में फूल आते हों जैसे खेजड़ी कुमट, मेहन्दी, बेर।
- लाभकारी कीटों के आश्रय के रूप में फसल के चारों ओर देसी घास की पट्टी विकसित करें।
- पानी उपलब्ध कराएं, लाभप्रद कीड़ों को आकर्षित करने एवं जीवित रखने के लिए पानी की व्यवस्था करना एक सरल उपाय है। किसी कम गहरे बर्तन में पानी भर कर रखने से कई प्रकार के लाभप्रद कीड़ों को खेत में आकर्षित किया जा सकता है।
- बिना जरुरत के या पहले से तयशुदा कार्यक्रम के हिसाब से कीटनाशियों का छिड़काव न करें।
- खेतों में उपलब्ध झाड़ियाँ, फसलों के अवशेष सूखी पत्तियां आदि लाभकारी कीटों के लिए छिपने के लिए एक उपयुक्त स्थान उपलब्ध कराते हैं, इसलिए खेतों में अत्यधिक साफ सफाई न रखकर कुछ मात्रा में झाड़ियाँ और फसल अवशेष आदि रहने दे।

जैविक सूत्रीकरण से रोग नियंत्रण

ऋतु मावर

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

देश की बढती हुई जनसंख्या के कारण कृषि की दृष्टि से आजकल शुष्क क्षेत्रों को महत्वता दी जा रही है। इन क्षेत्रों में बाजरा, ज्वार, मोठ, ग्वार, मूंग, जीरा, इसबगोल, सरसों आदि फसलों का उत्पादन होता है। लगभग 50 प्रतिशत फसलों को नुकसान भूमि जनित रोगों जैसे जडगलन, बीज गलन, उखटा रोगों से होता है। फसलों में लगे इन रोगों के कारण पैदावार घट जाती है। बीजजनित तथा भूमि जनित रोग *मेक्रोफोमिना फेजीयोलीना, फ्यूजेरियम, गेनोडर्मा* व *राइजोकटोनिया* आदि फफूंदो से होते है। शुष्क जड़ गलन रोग *मेक्रोफोनिमा फेजीयोलीना* नामक फफूंद के आक्रमण से होता है, जो इस क्षेत्र की फसलों जैसे ग्वार, चवला, मूंग, मोठ, तिल, ज्वार आदि की काफी नुकसान (40 प्रतिशत) पहुंचता है। यह रोग भूमि में पानी की कमी होने पर ज्यादा उग्र मात्रा में फैलता है। इस रोग के जीवाणु भूमि की 60 सेन्टीग्रेड तक भी आराम से रह जाते है। इसकी रोकथाम के लिये रोग ग्रसित खेतों में जैविक या कार्बनिक खाद मिलाना एक प्रमुख उपाय है। अभी इस रोग के लिये अधिकतर फसलों में रोग रोधक किस्में उपलब्ध नहीं है। इन वर्षो में ऐसे अनेकानेक तरीके विकसित किये है जिनके प्रयोग से उपयुक्त समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। फसल चक्र, भूमि सौरीकरण, जैविक नियंत्रण, गर्मी की जुताई, प्रतिरोधक किस्में, रासायनिक विधि के इस्तेमाल से इन समस्याओं से मुक्ति पाई जा सकती है। रासायनिक विधि के अधिक प्रयोग से किसानों को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। रासायनिक विधि के विकल्प के रूप में जैविक खाद का उपयोग किया जा सकता है। प्रकृति ने समस्याएं दी है तो समाधान के रास्ते भी स्वय ही दिये है, जिसे वैज्ञानिक तरीकों की मदद से उपनाये जा सकते है। इन्हे हम जैविक नियंत्रण का नाम देते है। मिट्टी में ही कुछ ऐसे फफूंद तथा जीवाणु पाए जाते है जो कि भूमि जनित तथा बीज जनित रोगों से पौधों की रक्षा करते है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में किये गये अनुसंधान परीक्षणों से सरसों प्रजाति के अवशेषों को तेज गर्मी के दौरान जमीन में मिलाने व एक सिंचाई देने से इस रोग के रोकथाम की एक नई तकनीक का विकास किया गया है। उसी दौरान सरसों के अवशेष युक्त मिट्टी में एक जीवाणु – *बेसीलस फरमस* को खोजा गया जो *मेक्रोफोमिना* फफूंद की वृद्धि को रोकता है। पिछले कई वर्षो में इस जीवाणु के रोग व फसल की उपज पर प्रभाव देख कर एक और ठोस तकनीक का विकास किया गया है। यह विश्व में पहली खोज हैं। काफी परीक्षणों के पश्चात इस जीवाणु का जैविक सूत्रीकरण बनाया गया है। इसका नाम मरू सेना–3 रखा गया है। इस सूत्रीकरण में यह जीवाणु 120 दिन तक जीवित रह सकता है। पिछले कई वर्षों में किसान भाई इस जैविक सूत्रीकरण (मरू सेना–3) को काजरी परिसर के तकनीकी

सूचना केन्द्र से ले जाते रहे हैं। नागोर जिले के एक किसान भाई चौ. रामजीवन का कहना है कि उनको इस मरू सेना से इतना फायदा हुआ कि उन्होंने अपने नव निर्मित घर का नाम मरू सेना भवन रख दिया। इस जीवाणु के उपयोग का सबसे बड़ा फायदा यह है कि यह जीवाणु असिंचित क्षेत्रों में भी उतना ही प्रभावशाली है जितना कि सिंचित क्षेत्र में होता है। इस जीवाणु की विशेषता यह है कि यह तेज गर्मी वाले शुष्क क्षेत्रों में जीवित रह सकता है। इस जीवाणु के तापक्रम सहन करने की क्षमता 45 सेन्टीग्रेड है। इसका *ट्राईकोडरमा* के साथ सामंजस्य है। यह जड़ नत्रजन ग्रंथि को दलहनों में बढ़ाता है। पौधों की वृद्धि में सहायक सिद्ध हुआ है। कुछ लाभदायक जीवाणु जैसे *राईजोबियम, एजेटोबेक्टर, एजोस्पाईरीलम*, आदि से भी बीजों का उपचार किया जाता है जिनसे जमीन में नत्रजन की मात्रा बढ़ जाती है या जड़ों में ही नत्रजन मिल जाता है। इसी तरह फास्फोरस घोलने वाले जीवाणुओं से भी बीज उपचारित किया जाता है। यह फास्फोरस को जमीन में उपलब्ध कराने में सहायक है। इस जीवाणु में जड़ों में स्थापित होनेकी क्षमता है जिसकी वजह से यह जड़ों में रोग उत्पन्न करने वाली फफूंद को रोकता है।

इस तरह की फफूंद को मित्र फफूंद व मित्र जीवाणु कहते है। मित्र फफूंद पौधों की हानिकारक फफूंद से मुकाबला कर परजीविता कायम कर तथा विरोधी जीवाणु बना कर फसलों की पैदाबार में वृद्धि करते है। मित्र फफूंदो से उपचार विगत कुछ वर्षों में रासायनिक दवाओं से उपचार करने की जगह मित्र फफूंदो से उपचार करने का चलन काफी बढ़ गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस तरह के उपचार से मित्र फफूंद बीज के साथ पौधो की जड़ो या भूमि में भी स्थापित हो सकती है, दुसरा पौधों को रासायनिक दवाओं से दुष्प्रभाव से भी रोका जा सकता है। पौध सरंक्षण की सबसे सस्ती व व्यावाहारिक कृषि क्रियाओं में बीज का उपचार एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। बीज के अन्दर या सतह पर रोग फैलानी वाली फफूंदो या जीवाणु के होने का पता कई बार बीज को देखकर नही लग सकता है। इसका पता तो तब ही लग पाता है जब पौधे का अकुंरण होता है व पौधा रोग ग्रसित हो जाता है। इस तरह के रोगों से खेत में न सिर्फ स्वस्थ पौधों की संख्या कम हो जाती है बल्कि खेत में कई पौधे तो और स्वस्थ पौधों में बिमारी भी फैला देते है। स्वस्थ पौधों से बीज लेकर अगले साल बोने की परंपरा तो हमारे देश में काफी समय से प्रचलित है। लेकिन विज्ञान में पिछले 5 दशक में की गई शोधों से कई प्रकार के बीज उपचार के तरीको को खोजा गया है जिनसे न सिर्फ रोग ग्रसित बीज का उपचार हो जाता बल्कि स्वस्थ बीजों में भी अच्छा अकुंरण होता है। बीजोपचार के लिये अब कई प्रकार के फफूंद नाशक, कीटनाशक, मित्र फफूंद, मित्र जीवाणु व जीवाणु खाद उपलब्ध है।

कुछ प्रमुख मित्र फफूंद जो कि मरूप्रदेश की भूमि में पाए जाते है वो इस प्रकार है–

ट्राईकोडर्मा हारजेनियम : मरू सेना–1

यह प्रमुख मित्र फफूंद है जो कि दलहनी व तिलहनी फसलों के जड़ गलन व उखटा रोगों की रोकथाम के लिए पूरे विश्व में उपयोगी सिद्ध हुई है। ये मित्र फफूंद *पीथीयम, फ्यूजेरियम, राइजोक्टोनिया, मेक्रोफोमिना* जैसी कई हानिकारक फफूंदो से पौधों की रक्षा करती है। इस फफूंद को उपयोग में लेते हुये केन्द्रीय शुष्कक्षेत्र अनुसंधान संस्थान, (काजरी) जोधपुर द्वारा बनाई गई मरू सेना–1 है जिससे पौधों का अंकुरण व फैलाव उत्तम होता है तथा पौधों पर भूमि जनित रोगों का प्रभाव भी कम होता है। इन्हें सूखे एवं ठण्डे स्थानों पर भण्डारित करना चाहिए तथा तीन माह के भीतर इसे प्रयोग कर लेना चाहिए। यह एक जैविक नियन्त्रण विधि होने के कारण इससे फसलें रासायनिक दवाओं के दुष्टपरिणाम से अप्रभावित रहती है।

प्रयोग विधि :

बीजोपचार : कृषि एवं उद्यानिकी फसलों में बीजोपचार 4 से 6 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बुवाई से 5–6 घन्टे पहले किया जाता है।

जड़ोपचार : ऐसी फसलें जिनमें पौध तैयार कर खेत में रोपण किया जाता है की पौध की जड़ों को उपचार कर लगाने से फसल में बीमारी कम आती है। इसके लिए 50 ग्राम ट्राइकोडर्मा 1 लीटर पानी में घोल बनाकर जड़ों को आधा घण्टा डुबोकर रोपण करना चाहिए।

भूमि उपचार : 1–2 किलोग्राम *ट्राइकोडर्मा* 40 किलोग्राम सडी हुई गोबर की खाद में मिलाकर बुवाई के पूर्व एक हैक्टेयर क्षेत्र में पूरे खेत मे बिखेरा जाता है।

नर्सरी उपचार : सब्जियों की नर्सरियों में 5 ग्राम *ट्राइकोर्डमा* प्रति वर्गमीटर की दर से बीज की बुवाई के पूर्व में मिलायें। हमें यह जानकारी होनी चाहिए कि रोग बीज जनित है या भूमि जनित या हवा के माध्यम से फैलने वाला।

बेसीलस फरमस : मरू सेना–3

मरूसेना–3 : यह मित्र जीवाणु *वेसीलस फरमस* द्वारा तैयार किया गया जैविक सूत्रीकरण है। हमारे क्षेत्र में शुष्क जड़ गलन रोग *मेक्रोफोमिना फेजीयोलिना* नामक फफूँद के आक्रमण से होता है, जो इस क्षेत्र की फसलों जैसे ग्वार, चवला, मूंग, मोठ, तिल, ज्वार आदि को काफी नुकसान पहुँचाता है। यह रोग भूमि में पानी की कमी होने पर ज्यादा उग्र अवस्था में फैलता है। इस रोग के जीवाणु भूमि में 60 डि.से. तापमान तक भी आराम से रह जाते है। इसकी रोकथाम के लिए ग्रसित खेतों में जैविक या कार्बनिक खाद मिलाना एक प्रमुख उपाय है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में किये गये अनुसंधान परिक्षणों से सरसों प्रजाति के अवशेषों को तेज गर्मी के दौरान जमीन में मिलाने व एक सिंचाई देने से इस रोग के रोकथाम की एक नई तकनीक का विकास किया गया है। उसी दौरान सरसों के अवशेष युक्त मिट्टी में

एक जीवाणु *बेसिलस फरमस* को खोजा गया जो *मक्रोफोमिना* फफूँद की वृद्धि को रोकता है। पिछले 10 वर्षों में इस जीवाणु के रोग व फसल की उपज पर प्रभाव देखकर एक और ठोस तकनीक का विकास किया गया है। इस जीवाणु के उपयोग का सबसे बड़ा फायदा यह है कि यह जीवाणु असिंचित क्षेत्रों में भी उतना ही प्रभावशाली है जितना की सिंचित क्षेत्रों में होता है। हाल ही में इसका पेटेंट भी हमें मिल गया है।

विशेषताएँ :

- ❖ इस जीवाणु की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह 45 डि.से. तापमान तक का तापक्रम सहन कर सकता है।
- ❖ यह जीवाणु *ट्राईकोडरमा* (मरूसेना–1) व *एसपरजीलस वरसीकोलर* (मरूसेना–2) के साथ सामंजस्य रखता है।
- ❖ यह जीवाणु नत्रजन ग्रंथियों को दलहनों में बढ़ाता है।
- ❖ यह पौधों की वृद्धि में सहायक है साथ ही फॉस्फोरस को जमीन में उपलब्ध कराने में सहायक है।
- ❖ इस जीवाणु में जड़ों में स्थापित होने की क्षमता है जिसकी वजह से यह जड़ों में रोग उत्पन्न करने वाली फफूँद को रोकता है।

मरूसेना–3 :

उपयोग करने की विधि :

बीजोपचार : एक लीटर या आवश्यकतानुसार पानी में 125 ग्रा. गुड़ का घोल बनाकर मरूसेना–3 की एक थैली कल्चर मिला लें। एक एकड़ (0.4 हे.) के लिए आवश्यक बीज की मात्रा में इस कल्चर के घोल को छिड़कें व बीजों को अच्छी तरह से मिलाते जाएं। कल्चर मिश्रित बीजों को छाया में साफ बोरी या टाट पर सुखाकर बुवाई के काम में लेवें। हो सके तो बुवाई से पहले खेत में सरसों प्रजाति के अवशेषों जैसे सरसों, मूली, फूलगोभी या बन्द गोभी से तैयार किया 1 से 2 टन/हे. में मिला लें तो इस जीवाणु से रोग को रोकने में और अधिक मदद मिलेगी। उसका उपयोग ग्वार, चवला, मूंग, मोंठ व तिल की फसल में कर सकते हैं।

मिश्रित मरूसेना :

यह मित्र फफूंद *ट्राइकोडर्मा हारजियानम* तथा मित्र जीवाणु *बेसीलस फरमस* का जैविक सूत्रीकरण है। इस मिश्रित सूत्रीकरण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि दोनो जैव नियंत्रक पौधों की वृद्धि व नत्रजन ग्रंथिया बढ़ाने में सहायक है। दोनों के मिश्रित सूत्रीकरण में आपसी सामंजस्य होने कारण मित्र जीवाणु जड़ों में ज्यादा संख्या में मौजूद रह सकता है। इस मिश्रित सूत्रीकरण का पौधों पर व वातावरण पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है।

विशेषताएँ

- ❖ इस जैविक सूत्रीकरण के निरन्तर प्रयोग से मृदा में लाभदायक सूक्ष्मजीवों की संख्या में बढ़ोतरी होती है।
- ❖ इसमें उपस्थित मित्र जीवाणु पौधों की जड़ों में स्थापित होकर जड़ों में उपस्थित रोगकारक फफूंद की वृद्धि को रोकता है तथा दूसरा मित्र फफूंद पौधों की वृद्धि में सहायक है।
- ❖ मृदा में उपस्थित आवश्यक पोषक तत्व जो कि फसल को सीधे प्राप्त नहीं होते है। उन्हें भी यह आसानी से उपलब्ध कराने में सहायता करता है।
- ❖ इस जैविक सूत्रीकरण का सबसे बड़ा लाभ यह है कि ये फसल या भूमि में किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं छोड़ता है।

मिश्रित मरूसेना से बीजोपचार की विधि

बीजोपचार के लिए सर्वप्रथम बाल्टी में एक लीटर या आवश्यकतानुसार पानी लेकर उसमें 75 ग्राम गुड़ व मिश्रित मरूसेना का एक पैकेट (200 ग्राम) मिलाकर अच्छे से घोल बना लें। अब इस घोल में बीज डालकर अच्छी तरह से मिला ले। इसके बाद इन उपचारित बीजों को 30–45 मिनट के लिए छाया में सुखा दें। अच्छी तरह से सुखने के तुरन्त बाद इन बीजों को बुवाई के लिए काम में लेना होगा। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान द्वारा शोध कर बनाए गए मरू सेना–1, 3 व मिश्रित मरू सेना के पैकेट कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र (एटिक) काजरी से खरीदें जा सकते है।

मित्र फफूंदो का प्रयोग एक सफल जैविक प्रक्रिया है जो कि अन्य रासायनिक प्रक्रियाओं से ज्यादा असरदार व सस्ती है। आजकल पूरे विश्व में इसका प्रयोग बढ़ता जा रहा है व अधिकतर जगह यह लाभकारी सिद्ध हुआ है। किसान भाई इसके निरन्तर उपयोग से नगदी फसलों के उत्पादन से अच्छी आमदनी अर्जित कर सकते है व एक ही खेत में नगदी फसलों के द्वारा कई बार खेती कर सकते है।

रोगों के उपचार करते समय ध्यान रखने वाली बातें

रोग का प्रकोप उसके मौसम की अनुकूलता से ही बढ़ता है, जैसे – आर्द्रता, तापक्रम, नमी, वर्षा आदि अनुकूल मौसम मिलते ही झुलसा, उकठा, छाछ्या आदि रोग पत्तियों, तनों, फलों आदि पर फैलने लगते हैं। रोगों के विस्तार के लिए जिम्मेदार मौसम सम्बन्धी पूर्ण जानकारी का ज्ञान होना चाहिए ताकि समय रहते फसल को उस रोग से बचाने के लिए उपयुक्त रसायन का उपयोग कर उसका नियन्त्रण किया जा सके।

इस प्रकार कीटनाशक रसायनों का प्रयोग करने से पूर्व फसल पर होने वाले रोग के प्रकोप के बारे में सही जानकारी होनी चाहिए। रोक संक्रमण की पहचान, फसल पर आए लक्षणों जैसे– धब्बे होना, पीला होना, चूर्ण जमा हुआ दिखना, पत्तियाँ सिकुड़ना, तना सूखना, पौधा मुरझाना, फलों का सड़ना आदि को देखकर रोग को पहचानने का ज्ञान होना चाहिए ताकि उसके अनुसार सही रोगनाशक रसायनों का प्रयोग किया जा सके। बीज व जड़ों के रोगों की पहचान इन भागों के रोगग्रस्त होने से की जा सकती है।

कई रोगों के लिए सुरक्षात्मक उपाय रोग होने से पूर्व ही करना पड़ता है जबकि अधिकतर रोगों में बीमारी के लक्षण दिखने ही ही नियन्त्रण कार्य किया जाता है। अतः पहले यह निश्चित करना होगा कि फसल पर कि प्रकार का संक्रमण है तथा उसके बाद सही पौध संरक्षण दवाओं का चयन करना चाहिए।

प्रयोग में लाए जाने वाले कीटनाशक रसायन उस सब्जी की फसल के लिए किसी भी प्रकार से हानिकारक (फाइटो टोक्सिक) नहीं होने चाहिए अन्यथा वह फसल को नुकसान कर सकते हैं या उसके अंगों में कुरूपता पैदा हो सकती है।

रोग नियन्त्रण में हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि रसायनों का उपयोग उनकी प्रारम्भिक अवस्था से करें अन्यथा बाद में उनका नियन्त्रण करना सम्भव नहीं होता। अतः सही पौध–संरक्षण रसायनों का सही समय पर प्रयोग करना चाहिए तभी किए गए खर्चे से ज्यादा लाभ प्राप्त हो सकेगा तथा किफायती भी रहेगा।

बीजोपचार विधी का चित्रित प्रर्दशन

नर्सरी में रोग प्रंबधन

कुलदीप सिंह जादौन

भा.कृ.अनु.प.—केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

विभिन्न प्रकार के रोगों/व्याधियों से राहत पाने के लिए समेकित प्रबन्धन की आवश्कता है जो इस प्रकार है–

- व्यवहारिक नियन्त्रण (कल्चरल कंट्रोल) गर्मी के मौसम में खेत की जुताई।
- पलवार (म्लिचंग) द्वारा खरपतवार को नष्ट करना तथा खेत की नमी बनाये रखना ।
- उचित समय पर पानी का प्रयोग तथा अत्यधिक पानी के उचित निकास का प्रंबध करना।
- जैविक पोषक तत्वों का समुचित मात्रा में प्रयोग करना।
- खेत में करंज या नीम की खल्ली का प्रयोग करना।
- वनस्पितक पदार्थों जैसे नीम, तुलसी, पुटुस *(लेंटाना)* करंज, सरसों इत्यादि की पत्तियों के घोल के प्रयोग से बीमारी एवं कीड़ों की समस्याओं को कम करना।
- रोग ग्रस्त पत्तियों को इक्कठा कर जल देना या जमीन में गाड़ देना
- भूमि शोधन करना
- जैविक फुफन्दी नाशक जैसे *ट्राईकोडर्मा* एवं जैविक कीटनाशक जैसे बी.टी.ए.वी. का प्रयोग।

आद्रगलन (डैम्पिंग ऑफ) :

इसके लक्षण दो अवस्थाओं में पाए जाते हैं। पहली अवस्था में अंकुरित बीजों का जमीन की सतह से निकलने के पूर्व ही पौधा गल जाता तथा दूसरी अवस्था में बीज अंकुरण के 15 से 20 दिनों के अंदर जमीन की सतह से पौधों का गलना मुख्य लक्षण है।

मुरझा रोग :

यह एक जीवाणुजनित रोग है जो सोलनेसी परिवार की सब्जियों जैसे, टमाटर, बैगन, मिर्च एवं आलू में लगता है। इनके जीवाणु मृदा में रहते हैं। इसका प्रकोप गर्मी, बरसात में ज्यादा तथा जाड़े के मौसम में कम होता है। इसका मुख्य लक्षण फूलने के समय पौधे का अचानक मुरझाकर सुख जाना है। जिससे काफी नुकसान होता है। इसकी पहचान आसानी से तने के कटे भाग से दुधनुमा स्राव को पानी में (उज टेस्ट) देखकर की जा सकती है।

झुलसा रोग :

क) अगेती अंगमारी : यह फफूंद जनित रोग है जो टमाटर एवं आलू फसलों में मुख्य रूप से होता है। इस रोग के आरंभिक लक्षणों में पत्तों तथा तनों पर काले भूरे रंग के 1–2 संकेंद्रिय धब्बे बनना तथा रोग की उग्रता की स्थिति में अनगिनत धब्बे बनना है। उग्रता की स्थिति में धब्बों का एक दूसरे से मिलकर झुलसा सदृश फैलता तथा पत्तियों का पीला पड़कर झड़ना पाया जाता है। इसके काले भूरे रंग के धब्बे फलों पर भी दिखाई पड़ते हैं जिससे काफी नुकसान होता है।

ख) पिछेती अंगमारी : यह फफूंद जनित रोग है जो टमाटर एवं आलू फसलों में मुख्य रूप से लगता है। इस रोग के लक्षण में पत्तों के किनारों से काले रंग के जलसिक्त धब्बे पाए जाते हैं जिससे पत्ता झुलसा जाता हैं तनों एंव कच्चे फलों पर जलसिक्त धब्बे पाए जाते हैं जिनसे बरसात के मौसम में सड़न प्रांरभ होती है तथा काफी नुकसान होता है।

ग) फोमोपिसस झुलसा : यह बैंगन का मुख्य फफूंद जनित रोग है। यह रोग ग्रस्त बीजों से फैलता है। इसमें नर्सरी में पत्तों पर काले रंग के धब्बे पाए जाते हैं। तने और पत्तों पर मटमैले भूरे गोलाकार, धंसे धब्बे पाए जाते हैं तथा पत्तों का पीला पड़ना पाया जाता है। फलों पर धब्बा सड़न पैदा करता है जिसमें सड़े एवं सूखे भागों पर पिननुमा अनेकों आकृतियाँ देखती हैं। बैगन की बीज उत्पादन के फसल के लिए यह विशेषरूप से क्षतिकारक बीमारी है।

घ) स्क्लेरोटीनिया सड़न : यह फफूंद जनित रोग है जिसके कारण पौधों में जड़ सड़नम पादगलन, तना सड़न तथा फल सड़न के अलग–अलग लक्षण दिखाई देते हैं। बैंगन आदि में तना, सड़न, सेम कुल एवं गोभी कुल, के पौधों में फलियों की सड़न प्रमुख हैं। अधिक नम मौसम में यह रोग तेजी से फैलता है। रोगग्रसित भाग पर सफेद भूरे फफूंद की कपासनुमा उपस्थिति के बीच काले भूरे सरसों नुमा अनेकों स्क्लेरोशिया का होना इस रोग का विशेष लक्षण हैं।

ड) श्याम (काला) विगलन : यह फूलगोभी का जीवाणु जनित मुख्य रोग है जो बोरन तत्व की कमी की अवस्था में होता अहि। इसमें पत्तों के किनारों से ट के आकार में पीला पड़ना, सुखना तथा शिराओं का काला पड़ना मुख्य लक्षण हैं तथा उग्रता की अवस्था में पत्तों का आंशिक या पूर्णरूप से सुखना एवं गोभी पर काले भूरे धब्बे दिखाई देना तथा सड़न की गंध होना मुख्य लक्षण हैं।

च) बैक्टीरियल साफ्ट रॉट या जीवाणुज गीला सड़न : यह मुख्य जीवाणु जनित रोग है जो बैंगन, मिर्च, प्याज, आलू पत्तागोभी, फूलगोभी, कद्दू कुल की सब्जियों में लगता है। यह रोग गुद्देदार जड़ों तथा तनों को

विशेष रूप से आक्रांत करता है। यह प्रायः भण्डार की सभी तरह की सब्जियों एवं फलों में मिलता है किन्तु घाव या चोट लगे, कटे–फटे फलों पर विशेष रूप से लगता है। पहले जलीय छोटे धब्बे बनते हैं ये जल्दी ही बड़े हो जाते हैं। इस प्रकार थोड़े ही समय में ग्रसित भाग सड़ जाता है। जड़ वाली फसलों जैसे गाजर, शलजम की खेती में रोग लगने पर ऊपर की पत्तियाँ पीली पड़ने पर सुख जाती है तथा उकठा के लक्षण दिखाई देते हैं। टमाटर के पक रहे फल ग्रसित होने पर सड़कर गाढ़े रंग में बदल जाता है।

समेकित रोग प्रबंध के लिए सामान्य सुझाव

क) सौर ऊर्जा द्वारा मृदा उपचार : तैयार किये हुए नर्सरी बेड को गर्मी के दोनों में 150–200 माइक्रोन मोटी पारदर्शी पॉलीथिन की चादर से 30 से 45 दिनों तक ढककर सौरीकरण करें। इसके कुए 400 ग्राम करंज की खल्ली तथा 5 किलोग्राम गोबर की खाद प्रति वर्गमीटर की दर से मिलाकर गहरी सिंचाई दें तथा पूरी अवधि तक क्यारी में नमी संरक्षित रखें। बीज बुवाई से पहले चादर हटा लें, फिर लाइनों में पतली बुवाई करें।

ख) जैविक फफूंद नाशक द्वारा बीज उपचार : जैविक फफूंद नाशक मुख्यतः *ट्राईकोडर्मा विरिडी* पर आधारित है। यह फसलों के फफूंदजनित जड़ सड़न, तना गलन, झुलसा आदि रोगों में प्रभावकारी पाया गया है। साथ ही साथ टमाटर एवं बैगन के जीवाणुज मुरझा रोग के लिए भी यह लाभप्रद पाया गया है। इसे फसल बोने के समय 2–4 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से प्रयोग करना चाहिए। बाजार में यह विभिन्न नामों से उपलब्ध है जैसे *बायोडर्मा, ट्राईकोडर्मा*।

ग) रसायनिक फफूंद नाशकों के द्वारा : बेविस्टीन या कैप्टान (2 ग्राम दवा प्रति किलो बीज) से बीज उपचार करें तथा नर्सरी में ब्लूकॉपर–50 (3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) यह डरियोमिल एम्. जेड (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) से पौध की ड्रचिग करें।

सब्जियों के रोगजनक एवं रोकथाम के उपाय

रोग के नाम	रोगजनक	रोकथाम
डैम्पिंग ऑफ़	*पिथियम* या *राइजोक्टोनिया*	• सौर उर्जा द्वारा भूमि का शोधन • जैविक फफूंदी नाशक का प्रयोग • बीजोपचार
मुरझा रोग	*राल्सटोनिया सोलेनिशरम*	• प्रतिरोधी किस्में लगाएँ

		• फसल चक्र अपनाएं • करंज की खल्ली 10 किवंटल प्रति हेकटेयर के हिसाब से खेत तैयार करते समय अच्छी तरह मिलावें • जल निकासी की समुचित व्यवस्था करें
झुलसा रोग अगेती अंगमारी	*आल्टरनरिया*	• दो–तीन वर्षीय फसल चक्र अपनाएं • रोग ग्रसित पुराने पत्तों को तोड़कर जला दें • बरसात के दिनों में टमाटर के पौधों में खूंटी का सहारा दें • रोग के लक्षण प्रकट होते ही ब्लूकॉपर–50 या बलाईटाक्स के 0.3% या डायथेन एम्–45 (0.2%) या रिडोमिल एम्. जेड (0.2%) घोल 10 दिनों के अन्तराल में तरल साबुन मिलाकर छिड़काव करें
पिछेती अंगमारी	*फाईतोफथेरा इंफेसटेन्स*	• रोग ग्रसित पुराने पत्तों को तोड़कर जला दें • जाड़े के मौसम में समुचित सिंचाई करें • बरसात के दिनों में पौधों में खूंटी का सहारा दें • जल निकासी की समुचित व्यवस्था करें • फफुदंनाशी जैसे ब्लूकॉपर–50 या बलाईटाक्स के 0.3% या डायथेन एम्–45 (0.2%)या रिडोमिल एम्. जेड 0.2 घोल 10 दिनों के अन्तराल में तरल साबुन मिलाकर छिड़काव करें
फोमोपिसस ब्लाईट	*फोमोपिसस वैक्ससेन्स*	• गर्म पानी (52 से.) से 30 मिनट तक या जैविक फफूंदनाशक से • बेविस्टीन 2 ग्राम/किलो की दर से • रोगग्रसित पत्तियों एवं फलों को नष्ट करें

		• बेविस्टीन 0.1% 10 दिनों के अन्तराल में छिड़काव करें
एंथ्रेक्नोज	*कालेटोट्राईकम लिंडेमुथियेनम* एवं अन्य स्पेसीस	• रोगग्रसित पत्तियों एवं फलों को नष्ट करें • रोगरोधी प्रजाति स्वस्थ बीज बोयें • बीजोपचार फोमोपिसस ब्लाईट की तरह करें • बेविस्टीन 0.1% या कवच के 0.2% घोल का छिड़काव करें
सक्लेरोटीनिया	*सक्लेरोटीनिया स्पेसिस*	• फसल चक्र अपनाएं • जल निकासी की समुचित व्यवस्था करें • रिडोमिल एम्. जेड (0.2%) घोल का छिड़काव करें
श्याम (काला) विगलन	बेरोंत तत्व की कमी तथा *जेंथोमोंनस कम्पेस्ट्रिस*	• रोगग्रसित पत्तियों एवं फलों को नष्ट करें • रोपाई के 10 दिनों के बाद से बोरिक एसिड का 3 से 14 बार 25 ग्राम प्रति 20 लीटर पानी में घोल बनाकर तरल साबुन मिलाकर छिड़काव करें
बैक्टीरियल साफ्टराट	*इरविना कैरेटोवोरा* तथा *इरविना* की स्पेसीस	• भंडार में कटे–फटे, रगड़े या चोट खाए फल न रखें • भंडार गृह की दीवारों फर्श को फर्मालीडहाइड (12 मिली. प्रति लीटर पानी) के घोल से अच्छी तरह धो लें • भण्डार गृह का ताप 40 से. कम रखें • टमाटर की खड़ी फसल पर 0.25% ताम्र युक्त रसायन का छिड़काव करें।

शुष्क क्षेत्र की महत्वपूर्ण झाड़ियों की पौधशाला एंव रोपण

वी. एस. राठौड एवं जे.पी. सिंह

भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान,
प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर

झाड़ियां शुष्क पारिस्थितिक तंत्र का एक अभिन्न अंग है एवम् इनका पारिस्थितिक व आर्थिक दोनों रूप से बहुत महत्व है। इनके आर्थिक एवम् पर्यावरण लाभों को देखते हुए तथा इनकी संख्या में कमी में इनका रोपण आवश्यक है। इसके साथ ही यहाँ की स्थानीय झाड़ियों का मरूस्थलीकरण रोकने, जैविक दबाव को सहन करने, मृदा व आर्द्रता संरक्षण तथा मृदा गुणवत्ता के सुधार में बहुत योगदान है। इनके रोपण के लिए इनकी उपयुक्त पौधशाला तकनीकी की जानकारी भी आवश्यक है। प्रस्तुत आलेख में इस क्षेत्र की स्थानीय झाड़ियों के पौधशाला एवं रोपण के संबंध में प्रकाश डाला गया है ताकि इनके परिवेशानुसार इनका रोपण किया जा सके।

फोग :

फोग पश्चिमी राजस्थान के रेतीले टीबों क्षेत्र की एक प्रमुख झाड़ी है। इसको बीजों व कर्तन (कटिंग) द्वारा लगाया जा सकता है। प्राकृतिक अवस्था में फोग के बीज अंकुरण हेतु कुछ समस्याएं है। पहली तो यह कि जमीन पर स्वतः गिरे अथवा रोपित किये बीज रेगिस्तानी आँधियों के कारण मिट्टी से ढ़क जाते है। इसके साथ ही जुलाई–अगस्त में होने वाली वर्षा के दौरान अधिक तापमान इसके अंकुरण में प्रतिकुल प्रभाव डालता है। शीत ऋतु के दौरान हुई वर्षा बीज अंकुरण हेतु श्रेष्ठ है। इसके बीजों जिसे स्थानीय भाषा में घिंटाल कहते हैं को अंकुरण के लिए उपचार की आवश्यकता नहीं है। इसकी नर्सरी हेतु नवम्बर से जनवरी का समय उपयुक्त है। इसके बीजों को बीज बोने के 20 से 25 दिन बाद अंकुरण होता है (छाया चित्र 1)। यह भी देखा गया है कि यदि बीज के वाह्य चोल पर उपस्थित तंतुओं को अलग करके बोते हैं तो अंकुरण अच्छा रहता है।

छाया चित्र 1: फोग की पौधशाला

बांवली :

बांवली एक बहुशाखीय, 1.5 मीटर से 4.0 मीटर तक ऊंची शुष्क जलवायु की कंटीली झाड़ी है। इसे बीजों द्वारा आसानी से स्थापित किया जा सकता है। बावली के बीजो में अच्छा अंकुरण होता है। एक वर्ष पहले इकट्ठे किये बीजों को मार्च में पॉलीथीन थैली में बो देते है। नये इकट्ठे किये बीजों को जून में भी लगा सकते है। इसके बीजों का अंकुरण बोने के 2 से 3 दिनों के पश्चात शुरू हो जाता है तथा एक सप्ताह के अन्दर अधिकतम अंकुरण हो जाता है। यदि परिपक्व फलियों से बीज इकट्ठा करते हैं तो 80 प्रतिशत से अधिक अंकुरण होता है। नर्सरी के पौधो को 5–6 माह बाद वर्षा ऋतु में रेतीले टिब्बों या दूसरी उपयुक्त जगह लगाये जा सकते है। प्रायः पहले दो वर्षो में बावली के पौधे में वृद्धि धीमी होती है। इसकी रेतीले टिब्बो पर मैदानी भागों की अपेक्षा अच्छी वृद्धि होती हैं।

लाणा :

यह झाड़ी पश्चिमी राजस्थान के बीकानेर, श्रीगंगानगर एवं जैसलमेर जिलों में प्राकृतिक रूप से मिलती है। लाणा को बीजों द्वारा आसानी से बिना किसी बीजोपचार के सुस्थापित किया जा सकता है। इसके बीज पंखनुमा परिदलपुंज युक्त होते हैं। परिदलपुंज युक्त बीजों में अच्छा अंकुरण होता है। लेकिन इसके ताजा इकठ्ठे किये बीज ही अंकुरित होते है। पुराने बीजों में अंकुरण नहीं होता। लाणा के बीजों को भी किसी उपचार की आवश्यकता नहीं है। इसमें ताजा इकट्ठे किये गये बीजों का अंकुरण 18 घंटे में ही शुरू हो जाता है तथा अधिकतम अंकुरण 2 दिनों में ही हो जाता है। प्रारम्भ में पौधों की वृद्धि दर बहुत ही कम

होती है लेकिन बाद में अच्छी वृद्धि होती है (छाया चित्र 2)। बीजों में अंकुरण के समय कीटों का प्रकोप इसके सुस्थापन में एक गम्भीर समस्या है। जिसके निवारण हेतु उचित कीट प्रबन्धन आवश्यक है। यदि जनवरी फरवरी में वर्षा हो जाती है तो प्राकृतिक रूप से इसके पौधे उग जाते हैं (छाया चित्र 3)।

छाया चित्र 2: लाणा की पौधशाला

छाया चित्र 3: लाणा में प्राकृतिक रूप से उगे नये पौधे

बोर्डी :

भारतवर्ष में यह प्रजाति राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश व गुजरात में पायी जाती है। बोर्डी का प्राकृतिक पुनरूत्पादन पशुओं द्वारा खाये गये फलों की गुठली से होता है। इसे बीजों द्वारा नर्सरी में पौध तैयार करके या बीज सीधे गड्डो में भी डाल कर उगाया जा सकता है। इसका आवरण कठोर होने के कारण बोने से पहले गुठली को तोड़ देना आवश्यक है। बीजो को लगभग 1 से.मी. गहराई पर बोया जाता है। पौधे धीरे–धीरे बढ़ते है, 5–6 माह की पौध की ऊंचाई 30 से 35 से.मी. हो जाती है। पौध रोपण के बाद प्रथम वर्ष में वृद्धि धीमी रहती है लेकिन दूसरे–तीसरे वर्ष के पश्चात् फल लगने लगते है।

खींप :

यह एक उर्ध्व, बहुशाखीय झाड़ी है जो कि लगभग 1 से 2 मी. ऊंचाई की होती है। प्राकृतिक रूप से खींप का पुनरूत्पादन बीज द्वारा होता है। इसके बीच हल्के होने के कारण हवा से प्रकीर्णन होते हैं तथा अनुकूल स्थिति आने पर बरसात में आसानी से उग जाते हैं। इसे बीजों द्वारा उगाया जा सकता है (छाया चित्र 4)।

छाया चित्र 4: खींप की पौधशाला

गंगेरन :

यह शीतकालीन, पर्णपाती, बहुशाखीय, लगभग 1 से 3 मीटर की ऊंचाई वाली झाड़ी है। इसका प्राकृतिक प्रवर्धन चिड़ियों द्वारा खाये गये फलों के बीजों से होता है। अनुकूल स्थिति मिलने पर इसके बीज अंकुरित हो जाते हैं जो समय के साथ–साथ विकसित होकर झाड़ी बन जाती है। इसका प्रवर्धन बीजों से नर्सरी में पौध तैयार करके किया जा सकता है। लेकिन पुराने इकट्ठे किये बीजों में अच्छा अंकुरण होता है। बीजों को बोने से पहले 24 घण्टे पानी में भिगोते हैं। फरवरी–मार्च में बीजों को पॉलीथीन थैली में 1 से.मी. गहराई

पर बोते हैं। प्रायः अंकुरण प्रतिशत कम होने के कारण एक थैली में 3 से 4 बीज बोते हैं। इस तरह से तैयार 4–5 महिने की पौध को मानसून वर्षा के तुरन्त बाद प्रक्षेत्रों में लगा दिया जाता है।

खारा लाणा :

यह प्रजाति भारतवर्ष में मुख्यतः पश्चिमी राजस्थान की क्षारीय/लवणीय भूमि में पायी जाती है। इसे आसानी से बीजों द्वारा लगाया जा सकता है। मानसून वर्षा के बाद इसके बीजों को छिड़क कर या लाइन में 1.00 से.मी. की गहराई पर बो दिया जाता है। जिनका जल्दी ही अंकुरण हो जाता है (छाया चित्र 5) और दूसरे वर्ष में फूल आना शुरू हो जाते है। खारालाणा का अंकुरण बहुत ही जल्दी होता है। बीज बोने के अगले दिन ही इसमें अंकुरण हो जाता है। इसकी पौध लाणा की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ती है (छाया चित्र 6)। सर्वेक्षण के दौरान पाया गया कि श्री गंगानगर जिले में अनूपगढ़ व विजयनगर तहसील में कुछ किसान खारा लाणा की फसल, साजी उत्पादन के लिए करते हैं।

छाया चित्र 5: क्षेत्र में खारा लाणा के छिड़के बीज द्वारा उगे पौधे

छाया चित्र 6: खारा लाणा की पौधशाला

वायु अवरोधक एवं रक्षक पट्टी रोपण द्वारा मृदा अपरदन नियंत्रण

एम. एल. सोनी, जे.पी. सिंह, एन. डी. यादव, वी. सुब्बुलक्ष्मी एवं बीरबल

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, बीकानेर (राजस्थान)

वायु अवरोधक (विंडब्रेक) ऐसी संरचनाएं हैं, जो वायु के प्रवाह को नियंत्रित कर वायु की गति को कम करती हैं। वायु अवरोधक विशेष रूप से उस समय हवा के कटाव के विरूद्ध मृदा संरक्षण का कार्य करते हैं, जब मृदा आवरण वनस्पतियों द्वारा संरक्षित नहीं होता है। तेज हवाओं के कारण 70 प्रतिशत से 100 प्रतिशत फसल नष्ट या क्षतिग्रस्त हो सकती है। वायु अवरोधक से हवा की गति 60 से 80 प्रतिशत कम हो सकती है।

रक्षक पट्टी (शेल्टरबेल्ट) पेड़ों या झाड़ियों की ऐसी पंक्तियां हैं जो वायु के प्रतिकूल प्रभाव से फसल की सुरक्षा के लिए लगाई जाती हैं। वायु अवरोधक या शेल्टरबेल्ट आमतौर पर निकटवर्ती क्षेत्रों को प्रभावित करने वाली हवाओं से बचाने या आश्रय देने के लिए स्थापित किए जाते हैं। ये कृषि तथा आवासीय भूमि को धूल–तूफान आदि से बचाते हैं। इस तरह के वृक्षारोपण का उपयोग हवा के कटाव को कम करने, बढ़ते पेड़–पौधों की रक्षा करने आदि उपयोगी कार्यों के लिए किया जाता है। इसके साथ ही वायु अवरोधक पशुधन की रक्षा करते हैं, वन्यजीवों को आवास प्रदान करते हैं, भूमि को सौंदर्य प्रदान करते हैं और पेड़ या झाड़ी विभिन्न उत्पाद प्रदान करते हैं। इसके अलावा इन्हे एक जीवित आवरण (स्क्रीन) के रूप में उपयोग किया जाता है।

वायु कटाव क्षेत्रों में वायु अवरोधक और शेल्टरबेल्ट लगाए जाते हैं। शेल्टरबेल्ट वायु के वेग को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, मिट्टी के कटाव को रोकते हैं, रेगिस्तान के प्रसार को नियंत्रित करते हैं, सिंचाई दक्षता में सुधार करते है तथा 10 से 15 प्रतिशत तक फसल की उपज बढ़ाने में मदद मिलती है। यह कृषि क्षेत्रों और वायु अपरदन द्वारा प्रभावित क्षेत्रों की रक्षा करते हैं। कटाव नियंत्रण का लाभ यह है कि यह मिट्टी की सतह को कवच प्रदान करते हैं ताकि मिट्टी के कणों को दूर जाने से रोका जा सके।

वायु अवरोधक या शेल्टरबेल्ट लगाने का उद्देश्य :

शेल्टरबेल्ट स्थापित करने के अनेक कारण हैं, आप शेल्टरबेल्ट को किस तरह से उपयोग करना चाहते हैं, यह निर्धारित करता है कि आपको किस प्रकार के शेल्टरबेल्ट लगाने चाहिए। शेल्टरबेल्ट और विंडब्रेक को लगाने का मुख्य उद्देश्य वायु को शुद्ध (फिल्टर) करना और उसके बल को तोड़ना है। पेड़ों और झाड़ियों

की प्रजातियों का सावधानीपूर्वक चयन करके वांछित पारगम्यता प्राप्त की जा सकती है। पारगम्य शेल्टरबेल्ट और विंडब्रेक, जो हवा के कुछ हिस्से को गुजरने देते हैं, सबसे ज्यादा प्रभावकारी रहते हैं।

वायु अवरोधक व शेल्टरबेल्ट के लाभ :

वायु अवरोधक व शेल्टरबेल्ट द्वारा प्राप्त लाभों को लंबे समय से मान्यता दी गई है और इसमें फसलों, पशुधन और रहवासिय क्षेत्र की सुरक्षा, मिट्टी के कटाव में कमी, लवणता नियंत्रण और जैव विविधता में सुधार शामिल हैं। वायु अवरोधक व शेल्टरबेल्ट के निम्नलिखित लाभ है :

1. वायु वेग को कम करना।
2. वायु अपरदन के प्रभावों के विरुद्ध लीवार्ड क्षेत्रों को सामान्य सुरक्षा प्रदान करना।
3. गर्म वायु के प्रभाव से लीवार्ड क्षेत्रों को सुरक्षित रखना।
4. ईंधन, चारा लकड़ी आदि प्रदान करना।
5. ठंडी/गर्म वायु से क्षेत्र की फसलों/पशुधन की रक्षा करना।
6. मिट्टी के कटाव को रोकना।
7. खेत से वाष्पीकरण कम करना।
8. सूक्ष्म जलवायु (माइक्रोक्लाइमेट) में सुधार।
9. बाड़ लगाने और सीमा सीमांकन के लिए।

शेल्टरबेल्ट्स कैसे काम करता है ?

शेल्टरबेल्ट्स वनस्पति अवरोध हैं जो वायु की गति को कम करने के लिए डिजाइन किए गए हैं तथा वायु के अवरोधन से वायु के कटाव को कम कर सकते हैं और कुछ मामलों में रोक भी सकते हैं। जैसे ही शेल्टरबेल्ट्स के पास वायु जाती है, उसमें से कुछ शेल्टरबेल्ट्स के अंतिम छोर के चारों ओर फैल जाती है, कुछ शेल्टरबेल्ट्स के माध्यम से गुजरती है और अधिकांश बेल्ट के शीर्ष पर जाती है। वायु का दबाव वायु की तरफ से ऊपर की ओर बनता है और लीवार्ड की तरफ कम होता जाता है। यह दबाव यह निर्धारित करता है कि वायु की गति में कितनी कमी होती है। वायु दबाव अंतर की मात्रा शेल्टरबेल्ट की संरचना द्वारा निर्धारित की जाती है। शेल्टरबेल्ट जितना अधिक घना होगा, वायुदाब में उतना ही अधिक अंतर होगा। वायु की गति में मामूली कमी से भी मिट्टी के कटाव में काफी कमी आ सकती है। वायु की गति

आधी से कम करने से कटाव की दर 1/8 तक कम हो सकती है। यहां तक कि शेल्टरबेल्ट के लगभग समानांतर वाले कोणों पर आने वाली वायु भी वायु की गति को कम कर सकती है।

शेल्टरबेल्ट डिजाइन :

शेल्टरबेल्ट आमतौर पर कई पंक्तियों से युक्त होते हैं। वायु के कटाव को नियंत्रित करने और संशोधित करने के लिए इन्हे पर्यावरणीय बफर के रूप में उपयोग किया जाता हैं। पेड़ों और झाड़ियों को रक्षक श्रंखला के रूप में निर्धारित रोपण पैटर्न के अनुसार, घास और झाड़ियों को बाहरी पंक्तियों पर लगाया जाता है जो वायु को जमीन की सतह से बहुत ऊपर उठने के लिए सहायता करती हैं। बाहरी पंक्तियों में झाड़ियाँ और आंतरिक में लम्बे वृक्ष होते जो वायु के वेग को रोक कर उसे ऊपर उठा देती हैं। शेल्टरबेल्ट की सबसे लंबी पंक्ति की ऊंचाई और शाखाओं का समग्र घनत्व आस–पास के संरक्षित या आश्रय क्षेत्र को बहुत प्रभावित करती हैं। एक सफल और कुशल परिणाम सुनिश्चित करने के लिए शेल्टरबेल्ट के विभिन्न पहलुओं पर विचार करना चाहिए। वायु द्वारा कटाव को नियंत्रित करने के लिए, आश्रय की क्षमता वायु की गति और दिशा पर निर्भर करती है। तेज वायु की गति के मामले में, सुरक्षात्मक क्षेत्र कम हो जाता है और ऐसे क्षेत्रों में दो आश्रय के बीच अंतराल को कम करना होता है।

एक शेल्टरबेल्ट डिजाइन करने में पहला कदम यह निर्धारित करना है कि आप उस शेल्टरबेल्ट का क्या करना चाहते हैं। शेल्टरबेल्ट वास्तव में कृषि उत्पादकता पर हानिकारक प्रभाव भी डाल सकते हैं यदि वे उचित रूप से डिजाइन नहीं किए गए हैं। एक विंडब्रेक की ऊंचाई को अधिकतम करना महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसकी ऊंचाई उस क्षेत्र को निर्धारित करेगी जिस पर विंडब्रेक का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शेल्टरबेल्ट में सबसे उपयुक्त प्रजातियों का उपयोग करने से उस अंतिम क्षेत्र में वृद्धि होगी जिस पर एक वायु अवरोधक प्रभावी है। लंबे वायु अवरोधक छोटे अवरोधकों की तुलना में अधिक प्रभावी होते हैं। वायु में एक शेल्टरबेल्ट के छोर के चारों ओर बहने और उस बिंदु पर अपना प्रभाव बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है। इसलिए समग्र क्रियाशीलता को कम करने के लिए शेल्टरबेल्ट की उचित लम्बाई आवश्यक है। इसकी ऊंचाई के साथ संयुक्त वायु अवरोधक की लंबाई संरक्षित क्षेत्र की सीमा निर्धारित करती है। शेल्टरबेल्ट डिजाइन के लिए कई प्रमुख तत्व प्रभावी हैं। अतः वायु अवरोधक को डिजाइन करते समय जिन तत्वों पर विचार किया जाना चाहिए, वे हैं ऊंचाई, घनत्व, स्थान, पंक्तियों की संख्या और उपयोग की जाने वाली पादप प्रजातियां। शेल्टरबेल्ट की लंबाई, अभिविन्यास और निरंतरता पर ध्यान देना भी इसकी दक्षता में सुधार करता है।

घनत्व :

एक शेल्टरबेल्ट का वांछित घनत्व शेल्टरबेल्ट के उद्देश्य पर निर्भर करता है तथा निर्धारित करता है कि हवा की गति को कम करने में यह कितना प्रभावी है। वायु अवरोधक के घनत्व को पौधों की प्रजातियों का चयन, पेड़ों का फैलाव और वायु अवरोधक में पंक्तियों की संख्या से प्रबंधित किया जा सकता है। आश्रय की सरंध्रता के आधार पर, वायु की कुछ मात्रा इसके माध्यम से गुजरती है और कुछ विक्षेपण और इसके ऊपर से पार हो जाती है। इस प्रकार, यह वायु को नियंत्रित कर खेतों को सुरक्षा प्रदान करता है। वायु अवरोधक और शेल्टरबेल्ट, वायु को नीचे की तरफ 10 गुना तक सुरक्षा आश्रय प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, 45 से 50 किमी प्रति घंटा की वायु का सामना करने पर 10 से 11 मीटर लंबा वायु अवरोधक, हवा की दिशा की ओर घटकर 20–30 किमी प्रति घंटा और लीवार्ड की तरफ 10 किमी प्रति घंटा हो जाता है। लगभग 40 से 60 प्रतिशत के घनत्व के साथ मध्यम घनत्व वाले शेल्टरबेल्ट को डिजाइन के लिए प्राथमिकता देनी चाहिए। जमीनी स्तर से शेल्टरबेल्ट के शीर्ष तक एक समान घनत्व का लक्ष्य भी रखना चाहिए। शेल्टरबेल्ट का घनत्व प्रदान किए गए शेल्टर की सीमा और स्तर को प्रभावित कर सकता है। एक उच्च–घनत्व शेल्टरबेल्ट एक मध्यम या निम्न–घनत्व शेल्टरबेल्ट की तुलना में कम दूरी पर शेल्टरबेल्ट के प्रभाव का उच्च स्तर प्रदान करेगा। इसलिए जहां थोड़ी दूरी पर उच्च स्तर के शेल्टरबेल्ट की आवश्यकता होती है, वहां बहुत घने वायु अवरोधक का उपयोग किया जा सकता है। एक आदर्श घनत्व प्राप्त करने के लिए, झाड़ियों और ग्राउंड कवर प्रजातियों के साथ–साथ लंबी प्रजातियों का उपयोग करके शेल्टरबेल्ट को स्थापित किया जाना चाहिए। घने पर्णसमूह वाली प्रजातियों का उपयोग करते हुए, अधिक पंक्तियों या पौधों को एक साथ नजदीक करने से वायु अवरोधक घनत्व बढ़ सकता है (छाया चित्र 1)।

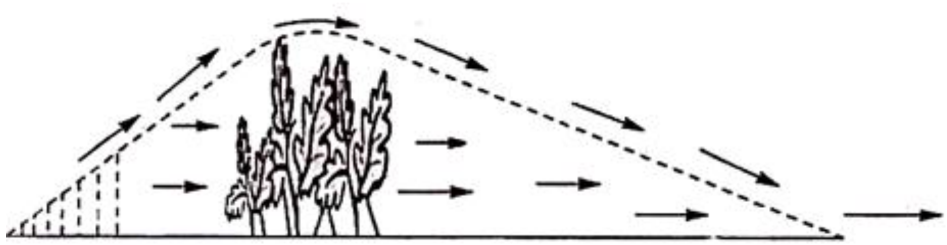

एक मध्यम घनत्व वाले शेल्टरबेल्ट में वायु वेग व दिशा

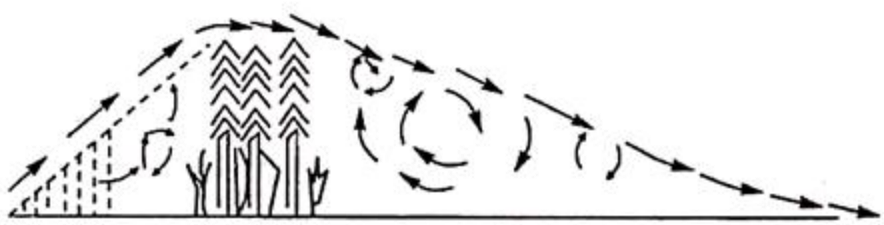

एक अत्यधिक सघन घनत्व वाले शेल्टरबेल्ट में वायु वेग व दिशा

छाया चित्र 1 : शेल्टरबेल्ट द्वारा वायु दिशा में परिवर्तन

ऊंचाई :

पेड़ों की ऊंचाई मिट्टी को वायु अपरदन के प्रति प्रदान की गई सुरक्षा की सीमा निर्धारित करती है। एक वायु अवरोधक अपनी ऊंचाई का 2 से 10 गुना तक क्षेत्रफल सुरक्षित रखता है। इसका तात्पर्य यह है कि 5 मीटर ऊँचा वायु अवरोधक अपने रोपण बिंदु से 50 मीटर की दूरी तक के क्षेत्र को वायु द्वारा मृदा कटाव से सुरक्षा प्रदान कर सकता है। वायु की दिशा का मुकाबला करने के लिए, वायु अवरोधक की ऊंचाई अधिक होना आवश्यक है, ताकि वायु के टूटने की गति तेज हो।

अभिविन्यास :

शेल्टरबेल्ट का लाभकारी प्रभाव सूखे क्षेत्रों में अधिक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। ऐसे क्षेत्रों में 3–7 पंक्तियों वाले शेल्टरबेल्ट अधिक प्रभावी होती हैं। ये शीत लहर के प्रभाव से फसलों और पशुओं को भी सुरक्षित करेंगे। हवा की दिशा में परिवर्तन के द्वारा मिटटी के कटाव को रोकने के लिए वायु अवरोधक कई दिशाओं में अक्सर एल यू या ई (L, U or E) आकार में लगाए जाते हैं।

वायु अवरोधक व शेल्टरबेल्ट द्वारा अधिकतम प्रभाव प्राप्त करने के लिए उन्हें हवाओं के लंबवत (90 डिग्री) पर उन्मुख होना चाहिए। वायु दिशा के लम्बवत लगाए गए पेड़ों और झाड़ियों की पंक्तियाँ सबसे प्रभावी होती हैं। यह लीवार्ड की तरफ वायु की गति को 60 से 80 प्रतिशत तक कम कर देता है। वायु की गति कम करने से वाष्पीकरण के नुकसान में कमी आती है और फसलों को अधिक पानी उपलब्ध होता है।

निरंतरता :

एक वायु अवरोधक में पौधों के बीच का अंतराल पवन–सुरंगों की तरह काम करेगा और एक छोटे से क्षेत्र के माध्यम से हवा के बल को केंद्रित करेगा। अतः वायु अवरोधक में निरंतरता आवश्यक है।

लंबाई :

एक वायु अवरोधक की लंबाई सुरक्षा प्राप्त करने वाले कुल क्षेत्र को निर्धारित करती है। अच्छे संरक्षण के लिए एक वायु अवरोधक की लंबाई ऊंचाई का दस गुणा तक होनी चाहिए।

शेल्टरबेल्ट का प्रबंधन व देखभाल :

शेल्टरबेल्ट खेत के वातावरण में एक महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। शेल्टरबेल्ट को सही देखभाल और रखरखाव की आवश्यकता होती है क्योंकि वे फार्म सुरक्षा के द्वारा किसानों को लाभ प्रदान करती हैं। शेल्टरबेल्ट के प्रबंधन का उद्देश्य वायु के प्रभावी अवरोधक के रूप में शेल्टरबेल्ट की समग्र संरचना को बनाए रखने के साथ साथ पेड़ों और झाड़ियों के स्वास्थ्य और ओज को भी बनाए रखना है। शेल्टरबेल्ट को अत्यधिक प्रभावी बनाए रखने के लिए खरपतवार नियंत्रण, पशु नियंत्रण, कटाई–छंटाई (प्रूनिंग), कीट और रोग नियंत्रण और आग जैसे अनुप्रयोगों को लागू करने की आवश्यकता हो सकती है। सही ढंग से प्रबंधित शेल्टरबेल्ट दीर्घ अवधि में कई लाभ प्रदान कर सकता है। नव स्थापित शेल्टरबेल्ट आम तौर पर सबसे कमजोर होते हैं, क्योंकि वे पशुओं द्वारा चराई के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं। शुरू के कुछ वर्षों के दौरान पौधों को सबसे अधिक नुकसान होने की संभावना रहती है। इसलिए शेल्टरबेल्ट की ऊंचाइयों और घनत्व को बनाए रखने के लिए मृत पौधों को जल्द से जल्द बदल दिया जाना चाहिए। क्योंकि पुराने पौधों द्वारा छायांकन और जल प्रतिस्पर्धा के कारण एक उन्नत शेल्टरबेल्ट में नए पौधों को स्थापित करना कठिन होता है।

घास और खरपतवार शेल्टरबेल्ट वाले पौधों के साथ पानी, प्रकाश और पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। खरपतवार की प्रजातियों को पूरे जीवनकाल के लिए नियंत्रित किया जाना चाहिए ताकि यह प्रभावी बना रहे। हालांकि यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है कि शेल्टरबेल्ट के स्थायित्व के पहले पांच वर्षों के दौरान प्रभावी खरपतवार नियंत्रण किया जाए।

एक शेल्टरबेल्ट की पंक्तियों के भीतर और बीच में खरपतवार नियंत्रण किया जाना चाहिए। इससे शेल्टरबेल्ट वाले पौधों को स्थापित होने का सबसे अच्छा अवसर मिलेगा। खरपतवार बीजों के स्रोत को हटाने के लिए पंक्तियों के बीच खरपतवार नियंत्रण किया जाता है। शुष्क क्षेत्रों में खरपतवारों का पूर्ण निष्कासन अधिक उपयुक्त है। खरपतवार नियंत्रण से पुराने पौधे भी लाभान्वित होते हैं। यदि सभी खरपतवार की प्रजातियों को हटा दिया जाए तो शेल्टरबेल्ट की वृद्धि और स्वास्थ्य में सुधार होगा। यह सिफारिश की जाती है कि शेल्टरबेल्ट की स्थापना के बाद 10 वर्षों तक खरपतवार नियंत्रण किया जाए। इस समय के बाद यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक किया जाना चाहिए कि कोई गंभीर खरपतवार संक्रमण न हो।

यदि एक शेल्टरबेल्ट के भीतर के खरपतवारों को नियंत्रित नहीं किया जाता है, तो शेल्टरबेल्ट खरपतवार के बीज का स्रोत बन सकते हैं जो फार्म प्रक्षेत्र में फसलों के मध्य फैल सकते हैं।

पशुओं से सुरक्षा :

नव स्थापित या पुराने शेल्टरबेल्ट स्थलों में पशुओं द्वारा चराई करने से बहुत अधिक नुकसान हो सकता है। घरेलू और जंगली दोनों तरह के जानवर शेल्टरबेल्ट को नुकसान पहुंचा सकते है। अतः नियमित रूप से इनका अवलोकन किया जाना चाहिए।

पंक्ति डिजाइन :

एकाधिक वायु अवरोधक पंक्तियाँ गैर–समान विकास होने के पश्चात् भी अधिक प्रभावी होती है। एकल पंक्ति प्रजातियां तभी प्रभावी हो सकती हैं यदि वे एक ऐसी प्रजाति का उपयोग करके स्थापित की जाये जिसमें जमीन स्तर से शेल्टरबेल्ट के शीर्ष तक एक समान पर्ण घनत्व होता है। एक या दो पंक्ति शेल्टरबेल्ट भी प्रभावी और किफायती हो सकते हैं यदि वे अच्छी तरह से डिजाइन किए गए हैं और उपयुक्त प्रजातियों का उपयोग किया गया हैं। एक प्रभावी वायु अवरोधक डिजाइन में अक्सर 2–4 पंक्तियाँ होती हैं जिनमें झाड़ी की प्रजातियों के साथ पेड़ों की लम्बी प्रजातियों का उपयोग किया जा सकता हैं। एक या दो पंक्तियों के शेल्टरबेल्ट के लिए उपयुक्त प्रजातियों का चयन करना महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि प्रजातियों का रूप काफी भिन्न होगा तो वे कम प्रभावी हो सकते हैं।

शेल्टरबेल्ट के भीतर पौधों की दुरी :

पौधों की पहली पंक्ति के बीच कम से कम 2 मीटर की दूरी होनी चाहिए और पशुधन को पौधों पर चराई से रोकने के लिए बाड़ होना चाहिए। छोटे पेड़ों और झाड़ियों को एक शेल्टरबेल्ट की बाहरी पंक्तियों पर रखा जाना चाहिए ताकि उन्हें लम्बी प्रजातियों द्वारा छायांकित न किया जा सके। लम्बी प्रजातियों को एक शेल्टरबेल्ट के केंद्र में रखा जाना चाहिए। यदि पेड़ शेल्टरबेल्ट के केंद्र में स्थित हैं तो बड़ी पेड़ की शाखाओं के गिरने से बाड़ को नुकसान पहुंचने की संभावना कम हो जाती है। पौधों के बीच दुरी का निर्णय लेते समय पौधों को वांछित घनत्व स्तर और चयनित प्रजातियों के आकार तक पहुंचने के लिए लिया गया समय शामिल होना चाहिए। मध्यम से ऊंचे पेड़ों को आमतौर पर 3 से 4 मीटर तक लगाया जाता है। बड़े झाड़ियों को 2.5 से 4 मीटर और छोटी झाड़ियों को आम तौर पर 1.5–2.5 मीटर की दुरी रखी जा सकती है।

प्रजातियों का चयन :

पेड़ और पौधे की प्रजातियों का चयन भी वायु अवरोधक के रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सबसे अच्छे वायु अवरोधक वो है जो हवा को अवरुद्ध करने के लिए पेड़–पौधों की प्रजातियां बहु–स्तरित ऊंचाइयों वाले हो। पौधों की प्रजातियों का चयन करते समय निम्नलिखित बिंदु शामिल किये जाने चाहिए :

• स्थानीय रूप से देशी प्रजातियों में आम तौर पर उच्च अस्तित्व और स्थापना दर होती है।

• पादप प्रजातियां जो साइट पर लंबा बढ़ेंगी उन्हें एक या अधिक पंक्तियों के लिए उपयोग किया जाना चाहिए।

• प्रजातियाँ उपयुक्त पर्ण घनत्व वाली हो तथा अन्य चयनित प्रजातियों की ऊँचाई और घनत्व को भी समान रूप से प्राप्त करने के लिए पूरक हो।

• प्रजातियों की वृद्धि दर को ध्यान में रखा जाना चाहिए। तेजी से बढ़ने वाली प्रजातियों का उपयोग किया जाना चाहिए।

• कई अलग–अलग प्रजातियों के होने से शेल्टरबेल्ट की एकरूपता कम हो सकती है।

• जलाऊ लकड़ी, बाड़ पोस्ट या व्यावसायिक उपयोग के लिए लकड़ी प्रदान करने वाली प्रजातियों का उपयोग वांछित हो सकता है।

• खाद्य स्रोत प्रदान करने के लिए चारा प्रजातियों का उपयोग शेल्टरबेल्ट में किया जा सकता है। इन पौधों को कटाई कर चारा उपलब्ध कराया जा सकता है। अन्य उपयोगी उत्पाद देने वाली झाड़ियों का भी समावेश किया जा सकता है।

शेल्टरबेल्ट हेतु उपयुक्त प्रजातियाँ :

पांच पंक्तियों वाली शेल्टरबेल्ट	
मध्यम पंक्ति	खेजडी, रोहिडा, इमली, नीम, शीशम, बबूल, सफेदा आदि
फ्लैंक पंक्तिया	कुमठ, केसिया सियामिया, फराश, केसुरिअना आदि
बाहरी पंक्तिया	कैर, फोग, बावली, बेर, झरबेरी आदि
तीन पंक्तियों वाली शेल्टरबेल्ट	

मध्यम पंक्ति	खेजडी, रोहिडा, इमली, नीम, शीशम, बबूल, सफेदा आदि
बाहरी पंक्तिया	कैर, फोग, बावली, बेर, झरबेरी आदि
एकल पंक्ति वाली शेल्टरबेल्ट	
एकल पंक्ति	बबूल, शीशम, सफेदा (छाया चित्र 2), टेमेरिक्स, केसुरिअना, पर्किन्सोनिया आदि

कटाई–छंटाई :

आमतोर पर वायु अवरोधक या शेल्टरबेल्ट की कटाई–छंटाई की सलाह नहीं दी जाती जब तक कि किसी विशेष उद्देश्य के लिए वायु अवरोधक न लगाई गई हो। कटाई–छंटाई के कारण इसकी घनत्व का कम होने की संभावना के कारण वायु को विक्षेपित करने में इसकी क्षमता कम हो सकती है। इसलिए किसी भी कटाई–छंटाई को करने से पहले विचार किया जाना चाहिए। तथापि शेल्टरबेल्ट की क्षतिग्रस्त या मृत शाखाओं को हटाया जा सकता है यदि उनके हटाने से शेल्टरबेल्ट के घनत्व या प्रोफाइल में बदलाव की संभावना नहीं है। यह निष्कासन एक शेल्टरबेल्ट के आकार, घनत्व और दीर्घायु को बढ़ाने के लिए प्रतिवर्ष किया जा सकता है। उपयुक्त उपकरणों का उपयोग करके ही कटाई–छंटाई किया जाना चाहिए।

संरचनात्मक प्रबंधन :

एक शेल्टरबेल्ट की समग्र संरचना इसकी प्रभावशीलता निर्धारित करती है। इसलिए शेल्टरबेल्ट के संरचनात्मक प्रबंधन के लिए आदर्श ऊंचाई और घनत्व को ध्यान में रखना चाहिए। जैसे–जैसे पेड़ बढ़ते हैं, उनकी आस पास के क्षेत्रों की फसलो के साथ प्रतिस्पर्धा भी बदल जाती हैं। पेड़ के मुकुट का घनत्व और स्थिति का आसपास की फसलों के ऊपर प्रभाव समय अवधि के साथ बदल जाता है। उच्च–घनत्व की शेल्टरबेल्ट उतने बड़े क्षेत्र की रक्षा नहीं कर सकती जितनी मध्यम घनत्व की शेल्टरबेल्ट कर सकती है। कुछ पौधों की छंटाई के माध्यम से मूल डिजाइन को पुनः प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार शेल्टरबेल्ट के भीतर अंतर–रोपण के माध्यम से वांछित से कम घनत्व वाला शेल्टरबेल्ट बेहतर बनाया जा सकता है।

छाया चित्र 2 : सफेदा व शीशम की एकल पंक्ति रक्षक पट्टिका

ऊत्तक संवर्धन विधि द्वारा वृक्षों के प्रजनन की तकनीक

राजवंत कौर कालिया

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

दुनिया में बढ़ती आबादी के साथ–साथ लकड़ी की मांग भी बढ़ती जा रही है। इस बढ़ोत्तरी के कारण लकड़ी के उपलब्ध भण्डार भी रिक्त होते जा रहे हैं। वनों के शहरीकरण, कृषि के लिए उपयोग एवं अन्य कई प्रकार के कार्यों के लिए बढ़ते उपयोग की वजह से वन भूमि घटती जा रही है। वृक्षारोपण के विकास की तरफ बढ़ती जागरूकता ने पेड़ों की गुणवत्ता युक्त रोपण सामग्री की मांग को बढ़ा दिया है। परम्परागत रूप से पेड़ों का प्रजनन बीजों द्वारा अथवा वानस्पतिक जनन तकनीकों द्वारा किया जाता रहा है। बीजों से किया गया संवर्धन विविधता को बढ़ाता है इसलिए वांछिक लक्षणों वाले पेड़ों के संवर्धन के लिए वानस्पतिक जनन तकनीकों का जैसे की ग्राफ्टिंग, लेयरिंग इत्यादि को विकसित किया गया है। इन तरीकों से समरूप संतान का उत्पादन होता है जिससे की लाभदायक लक्षणों को सुरक्षित रखा जाना संभव होता है। कुछ फलों एवं सब्जियों की प्रजातियाँ जैसे केला, गन्ना, आलू जो कि बीज रहित हैं, उनका प्रजनन इन वानस्पतिक जनन तकनीकों द्वारा किया जाता है ये तरीके आनुवंशिक विविधता को खत्म करते हैं परन्तु साथ ही फसल को जाति विशिष्ट बीमारी के लिए भी प्रवृत बनाते है जिससे पूरी फसल के एक साथ खत्म होने का खतरा बढ़ जाता है। इन तकनीकों के प्रयोग को सीमित करने के अन्य कारणों में प्रमुख हैं– ऋतु विशिष्टता, प्रोपगयूल्स (प्रजनन करने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला भाग) की सीमित उपलब्धता और जनक वृक्ष की उम्र में बढ़ोतरी के साथ जड़ उगने की क्षमता में कमी आना।

ऊत्तक संवर्धन, जैव प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण अंग है जिसे उपयोग में लाकर विशिष्ट रोपण सामग्री की उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। पादप ऊत्तक संवर्धन (Plant tissue culture) विधि के तहत पौधों के हिस्सों जैसे कोशिकाओं, ऊत्तकों एवं अंगों इत्यादि से कृत्रिम एवं निर्जीवाणुक वातावरण में पौधों को बनाया जा सकता है। जर्मनी के वनस्पतिक वैज्ञानिक हेबरलेन्ड (1902) ने सबसे पहले ऊत्तक संवर्धन तकनीक की संकल्पना की थी। उनके विचार से हर जीवित कोशिका (cell) में एक पूर्ण पौधे को बनाने की क्षमता होती है, इस सोच को उन्होंने सेल्यूलर टोटीपोटेंसी का नाम दिया। ऊत्तक संवर्धन विधि के मुख्य अनुप्रयोगों में शामिल हैं– समरूपी पौधों को तैयार करना (clonal propagation), कृत्रिम बीज तैयार करना (synthetic seed), रोगाणु रहित पौधे बनाना कृत्रिम वातावरण में कोशिकाओं से रसायनिक पदार्थ बनाना (secondary metabolite production) इत्यादि। इसके अतिरिक्त ट्रास्जेनिक पौधों का विकास तभी संभव है यदि पौधे की ऊत्तक संवर्धन विधि से उत्पत्ति का तरीका हमें ज्ञात हो।

ऊत्तक संवर्धन विधि से जनक पौधे के समरूपी पौधे के प्रजनन की तकनीक को माइक्रोप्रोपेगेशन (micropropagation) या सूक्ष्म प्रजनन कहा गया है। दूसरे शब्दों में कृत्रिम वातावरण में पौधे के एक अंश से बहुत सारे छोटे–छोटे पौधों के उत्पादन की तकनीक को माइक्रोप्रोपेगेशन या कलोनल प्रोपागेशन (clonal propagation) कहते हैं। परम्परागत प्रजनन के तरीकों जैसे कटिंग, ग्राफ्टिंग इत्यादि की तुलना में इस नई तकनीक के कई फायदे है पौधों को बनाने के लिए कम जगह की आवश्यकता उच्च गुणवत्ता, मौसमी प्रभावों से स्वतंत्रता, रोगाणु रहित प्रजनन। इसके अतिरिक्त हमें बार–बार जनक पौधे से एक्सप्लांट (explant) या प्रोपेग्यूल लाने की आवश्यकता नहीं रहती। पौधे की एक नोड़ (node) से हजारों समरूपी पौधे बनाये जा सकते हैं। सूक्ष्म प्रजनन इस प्रकार का वानस्पतिक प्रजनन का तरीका है जिसके तहत मातृ पौधे के एक छोटे से ऊत्तक से टेस्ट ट्यूब के अन्दर कृत्रिम वातावरण में हजारों नन्हें पौधे बनाए जाते हैं। अधिकांश वनीय वृक्षों में संवर्धन के लिए अपरिपक्व मातृ वृक्षों से ऊत्तक लेकर ही सफलता प्राप्त हुई है क्योंकि बहुत बड़े और पुराने पेड़ों (परिपक्व) की आयु ज्यादा होने के कारण उन्हें कृत्रिम प्रजनन के तंत्र में ढालना बहुत मुश्किल होता हैं फिर भी कई प्रजातियों में अधिक आयु वाले वृक्षों से प्रजनन करने में सफलता प्राप्त हुई हैं बढ़ती उम्र के कारण एक परिपक्व पेड़ का नवीनीकरण (rejuvenation) कठिन होता है। सूक्ष्म प्रजनन के दौरान परिपक्व मातृ वृक्ष की सभी कार्य प्रणालियों को समाप्त कर उन्हें कृत्रिम तरीकों से नियंत्रित किया जाता है। जिससे की बहुत सारे पौधों का निर्माण किया जा सके।

सूक्ष्म प्रजनन तीन तरीकों से किया जाता है– (1) कलियों का उत्तेजित संवर्धन (enhanced axillary bud multiplication) जिसके तहत प्राकृतिक जगहों पर बनने वाली कलियों की प्रजनन दर में वृद्धि की जाती है। (2) अप्राकृतिक स्थान पर कली की उत्त्पति (adventitious bud differentiation) जिसमें पौधे के ऐसे अंग, जिस पर प्राकृतिक रूप से कली बनती है जैसे की पत्ता, पर कलियों को बनाना। इन कलियों को बड़ा कर उन में जड़े उगा कर पौधे तैयार किये जाते हैं। (3) दैहिक भ्रूण बनना (somatie embryogensì) जिसमें एक दैहिक कोशिका को भ्रूण की तरह बढ़ने के लिए ढाला जाता है।

इनमें से पहला तरीका जिसमें कलियों को बढ़ने के लिए उत्तेजित किया जाता है, समरूपी पौधे तैयार करने के लिए सबसे सरल और विश्वसनीय तरीका है। इस विधि को चार चरणों में बांटा गया है – स्थापना, कलियों, टहनियो का गुण, जड़ों की उत्पति और पौधे को कृत्रिम से प्राकृतिक वातावरण में जाने के लिए अभ्यस्त करना। स्थापना प्रोटोकॉल की सफलता इस विधि का सबसे महत्वपूर्ण कदम है। इस चरण की सफलता ही पूरी प्रक्रिया की सफलता को निर्धारित करती है। प्रकृति से ली गई कलीयुक्त नोड़ स्वभाविक रूप से रोगाणु युक्त होती है इसलिए उसे कृत्रिम पोषण माध्यम में रखने से पहले रोगाणु मुक्त किया जाता हैं। इन सूक्ष्म जीवों को हटाने के लिए रसायनिक समाधान (सोडियम हाइपोक्लोराइट, कैल्शियम

हाइपोक्लोराइट या मरक्यूरिक क्लोराइड) प्रयोग में लाए जाते हैं। गंभीर संदूषण की आशंका वाले पौधों को यदि संभव हो तो मगचसंदज संग्रह से 1–2 महीने पहले ग्रीन हाउस में स्थानान्तरित किया जा सकता है।

सूक्ष्म जीवाणु मुक्त एक्सप्लंट को अर्द्ध ठोस/तरल माध्यम में रखा जाता है। यह माध्यम कार्बनिक और अकार्बनिक पोषक तत्व, कार्बन स्त्रोत, विकास नियामकों आदि युक्त होता है। पोषक तत्व प्रदान करने के अतिरिक्त यह माध्यम गैस आदान प्रदान के लिए वातावरण, विकास के लिए आसमाटिकम बनाये रखने, बेकार रसायनों को निकालने के लिए और पौधे को सीधा रखने के लिए समर्थन देने का भी कार्य करता हैं। विभिन्न अनुसंधान समूहों ने कई पोषण तत्व माध्यम (medium) तैयार किये है जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण हैं– Murashige और Skoog माध्यम, Gamborg माध्यम, Nitsch और छपजेबी माध्यम इत्यादि। कार्बनिक यौगिकों में विटामिन, एमिनो एसिड और कभी कभी कुछ अपरिभाषित कार्बनिक की खुराक भी शामिल है। थोड़ी मात्रा में जैविक अणु और विटामिन भी आवश्यक होते हैं। Thiamine (विटामिन बी–1), निकोटिनिक एसिड, पायरीडोक्सिन (विटामिन बी–6), पी एमिनोबेजोइक एसिड, एस्कॉर्बिक एसिड, बायोटिन सायनोकोबलेंमीन (विटामिन बी 12), फोलिक एसिड और राइबोफ्लेविन (विटामिन बी 2) विकास को प्रोत्साहित करते हैं। आमतौर पर 2 या 3 प्रतिशत चीनी या ग्लूकोज कार्बन स्त्रोत के रूप में जोड़ा जाता है, मीडिया या पीएच 5.5–5.8 के बीच होना चाहिए। हार्मोन या विकास नियामक कोशिकाओं और ऊत्तकों के भाग्य का निर्धारण करने का सबसे महत्वपूर्ण घटक हैं। हार्मोन ''रासायनिक दूत'' हैं जो पौधों में वृद्धि, विकास और कई अन्य कार्यों को नियंत्रित करते हैं। ज्यादात्तर यह विकास नियामक जीव के एक भाग में बनते हैं और दूसरे भागों तक कोशिकाओं के माध्यम से स्थानान्तरिक होते हैं जहाँ वे विकास संबंधी कार्यप्रणालियों को नियंत्रित करते हैं। पादप विकास नियामकों के पांच प्रमुख प्रकार हैं– ऑक्जिन, साइटोकाइनिन, जिब्रालिन, एबसिसिक एसिड़ और इथिलीन। इनमें से ऑक्जिन और साइटोकाइनिन ऊत्तक संवर्धन में सबसे ज्यादा प्रयोग में लाए जाते हैं।

ऑक्जिन जैसे की इण्डोल–3–एसिटिक ऐसिड (आईएए), इण्डोल–ए–ब्यूटरिक एसिट (कआईबीए), 2,4–डाईक्लोरोनॉक्सीएसिटिक एसिड (2, 4–डी), 1– नेपॅथालीन एसिटिक एसिड़ (एनएए) इत्यादि कोशिका विभाजन और कोशिकाओं की लम्बाई बढ़ाते हैं और शाखाओं के पार्श्व विकास (lateral growth) को रोकते है। उच्च सान्द्र पर यह जड़ों के विकास में सहायता करते है और दैहिक भ्रूण के विकास में मदद करते है। साइटोकाइनिन जैसे की जीएटिन–जेड, आइसोपेंटाइलएडिनिन (आईपी), 6–बेन्जाइल एमिनोप्यूरीन या बेन्जाइलएडिनिन (बीएपी), काईनिटिन, थाइडाइज्यूरोन (टीडीजेड), मेटाटोपलिन इत्यादि आक्सनिक शाखा का गठन करना, जड़ के गठन को बाधित करना, कोशिका विभाजन करना और शाखाओं के विकास में मदद करते हैं। ऑक्जिन और साइटोकाइनिन ऊत्तक संवर्धन विधि के दौरान कोशिका विभाजन को बढ़ावा देते हैं और विभिन्न चरणों पर प्रभाव करते है इसलिए एक दूसरे के पूरक है। इनके अनुपात के हेर फेर से

जीवोत्पत्ति प्रभावित होती है। जब दोनों का अनुपात बराबर हो तो घट्टा (callu) का गठन होता है। यह दोनों ही कोशिका विभाजन और विकास की दर को प्रभावित करते हैं। जब ज्यादा मात्रा में साइटोकाइनिन उपलब्ध होता है तो ज्यादातर शाखाएं बनती है और ज्यादा ऑक्जिन की उपलब्धता की स्थिति में जड़ों का विकास होता हैं।

जिब्रेलिन शाखाओं की अप्राकृतिक रूप से लंबाई बढ़ाने के लिए इस्तेमाल होता है जबकि एबसिसिक एसिड ज्यादातर ऊत्तकों को परिपक्व बनाने में इस्तेमाल किया जाता है। इथिलीन एक गैसीय नियांमक है जो ज्यादातर ऊत्तक संवर्धन के दौरान उगाये जा रहे ऊत्तकों द्वारा बनाया जाता है और वह ऊत्तक संवर्धन के दौरान बाधाएं उत्पन्न करता हैं ऐसी स्थिति में माध्यम में उन रसायनों को भी डाला जाता है जो इस गैसीय नियामक के बनने में बाधा उत्पन्न करते हैं अतः ऊत्तक सवंर्धन प्रक्रिया को बेहतर तरीके से पूरा करने में सहायता करते हैं।

ऊत्तक संवर्धन विधि के पहले चरण (स्थापना) में कलियों की उत्तेजना के लिए दोनों साइटोकाइनिन और ऑक्जिन की आवश्यकता होती है। दूसरे चरण (शूट गुणा) में साइटोकाइनिन की और तीसरे चरण (जड़ गठन) के दौरान ऑक्जिन की आवश्यकता होती है।

कृत्रिम वातावरण में पौधो की खेती, जमीनी तौर पर होने वाली खेती से भिन्न होती है। ऊत्तक संवर्धन विधि द्वारा तैयार किए गए पौधे आम तौर पर बहुत नाजुक होते हैं क्योंकि इन पौधों को हर प्रकार की सुविधाएं जैसे की अच्छा भोजन, स्वच्छ वातावरण, उपयुक्त रौशनी इत्यादि दिए जाते हैं इसलिए पौधे अपना भोजन बनाने में सक्षम नहीं होते, इनके पत्ते बहुत पतले और नाजुक होते है और पत्तों की सतह पर रन्घ्र (stomat) घनत्व बहुत कम होता है और ये रन्ध कार्यात्मक नहीं होते। चौथे चरण में इन नाजुक पौधों को प्राकृतिक वातावरण में रहने और बढ़ने के लिए अभ्यस्त किया जाता है। इस दौरान इनके भोजन में कटौती की जाती है और रोजाना कुछ समय के लिए इन्हें प्राकृतिक वातावरण में रखा जाता है। एक से दो महीने ऐसा करने से पत्तों की मोटाई बढ़ती है, पत्तों की सतह पर इपिक्यूटिक्यूलर वैक्स (epicuticular wax) बनना शुरू होता है, रंघ्रों की संख्या और कार्यक्षमता में विकास होता है, वाष्पोत्सर्जन प्रक्रिया का विनियमन होता है और पौधों में जल स्थिरीकरण प्रक्रिया बेहतर होती है। जड़ित पौधों को पहले ढीले ढक्कन वाले कंटेनर में ग्रीन हाउस में रखा जाता है, फिर कुछ समय बाद छाया में छोड़ा जाता है जिससे उन्हें नए वातावरण की परिस्थितियों से सामंजस्य बनाने में सहायता मिलती है।

बारहमासी वृक्षों के लिए विकसित प्रोटोकॉल की उपयुक्तता का पता लगाना बेहद जरूरी है क्योंकि ये वृक्ष प्राकृतिक वातावरण में कई वर्षों तक विद्यमान रहते हैं। व्यावसायिक तौर पर इन प्रोटोकॉल को इस्तेमाल करने से पहले इन पौधों के प्रतिरूप एकरूपता और गुणवता की जांच और उचित नियंत्रण के

साथ क्षेत्र परीक्षण का इंतजार करना चाहिए। इसलिए हर चरण में गुणवत्ता नियंत्रण के तरीके इस्तेमाल करते हुए दोष के संभावित खतरे को कम करना चाहिए। अतीत में ऊत्तक संवर्धन विधि से बनाए गए पौधों की आनुवंशिक निष्ठा, रूपात्मक और शारीरिक लक्षणों के उपयोग से इस विधि की परिपक्वता पर बहुत से वैज्ञानिकों ने टिप्पणी की है और भविष्य में भी हर पौधे के लिए इस टिप्पणी की आवश्यकता होगी। इस विधि द्वारा तैयार किए गए पौधों की समरूपता और आनुवंशिक निष्ठा जांचने के लिए आज कल वैज्ञानिक डीएनए मार्कर और अधिक कुशल उपकरणों का प्रयोग कर रहे हैं।

वाणिज्यिक प्लांट टिूश कल्चर

वाणिज्यिक प्लांट टिशू कल्चर प्रयोगशालाओं को विश्व भर में स्थापित किया गया है। अधिकांश अनुसंधान संस्थानों को अपनी नियमित गतिविधियों के एक भाग के रूप में प्लांट टिशू कल्चर प्रयोगशालाओं की आवश्यकता होती है। एक हजार से अधिक पौधों की प्रजातियों को इन विट्रो प्लांट टिशू कल्चर में संवर्धित किया गया है। वाणिज्यिक टिशू कल्चर भारत में 1987 में प्रारम्भ हुआ जब एनवी थॉमस एण्ड कम्पनी ने केरल में एनसीएल पूणे द्वारा विकसित प्रोटोकॉल पर आधारित इलायची के बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए व्यावसायिक इकाई की स्थापना की। कई अन्य वाणिज्यिक कम्पनियों ने भी इस क्षेत्र में प्रवेश किया। दूसरी इकाई 1988 में बंगलौर में इंडो–अमेरिकन संकर बीज कम्पनी ने स्थापित की। अब इस क्षेत्र में कई कम्पनियाँ हैं– हिन्दुस्तान लीवर, टाटा टी, गेंडा बायोटेक, नाथ बीज, आरपीजी इंटरप्राइजेज, भारतीय तंबाकू, और हिन्दुस्तान एग्री जेनेटिक्स आदि प्रमुख कम्पनियां हैं। वाणिज्यिक टिशू कल्चर की भारत में 46 इकाइयाँ है। 180 मिलियन पौधे की कुल उत्पादन क्षमता के साथ इनकी उत्पादन क्षमता 1 लाख से 5 लाख प्रति वर्ष है। इन टिशू कल्चर इकाइयों में से अधिकांश महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और केरल में स्थित हैं। इन कम्पनियों ने अब तक काफी हद तक अंतराष्ट्रीय बाजार के शोषण पर ध्यान केन्द्रित किया है। प्लांट टिशू कल्चर तकनीक की कृषि क्षेत्र में क्रांति लाने की क्षमता को ध्यान में रखते हुए जैव प्रौद्योगिकी विभाग (डीबीटी) ने इस तकनीक की एक प्राथमिक क्षेत्र के रूप में पहचान की है और इसके समन्वित तरीके से विकास और प्रौद्योगिकी के व्यावसायीकरण के उद्देश्य से कई कार्यक्रमों की शुरूआत की है।

प्रजातियों की सूची जिन्हें इन विट्रो तकनीक द्वारा बड़े पैमाने पर बढ़ाया जा रहा है (BCIL, 2005)

श्रेणी	**पौधे**
फल	केला, अंगूर, अनन्नास, स्ट्रॉबेरी, चीकू
नकदी फसलें	गन्ना, आलू
मसाले	हल्दी, अदरक, वेनिला, बड़ी इलायची, छोटी इलायची

औषधीय पौधे	एलोवेरा, जीरेनीयम, स्टेविया, पचौली, नीम
सजावटी पौधे	जरबेरा, कारनेशन, एन्थूरीयम, लिली
पेड़	सागौन, सफेद सागौन, बांस, नीलगिरी, पोपुलर

दो टिशू कल्चर पायलट संयंत्र सुविधाएं ऊतक सुसंस्कृत पौधों के प्रदर्शन और रोपण सामग्री के बड़े पैमाने पर उत्पादन के मुख्य उद्देश्य के साथ स्थापित किए गए थे। प्रत्येक प्रायोगिक संयंत्र की प्रतिवर्ष 1 लाख पौधों के उत्पादन की क्षमता है। हार्डनिंग (पौधों को अभ्यस्त करने के लिए) इकाईयों को भी विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में स्थापित किया गया है। हर प्रायोगिक संयंत्र 5 लाख से अधिक ऊतक सुसंस्कृत पौधों का उत्पादन करता है। ये पायलट संयंत्र तकनीकों के हस्तांतरण के लिए एक प्रभावी मंच प्रदान करने के लिए अब सूक्ष्म प्रजनन प्रौद्योगिकी पार्क (MTP) में बदल दिए गए है।

घरेलू बाजार में पारंपरिक प्रचारित पौधों की खपत की उच्च दर और समग्र उत्पादकता में सुधार के लिए और इस उद्योग को मजबूत बनाने के लिए टिशू कल्चर द्वारा इस आवश्यकता के कुछ हिस्से के प्रतिस्थापन की क्षमता को देखते हुए, बायोटेक कंसोर्टियम ऑफ इण्डिया लिमिटेड (BCIL) द्वारा 2002 में एक बाजार सर्वेक्षण किया गया था। यह अध्ययन पौधों की मांग में सुधार और टिशू कल्चर उद्योग को मजबूत बनाने के लिए व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण ऊतक सुसंस्कृत पौधों (TCP), वर्तमान घरेलू मांग और अनुमानों, प्रमुख उपभोक्ता क्षेत्रों और सिफारिशें का चयन करने के उद्देश्य से किया गया था। राज्य कृषि विभाग, कृषि निर्यात क्षेत्र (AEZs) चीनी उद्योग और निजी किसान टिशू कल्चर पौधों (TCP) के प्रमुख उपभोक्ता हैं। कागज उद्योग, औषधीय पौधे उद्योग और राज्य वन विभाग एक सीमित पैमाने में इसका का उपयोग कर रहे हैं। मसाला बोर्ड, कोचीन, भी प्रगतिशील किसानों की भागीदारी के माध्यम से विशेष रूप से छोटी इलायची, वेनीला और बड़ी इलायची के लिए बड़े क्षेत्र को TCPs की खेती के अन्तर्गत लाया है। देश भर में फैले 140 चीनी कारखानों के अलावा कई जागरूक किसान भी पारंपरिक पौधों की तुलना में TCPs को इस्तेमाल कर रहे हैं। कारखानों की एक बड़ी संख्या के अगले 3–5 वर्षों में TCPs को इस्तेमाल करने की उम्मीद है। इसके अलावा, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, तमिलनाडु आदि राज्यों में प्रगतिशील किसान और नर्सरी TCPs के बड़े उपभोक्ता हैं– विशेष रूप से फूल, केला, गन्ना और औषधीय पौधों के लिए। टिशू कल्चर पौधों के उपभोक्ता क्षेत्रों के आधार पर राज्य वन विभागों और संयंत्र आधारित उघोग की प्राथमिकता इस प्रकार हैं–

राज्य	प्राथमिक पौधे
तमिलनाडु	चन्दन, बम्बूसा प्रजातियाँ, एलेएन्थस, मेलकोनिया प्रजातियाँ, सेपींडस प्रजातियाँ
मिजोरम	बांस
केरल	सागौन, यूकेलिप्टस, बांस, एल्बीजया केन
उत्तरांचल	चिनार, नीलगिरी, सागौन शीशम
मध्य प्रदेश	अमला, मेमेलिया प्रजातियाँ
पश्चिम बंगाल	नीलगिरी, सागौन, मेलिना प्रजातियाँ, डलबर्जिया प्रजातियाँ, टीरोकारपस, जाइलोकारपस प्रजातियाँ, मेचिलस प्रजातियाँ, कैलमेस प्रजातियाँ
त्रिपुरा	सागौन, बांस, गेमेलिया,
संयंत्र आधारित उद्योगों/संघों/निर्यात संवर्धन बोर्ड की प्राथमिकता	
उद्योग	**प्राथमिक पौधे**
कागज उद्योग	नीलगिरी सूबबूल, बबूल, केजूराइना बांस
औषधीय पादप उद्योग	मुसब्बर, पचौली, सफेद मुसली, टैक्सस

टिशू कल्चर उद्योग की वर्तमान प्रगति उत्साहजनक है, लेकिन तेजी से विकास नहीं हुआ हैं। इस धीमी गति से विकास का प्राथमिक कारण है, इस प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग के बारे में लोगों के बीच जागरूकता स्तर की कमी। हालांकि देश के भीतर अनुसंधान समूहों ने कई पौधों की प्रजातियों के लिए प्रोटोकॉल के मानकीकरण का प्रयास किया है, परन्तु लाभ पर्याप्त रूप से क्षेत्रीय स्तर पर किसानों को प्रदर्शन नहीं किया गया है। सूक्ष्म प्रजनन प्रौद्योगिकी निश्चित रूप से भारतीय किसानों और उद्योगों की सामाजिक आर्थिक स्थिति में सुधार की क्षमता रखती है।

रोहिड़ा का सूक्ष्म प्रजनन सवंर्धन

शुष्क क्षेत्रों में चूहा प्रबंधन

विपिन चौधरी

अखिल भारतीय कशेरुकी नाशीजीव प्रबंधन नेटर्वक परियोजना
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

I. प्रस्तावना

पश्चिमी राजस्थान में पाई जाने वाली स्तनधारियों की प्रजाति में कृन्तक प्रजाति की संख्या सर्वाधिक है। यह रेगिस्तान में पाई जाने वाली विविध विषम परिस्थितियों में भी अपने आप को ढालने में सक्षम है। रेगिस्तानिकरण व कृषि में होने वाले नुकसान में इनकी भूमिका अहम हैं। भारतवर्ष में लगभग 103 प्रजातियों के कृन्तक पाए जाते है। राजस्थान में इनकी लगभग 18 प्रजातियां पायी जाती है, इनमे से 6–7 प्रजातियां फसल, घरों एंव गोदामों व अन्य संसाधनो में नुकसान पहुंचाती है।

चूहे स्तनधारी वर्ग के जन्तु हैं जो मानव के साथ–साथ रहकर उसके शत्रु बने हुए है। ये हमारी कृषि के प्रमुख शत्रु हैं। जो चूहे खेतों में या जंगली क्षेत्रों में रहते हैं वे फसल को बुवाई से लेकर कटाई तक और फिर खलिहानों में अर्थात फसल उत्पादन की हर अवस्था में अत्याधिक बर्बादी करते हैं। आमतौर पर चूहों द्वारा लगभग 5–15 प्रतिशत का नुकसान फसलोत्पादन के दौरान देखा गया है। फसलों के अतिरिक्त, फलोद्यान, गोचर भूमि, चारा फसलों तथा वनारोपण में भी इन जीवों द्वारा काफी नुकसान होता है। ये घरों, दुकानों, गोदामों, मुर्गीफार्म, पशुओं के निवास स्थल में, भण्डारित अनाज, खाद्य पदार्थ तथा चारा इत्यादि को काट कर अथवा खाकर नुकसान करते हैं और अपनी मल–मूत्र तथा बालों आदि से पर्यावरण को भी प्रदूषित करतें हैं। रिहायशी क्षेत्रों में ये दरवाजे, खिड़कियां, बिजली, टेलिफोन, टी.वी. आदि के तार एवं अन्य महत्वपूर्ण घरेलू उपकरणों को भी कुतर देते हैं। कुछ चूहे तो घरों में तथा आसपास इतने गहरे सुरंग रुपी बिल बनाते हैं कि बरसात के समय ऐसे मकानों के गिर जाने की भी आशंका रहती है।

इनके अतिरिक्त जनस्वास्थ्य के क्षेत्र में भी चूहों द्वारा अपार क्षति होती है। प्लेग नामक बीमारी से तो सभी परिचित है जिनके कीटाणु चूहों द्वारा ही फैलते हैं। प्लेग के अलावा चूहे मानव एवं उसके पालतू पशुओं में लगभग एक सौ प्रकार की बीमारियां फैलाते हैं। इस प्रकार मनुष्य की जीवन शैली की प्रत्येक गतिविधि में चूहे अत्यधिक बाधक है जो हमारे साथ या आसपास निवास करते हुए हमें क्षति पहुंचाते हैं।

II. शुष्क क्षेत्रों में पाये जाने वाले मुख्य कृंतक

कृंतक जाति	मुख्य निवास स्थान	वितरण
घरेलू चूहा, *रैटस–रैटस*	ग्रामीण एवं शहरी आवासीय क्षेत्रों एवं कुछ उपजातियां नारियल तथा अन्य रोपण फसलों पर	संपूर्ण भारत में
घरेलू चुहिया, *मस मस्कुलस*	गोदामों, घरो एवं खेतो में	संपूर्ण भारत में
मैदानी चुहिया, *मस बोडुंग*	खेतो में	संपूर्ण भारत में
छोटी घूस, *बेंडीकोटा बेंगालेसिस*	खेत, शहरी गोदाम तथा आवासीय क्षेत्रों में	पश्चिमी राजस्थान के कुछ क्षेत्रों के अतिरिक्त संपूर्ण भारत में
भारतीय मृग, चूहा *टटेरा इंडिका*	खेतो, चारागाहो एवं अन्य कृषि क्षेत्रों में	पहाड़ी क्षेत्रों को छोड़ कर संपूर्ण भारत में
सेही, *हिस्ट्रिक्स इडिका*	फसलों खेतो, उद्यानों एवं चट्टानी क्षेत्रों में	संपूर्ण भारत में
गिलहरी, *फुनाम्बुलस पिनान्टी*	उद्यानों, पौधशालाओं वृक्षो तथा ग्रामीण व शहरी आवासीय क्षेत्रों में	संपूर्ण भारत में
भारतीय मरु जरबिल, *मेरियोनिस हरियानी*	फसली खेतो, पड़त एवं बंजर भूमि, रेतीले क्षंत्रों एवं चारागाह में	राजस्थान, पंजाब, हरियाणा एवं गुजरात शुष्क क्षेत्रों में
नर्म रोम वाला चूहा, *मिलार्डिया मेल्टाडा*	फसली खेतो एवं चारागाह क्षेत्रों में	सुदूरपूर्व एवं पहाड़ी क्षेत्रों को छोड कर संपूर्ण भारत में
छोटी पूंछवाला छदूंदरी चूहा, *निसोकिया इड़िका*	फसली खेतो, चारागाहो एवं उद्यानो में	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश व राजस्थान में उत्तर –पूर्व भारत के पर्वतीय क्षेत्रों
रोम युक्त जरबिल चूहा, *जरबिल ग्लीडोइ*	खरीफ फसलों में	यह पश्चिमी राजस्थान के अत्यन्त रेतीले क्षेत्रों में पाया जाता है

III. चूहा प्रबन्ध

चूहा प्रबन्ध तकनीक मुख्यतयाः दो प्रकार की रणनीति पर निर्भर करती है।

(क) **पहली रणनीति** चूहों से बचाव की है और प्रमुखतः बिना किसी विष के प्रयोग की है।

(ख) **दूसरी रणनीति** में चूहानाशी विषों का प्रयोग किया जाता है।

ये दोनों रणनीतियां एक साथ समन्वित तरीके से अपना कर चूहा प्रबन्धन करके खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। समन्वित चूहा प्रबन्ध की विभिन्न विधियां क्षेत्रानुसार अपनायी जा सकती है।

रिहायशी, पशु बाड़े तथा अन्य आन्तरिक क्षेत्रों में : इन क्षेत्रों में मुख्य रुप से दो प्रकार के चूहे पाये जाते हैं घरेलू चूहा तथा घरेलू चुहिया। इसके अतिरिक्त छोटी घूस नामक चूहा भी रिहायशी क्षेत्रों में निवास करता है। यह चूहा पश्चिमी राजस्थान के अतिशुष्क क्षेत्रों को छोड़कर पूरे भारत में पाया जाता है। इन क्षेत्रों में बचाव की नीति ही श्रेष्ठकर है इसके लिए घर, दुकान, गोदाम, इत्यादि चूहारोधी होने चाहिए। चूहों के प्रवेश के सभी मार्ग जैसे दरवाजे, खिड़कियां, रोशनदान इत्यादि सही तौर पर बन्द होने वाले हों, नालियों के मुँह मोटी जाली से बन्द हों। दरवाजे पर 2–3 फुट ऊंची लोहे की पतली पट्‌टी लगा दें जिसे चूहे कुतर न सके। यदि घरों के अन्दर चूहे हों तो उन्हें पिंजरों द्वारा पकड़कर पिंजरें सहित पानी में डूबो कर मार दें। यदि चूहों की संख्या अधिक हो तब ब्रोमोडियोलोन (0.005 प्रतिशत) नामक चूहानाशी विष का प्रयोग करें। यह विष चूहों पर अधिक प्रभावी है और मानव के लिए अपेक्षाकृत सुरक्षित है। यह बाजार में तैयार चुग्गे के रुप में मिलता है। इसकी 15–20 ग्राम मात्रा किसी प्लेट में रखकर चूहों के आवागमन के स्थानों पर 4–5 जगह रख दें। यह एक मध्यम असरकारक विष है इसलिए चूहे इसे खाने के 3–7 दिनों के अन्दर मरते है। एकबार पूरे क्षेत्र को चूहा रहित करने बाद उस स्थान को चूहारोधी करने का प्रयास करें। घर की तथा बाहर आसपास की पूरी सफाई रखें तथा गंदगी न होने दें, क्योंकि चूहे गंदी जगहों पर अधिक आकर्षित होते हैं।

खेतों एवम् खलिहानों में : खेतों में चूहों की लगभग 5–6 जातियां हानिकारक चूहों की श्रेणी में रखी जाती है। इनमें **छोटी घूस** को तो राष्ट्रीय स्तर पर किसानों का प्रथम श्रेणी का शत्रु माना जाता है। इसके अतिरिक्त **नर्म रोम का चूहा, भारतीय जरबिल, मरु जरबिल**, **मैदानी चुहिया** आदि अन्य महत्वपूर्ण शत्रु चूहों की जातियाँ हैं।

खेतों व खलिहानों में चूहा प्रबन्ध की रुपरेखा लगभग घरेलू चूहा नियंत्रण के ही समान होती है परन्तु उसकी रणनीति अलग होती है क्योंकि खेतों में 4–5 जाति के चूहे एक साथ पाये जाते हैं, वे बिलों में रहते हैं तथा अपने प्राकृतिक शत्रुओं से हमेशा आशंकित रहने के कारण अधिक सतर्क एवं चालाक होते हैं। उनमें कई प्रकार की व्यावहारिक अनुकूलताएं भी पायी जाती है जिससे खेतों में चूहा प्रबन्ध कार्यक्रम का संचालन कुछ जटिल होता है। चूहों के आश्रय स्थलों को यदि समय पर नष्ट/बाधित किया जाये तो य चूहे खेतों से पलायन कर जाते हैं। जैसे गर्मियों में खेत की जुताई, मेड़ों की यथासम्भव कम ऊंचाई, नियमित खरपतवार नियंत्रण, खड़ी फसल की अवस्था में खेतों में सिंचाई के समय बिलों मे पानी भरना इत्यादि। इसी प्रकार यदि प्रमुख फसल के चारों तरफ लगभग 5–10 मीटर की पट्‌टी में अपेक्षाकृत कम

महत्व की फसलें लगाये या चूहों को पसन्द न आने वाली फसले जैसे थोर (कैक्टस) की बाड अथवा ग्वार या अरंडी आदि उगाने से भी मुख्य फसल में चूहों का प्रकोप कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त चूहा पकड़ने वाले पिंजरे भी कुछ हद तक उपयोगी हो सकते हैं।

यदि खेतों मे चूहों की संख्या बहुत अधिक हो, जिनका आंकलन उस क्षेत्र में मौजूद बिलों द्वारा किया जा सकता है, तब चूहानाशी विष का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है। इसके लिए मुख्यतः जिंक फास्फाईड तथा ब्रोमोडियोलोन नामक चूहा नाशी विषों का उपयोग निम्नलिखित क्रम में करना आवश्यक है।

पहले दिन	:	खेतों के सर्वेक्षण के बाद क्षेत्र मे मौजूद सभी बिलों को बन्द कर दें।
दूसरे दिन	:	पुनः खुले हुए ताजे बिलों को पहचान कर उसमे सादा चुग्गा डाले। सादा चुग्गा बनाने के लिए बाजरा/गेंहू/ज्वार/मक्का आदि किसी एक खाद्यान्न में मूंगफली/तिल/सरसों का तेल (20 ग्राम तेल प्रति कि.ग्रा. खद्यान्न) मिलाये। इसकी 10–12 ग्राम मात्रा प्रतिबिल की दर से सभी ताजे बिलों में डालें।
चौथे दिन	:	सादा चुग्गा डाले गये बिलों में ही बिष चुग्गा डालें। विष चुग्गा बनाने के लिए प्रति कि.ग्रा. सादा चुग्गा में 20 ग्राम जिंक फास्फाईड पाउडर भुरक कर अच्छी तरह मिलाये ताकि विष अन्न की तेलीय सतह पर ठीक से चिपक जाये। इस प्रकार बने विष चुग्गे की 8–10 ग्राम मात्रा प्रति बिल के हिसाब से चूहों के ताजे बिलों में डाल दें।
पांचवें व छठे दिन	:	पूरे क्षेत्र का सर्वेक्षण करें तथा मृत चूहों को एकत्रित करके गड्डा खोद कर दबा दें।
दस से बारहवें दिन	:	सभी बिलों को पुनः बन्द करे और अगले दिन यदि बिल खुले हुए मिलें तो उनमें ब्रोमोडियोलोन (0.005 प्रतिशत) का चुग्गा (15–20ग्रा/बिल) डाल दें। विष चुग्गा बनाने के लिए प्रति कि.ग्रा. सादा चुग्गा में ब्रोमोडियोलोन पाउडर 20 ग्राम भुरक कर अच्छी तरह मिलाये ताकि विष अन्न की तेलीय सतह पर ठीक से चिपक जाये।

इस प्रकार इस पूरी प्रक्रिया में 10–15 दिन लगते हैं, परन्तु चूहों का 90 प्रतिशत तक नियंत्रण हो जाता है और यह 3–4 माह तक प्रभावी रहता है। चूहानाशी विष मानव के लिए भी अत्यन्त विषैले होते हैं

इसलिए इनके प्रयोग, भण्डारण तथा प्रयोग के बाद मृत चूहों को नष्ट करने मे पूरी सावधानी बरतना अति आवश्यक है।

IV. चूहा प्रबन्ध–एक अभियान

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि चूहे हमारी तरह स्तनधारी जीव हैं और अत्यधिक चालाक होते हैं इनका कार्य क्षेत्र भी काफी विस्तृत होता है, इसलिए यदि चूहा प्रबन्ध कार्य एक घर या एक खेत पर किया गया तो एसा प्रयास निरर्थक ही साबित होगा क्योंकि शीघ्रातिशीघ्र यह समस्या पड़ोस से पुनः और अधिक उग्र रुप में आ जायगी। इसलिए चूहा प्रबन्ध का कार्य गांव/समाज स्तर पर सभी को मिलकर सहकारिता की भावना से एक अभियान के रुप में अपनाना अति आवश्यक है। जिसके लिए पूरे समाज को जागरुक होना चाहिए। घरों या अन्य अन्दरुनी क्षेत्रों मे तो यह कार्य समस्यानुसार कभी भी किया जा सकता है परन्तु खेतों एवं खलिहानों में तो इसकी एक निश्चित समय सारणी है और उसी के अनुसार चूहा प्रबन्ध अभियान चलाने से अच्छी एवं दूरगामी सफलता मिल सकती है।

V. कृंतकनाशी विष के प्रयोग के समय सावधानियाँ तथा उपचार

तेज कृंतकनाशी विष (रोडेन्टोसाइड्स) मनुष्यो, पशुधन तथा अन्य पक्षियो व वन्य जीवों के लिये भी धातक होते है। अतः चूहा नियंत्रण कार्यक्रम मे उनके रख–रखाव तथा प्रयोग में विशेष सावधानियाँ रखनी चाहिये।

- विष ताले मे रखा जाये ताकि बच्चों की पहुँच से दूर रहे।
- डिब्बे में से जहर निकालते समय ध्यान रखना चाहिये कि पाउडर के कारण मुंह में तथा श्वास द्वारा शरीर में प्रवेश न कर सकें।
- खाली हुए डिब्बों को नष्ट करके जमीन में दबा देना चाहिये।
- विष चुग्गा खुली जगह अथवा हवादार कमरे में ही बनाना चाहिये ताकि जहरीली गैस एक जगह इकठ्ठी न होने पाये।
- चुग्गा बनाने एवं बिलों में डालने हेतु प्रयोग में लाये गये बर्तन, लकड़ी की छड़ी अथवा पत्तों आदि को नष्ट कर देना चाहिये।
- पशु, पक्षियों, मुर्गियों तथा अन्य वन्य जीवों के ध्यान में रखते हुए विष चुग्गा सिर्फ बिलों के अन्दर ही डालना चाहिये।

- विष चुग्गा बनाने वाले एवं बिलों मे डालने वाले व्यक्तियों के हाथो में किसी प्रकार का धाव नही होना चाहिये। कार्य समाप्त होने के बाद हाथ साबुन से धोना चाहिये।
- विषैले पदार्थ से कार्य करते समय तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट तथा खाने पीने की वस्तुओं का कभी भी उपयोग नहीं करना चाहिये।

नियंत्रण कार्य के बाद सभी मरे चूहों को एकत्रित करके जमीन में गहरा दबा देना चाहिये, क्योंकि इन्हें खाकर कुत्ते, बिल्ली तथा चील–कौवे अकारण ही मर सकते हैं।

यदि किसी प्रकार भी अनजाने में विष मुंह अथवा श्वास में प्रवेश कर जाये तो तुरन्त कुछ प्राथमिक उपचार अवश्य करना चाहिये। अलग–अलग जहर के लिये ये उपचार इस प्रकार हैः–

(अ) जिंक फॉस्फाइड तथा एल्यूमिनियम फॉस्फाइड

पीड़ित व्यक्ति को फौरन उल्टियाँ करवानी चाहिये। इसके बाद छह ग्राम (आधा तोला के लगभग) लाल दवा (पोटेशियम परमेंगनेट) को गर्म पानी में धोल कर पिलाना चाहिये। इसके लगभग 10 मिनट बाद ही आधा चममच (छोटा) कापर सल्फेट (नीला थोथा) एक पाव पानी में मिलाकर पिलाना चाहिये। फिर कोई दस्तावर दवा पानी में धोल कर पिलाना चाहिये तथा तुरंत डाक्टर को बुलाना चाहिये।

(ब) आंतकरोची अथवा एंडीकोएगुलेंट विष (वारफरिन, ब्रोमेडिओलोन आदि)

इस समूह के विष ज्यादा तेज नहीं होते हैं किन्तु पीड़ित व्यक्ति के रक्त की नलिकाओं को बहुत कमजोर कर देते है। साथ ही रक्त जमने या थक्का (क्लॉट) बनने की प्रक्रिया को अत्यन्त धीमा कर देते है, इससे व्यक्ति के अन्दर ही अन्दर खून बहता (रक्त स्त्राव) रहता है एवं व्यक्ति पीला व कमजोर पड़कर मर जाता है। यह विष यदि शरीर में चला जाये तो तुरन्त डाक्टर को सूचित करना चाहिये। ऐसी अवस्था में पीड़ित व्यक्ति को विटामिन ‘के’ दिया जाना चाहिये। आवश्यक हो तो खून भी चढाया अथवा बदला जा सकता है।

शुष्क क्षेत्रों में खाद्य प्रस्करण व मूल्य संर्वधन –किसान की आय दुगुनी करने का महत्वपूर्ण स्तंभ

प्रतिभा तिवारी, पूनम कलश, सविता सिघंल

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

परिचय

भारतवर्ष में निरंतर बढ़ते खाद्यान उत्पादन (27.33 करोड़ टन) व उद्यानिकी उत्पादन (29.51 करोड़ टन) ने मूल्य सवंर्धित उत्पाद एंव प्रसंस्करण भंड़ारण के क्षेत्र को एक नई चुनौती दी है। जिस गति से उत्पादन बढ़ रहा है उससे ंदुगुनी गति से प्रस्करण में अनुंसधान कार्यों व प्रंसस्कृत उत्पादों के भंडारण को बढ़ाना आवश्यक है। कृषि उत्पादन के साथ–साथ यदि मूल्य सर्वधित उत्पादों का भी त्वरित निर्माण व विपणन होने लगे तो किसान की आय दुगुनी करने का स्वप्न पूरे देश में जल्द ही साकार होगा।

भारत की आर्थिक उन्नति में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। हमारे देश की लगभग 48 प्रतिशत जनसंख्या कृषि में सलंग्न है जिससे सकल घरेलू उत्पाद की 18 प्रतिशत भागीदारी का श्रेय कृषि को हासिल होता है। भारतीय कृषि को आधुनिक बनाने से गरीबी उन्मूलन की सर्वाधिक संभावनाएं कृषि क्षेत्र में ही बनती है। कृषि में नवाचार, मशीनीकरण, अनुसंधान, प्रसंस्करण आदि को अपनाने से आय उपार्जन अधिक हो सकता है। वर्तमान में युवा वर्ग कृषि कार्यों को करने में हिचकिचाता है क्योंकि इस क्षेत्र में परम्परागत कृषि विधियों को अपनाने के कारण लागत व मेहनत अधिक है एंव आय का समानुपात अस्थिर रहता है। एक राष्ट्रीय अनुमान में बताया है कि परम्परागत कृषि के चलते युवा वर्ग 1.3 प्रतिशत की दर से प्रतिवर्ष कृषि कार्यों को छोड़ रहे हैं व अन्य आय उपार्जन के साधन तलाश रहे हैं। वर्ष 2004–05 में जहां 56.14 प्रतिशत व्यक्ति कृषि में सलंग्न थे वहीं 2011–12 में यह प्रतिशत 47.04 प्रतिशत हो गया। यदि पूरे भारत वर्ष की कृषि पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं, आज का युवा वर्ग कृषि में कुछ नवाचार करना चाह रहा है। वह परम्परागत कृषि को न अपना कर लाभांश आधारित उन्नत कृषि करना चाह रहा है। कृषि क्षेत्र में नवाचार, यांत्रिकीकरण व स्वरोजगार से क्रान्ति सम्भव है। सत्तर के दशक की हरित क्रान्ति, नब्बे के दशक के आर्थिक सुधार व 2015 में किसान की आय दोगुना करने का राष्ट्रीय संकल्प कृषि में रोजगार की विपुल सम्भावनाओं का मार्ग प्रशस्त करता है। कृषक समुदाय में शिक्षा का प्रसार, कम्प्युटर क्रान्ति व कृषि में प्रति वर्ष बढ़ते अनुसंधानों व प्रयोगों के चलते कृषक समुदाय का कृषि के प्रति रूझान बढ़ाना अति आवश्यक है। यह रूझान तभी बढ़ सकता है, जब कृषि भी एक लाभकारी उद्योग की तरह स्थापित होने की ओर कदम बढ़ाए। खुली बाजार अर्थव्यवस्था में अधिक प्रतिस्पर्धा है, अतः कृषि को लाभकारी उद्योग बनाने

हेतु, खाद्य प्रसंस्करण को वृहद् पैमाने में स्थापित करना, समय की आवश्यकता है। यदि हम खाद्य प्रसंस्करण को अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डों के अनुसार वृहद् पैमाने में स्थापित कर लें, तो यह उद्योग रोजगार की असीम सम्भावनाओं को जन्म देने की क्षमता रखता है।

खाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन

खाद्य प्रसंस्करण उन सभी प्रक्रियाओं को समाहित करता है जिसमें खाद्य पदार्थ सीधे खेत से एकत्रित कर विभिन्न प्रोद्यौगिकी प्रक्रियाओं से गुजर कर उपभोक्ता के भोजन थाल में पहुँचता है। सैद्धान्तिक रूप में मूल्य संवर्धन वह प्रक्रिया है जिसमें खेत में उपजे पदार्थो की सफाई, वर्गीकरण एवं खेत की उपज को विभिन्न माध्यमों से उपचारित कर उस स्थिति में ले आना है जहाँ उपभोक्ता इसे सीधे उपयोग में ले सकें। उदारणार्थ सीधे सेवन हेतु विभिन्न भोज्य पदार्थ (Food items), विभिन्न प्रकार के पेय पदार्थ (Ready to drink items),तुरन्त उपयोग के भोज्य पदार्थ (Instant food items), सुगंधित एवं स्वास्थयवर्धक पेय (Flavoured and health drinks), इत्यादि। मूल्य सवंर्धित उत्पादों के वृहद् रूप में उत्पादन एवं विक्रय की प्रक्रिया को खाद्य प्रसंस्करण कहा जाता है। खाद्य प्रसंस्करण कुटीर उद्योग से लेकर वृहद् उद्योग प्रणाली को समावेषित करता है।

एक सुविकसित खाद्य प्रसंस्करण प्रणाली प्रसंस्करण के उच्चतर स्तर सहित अपव्यय घटाने में अति सहायक होती है, उपयोगिता वर्धन में सहयोग करती है, फसल विविधिकरण को बढावा देती है, किसानों को बेहतर प्रतिफल सुनिश्चित करती है, रोजगार को बढावा देती है एवं निर्यात आय में उत्तरोत्तर वृद्धि करती है। खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र खाद्य सुरक्षा,खाद्य स्फीति के संवेदनशील मुद्दों को हल करने तथा लोगों को सम्पूर्ण तथा पोषक आहार उपलब्ध कराने में सक्षम है।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों में मानव संसाधन की आवश्यकता पर एक दृष्टि

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता को तभी कम किया जा सकता है जब हम कृषि कार्यबल को पूर्ण रोजगार, स्वरोजगार या उद्यमिता कौशल प्रदान कर सकें। भारत में उद्यमिता की क्षमता का उचित दोहन नहीं हो सका है। यह कथन इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि देश में अति सूक्ष्म एवं मध्यम दर्जे के उद्योगों का सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में 17 प्रतिशत ही योगदान है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का सन् 2013 में रोजगार आधार 96,80,000 था, एक अनुमान के अनुसार सन् 2022 में इस उद्योग का रोजगार आधार 1,13,80000 का होगा। यदि इस उद्योग को चरण बद्ध तरीके से, पूर्ण गम्भीरता से विकसित किया जाय, तो इसमें इतनी क्षमता है कि सन् 2022 में अनुमानित रोजगार आधार से रोजगार प्रदान करने की संख्या कहीं अधिक हो सकती है। विभिन्न औधोगिक क्षेत्रों में रोजगार की स्थिति व सन् 2022 तक रोजगार के अवसर तालिका 1. से स्पष्ट होते हैं :

तालिका 1. विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में रोजगार की वर्तमान व अनुमानित स्थिति

औधोगिक क्षेत्र	सन् 2013 में रोजगार का आधार (संख्या मिलियन में)	सन् 2022 में अनुमानित रोजगार (संख्या मिलियन में)	रोजगार में वृद्धिशीलता 2013–2022 के मध्य (संख्या मिलियन में)
खाद्य प्रसंस्करण	6.98	11.38	4.40
हथकरघा एवं हैण्डीक्राफ्ट	11.65	17.79	6.14
चमड़ा एवं चमड़े की वस्तु	3.09	6.81	3.72
कपड़ा एवं परिधान	15.23	21.54	6.31
फर्नीचर	4.11	11.29	7.18
कृषि	240.40	215.60	–24.8
अन्य औधोगिक क्षेत्र	179.64	297.48	117.84

सभी औधोगिक क्षेत्रो में सन् 2013 में रोजगार की आधार संख्या 461.1 मिलियन थी जोकि सन् 2022 में 581.98 मिलियन अनुमानित है। कृषि क्षेत्र ही एक अकेला क्षेत्र है जहाँ रोजगार के अवसर ऋणात्मक दिखाए गए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि 1.30 प्रतिशत की दर से कृषि श्रम बल प्रति वर्ष घट रहा है। इसी लिए कृषि एक सीमान्त उद्योग माना जाता है।

खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र एक महत्वपूर्ण उद्योग है। यह राष्ट्र की आर्थिक गति को नए आयाम देने में सक्षम है। सन् 2020 तक द्वितियक व तृतीयक प्रसंस्करण क्षमता को 201 मिलियन टन बढ़ाने का संकल्प है। इसी तरह शीत संग्रहण क्षमता को 150 मिलियन टन, गोदामों की क्षमता 210 मिलियन टन एवं भारत के विश्व खाद्य व्यापार को 1.5 से 3.0 प्रतिशत लाने का संकल्प हैं। इस संकल्प को मूर्त रूप देने हेतु 1.7 मिलियन कुशल उत्पादन प्रबन्धकों एवं 2.7 मिलियन कुशल श्रम बल की आवश्यकता होगी।

भारत एक युवाओं का देश है, जहाँ 62 प्रतिशत जनसंख्या 15 से 59 वर्ष के लोगों की है एवं कुल जनसंख्या का 54 प्रतिशत 25 वर्ष से कम आयु वर्ग है, अतः कार्यबल की आवश्यकताओं की पूर्ति के अलावा भारत विकसित देशों के कार्यबलों में भी अच्छा योगदान देने में सक्षम है। सन् 2020 में भारत की जनसंख्या की औसत आयु वर्ग 29 वर्ष का होगा, जब की उस समय संयुक्त राज्य अमेरिका में औसत आयु वर्ग 40 वर्ष, युरोप में 46 वर्ष एवं जापान में 47 वर्ष होगा। एक अन्य अनुमान के अनुसार श्रम कार्य बल विश्व में 4 प्रतिशत की दर से घटेगा, जबकि भारत में यही 32 प्रतिशत की दर से बढ़ेगा। लेकिन यह एक खेद का विषय है कि कृषि व सम्बन्धित क्षेत्रों में श्रम कार्य बल की संख्या में हमारे देश में वर्ष दर वर्ष ह्रास हो रहा

है। एक अनुमान के अनुसार 2004–05 में कृषि श्रम कार्य बल की भाग लेने का औसत 56.14 प्रतिशत था, जो 2009–10 में घट कर 51.60 प्रतिशत रह गया। सन् 2011–12 में भाग लेने वाले कृषि कार्य बल का औसत घट कर 47.04 प्रतिशत रह गया। सन् 2016 में भाग लेने वाले कृषि कार्य बल का औसत एक अनुमान के अनुसार 41 प्रतिशत ही रह गया है। कृषि को अब एक सीमांत रोजगार के माध्यम की तरह देखा जा रहा है। भारत को अपने कृषि कार्य बल को रोजगार उन्मुख कौशल एवं ज्ञान से समृद्ध करने की महति आवश्यकता है, ताकि यह कार्य बल देश के सतत् आर्थिक विकास में अपना योगदान दे सके।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग हेतु कच्ची सामग्री आधार

आज भारत में खाद्य प्रसंस्करण हेतु प्रचुर कच्ची सामग्री उपलब्ध है, अनाज उत्पादन में लगभग 2.7 प्रतिशत की तुलना में बागवानी क्षेत्र में लगभग 5.6 प्रतिशत की औसत विकास दर दिखाई दी है, निम्नलिखित तालिका में कुछ प्रमुख कृषि और सम्बन्धित वस्तुओं का विश्व उत्पादन में भारत का शेयर (प्रतिभाग) दिखाया गया है (तालिका 2.)

तालिका 2. भारत कें प्रमुख कृषि उत्पादों की मात्रा तथा विश्व में प्रतिशत भागीदारी

मद का नाम	विश्व में श्रेणी	उत्पादन (टनों में)	विश्व में प्रतिशत शेयर
मोटी सोफ, सोफ, धनिया	1	5,46,173	58.1
सुपारी	1	6,09,000	48.7
केले	1	27,57,5000	25.8
अरण्डी बीज	1	16,4,4000	88.1
चना	1	88,32,500	67.3
मिर्च व सुखी काली मिर्च	1	1,37,6000	39.8
अदरक	1	6,83,000	31.9
नींबू व नीबू वर्ग के फल	1	25,23,500	16.8
आम व अमरूद	1	1,90,10,000	41.6
बाजरा	1	1,09,10,000	36.5
ओकरा	1	6,35,0000	73.1
पपीता	1	5,54,4000	44.6
पिजन पी	1	30,22,700	64.6
माँस भैंस	1	16,10,000	43.2

ताजा दूध–भैंस	1	7,00,00,000	66.6
ताजा दूध– बकरी	1	50,00,000	27.8
घी, गाय के दूध का मक्खन	1	1,37,550	60.6
घी, भैंस के दूध का	1	28,63,000	97.0
सूखी पत्तेदार सब्जियां	2	36,30,000	15.9
गोभी विभिन्न प्रकार की	2	85,34,000	11.9
बैंगन	2	1,34,44,000	27.2
लहसुन	2	12,59,000	5.2
मूंगफली छिलकों सहित	2	94,72,000	20.7
दालें	2	11,34,000	22.8
प्याज सुखी	2	1,92,99,000	22.5
मटर हरी	2	40,06,200	23.0
आलू	2	4,5343,600	12.0
कद्दू, लौकी आदि	2	49,00,000	19.9
गन्ना	2	34,12,00,000	17.9
चाय	2	12,08,780	22.6
टमाटर	2	1,82,27,000	11.1
काजू छिलको सहित	2	7,53,000	17.0
नारियल	3	1,19,30,000	19.1
सलाद व कासनी	3	7,53,000	17.0
जायफल व इलायची	3	16,595	17.8
संतरे	4	64,26,200	10.8

इसके अतिरिक्त भारत में गेहूँ, चावल, जौ व अन्य अनाज भी प्रचुर मात्रा में उत्पादित हो रहा है। इसी प्रकार कई अत्याधिक मूल्यवान फल जैसे अंगूर, लीची, स्ट्राबेरी, चेरी इत्यादि के उत्पादन में भी भारत का अग्रणी स्थान है। सेब, नाशपाती, खुबानी, आडू, अनार इत्यादि भी बहुतायात में उत्पादित हो रहे है। सारांश में यह निर्विवाद सत्य है कि हमारे देश में प्रसंस्करण हेतु खाद्य सामग्री का बहुत ही सुदृढ आधार उपलब्ध है।

राजस्थान में खाद्य प्रसंस्करण रोजगार

राजस्थान का एक बड़ा भू–भाग शुष्क एवं अर्ध–शुष्क जलवायु के अन्तर्गत आता है। शुष्क और अर्ध–शुष्क जलवायु की अपनी अलग समस्याऐं होती है। यहाँ का प्रतिकूल मौसम, कम वर्षा, दो–तीन वर्षो के अन्तराल में सूखा पड़ जाना, फसलों का सम्पूर्ण खराबा (Failure) आदि निम्न आय के मुख्य कारक हैं। यहाँ तक कि उक्त प्रतिकूल कारकों से कभी–कभी लोगों के भूखा रहने की स्थिति भी आ जाती है। शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों का अल्प नैसर्गिक स्त्रोत आधार, सम्पूर्ण रूप से यहाँ की आबादी की खाद्य, पशु चारा व जलाउ लकड़ी की माँग पूरा करने में सक्षम नहीं है, साथ–साथ सामाजिक जटिलताओं जैसे अशिक्षा, बेरोजगारी एवं कई सामाजिक–सांस्कृतिक प्रतिबन्ध गरीब जनता के जीवन यापन को और मुश्किल में डाल देते है। इन सब स्थितियों में इस क्षेत्र की कृषि को सत्त आजीविका प्रदान करना एक बहुत बड़ी चुनौती है।

महिलाओं को आवश्यक कौशल उपलब्ध कर फसल कटाई के बाद प्रसंस्करण से बेहतर आजीविका के संसाधन उपलब्ध कराए जा सकते हैं क्योंकि महिलाऐं ही आदिकाल से खेत और घर में प्राथमिक प्रसंस्करण कर्ता रही हैं और रहेंगी। राजस्थान में लगभग 716.80 हजार टन का फलोत्पादन होता है, जिसमें नींबू व नींबू वर्ग के 455.59 हजार टन, अमरूद 74.80 हजार टन, आम 70.17 हजार टन, पपीता 16. 01 हजार टन,अनार 5.50 हजार टन और अन्य फल 94.75 हजार टन उत्पादित होते है। यदि सभी फलों, सब्जियों, मसालों (Grain spices), पुष्प एवं सुगन्धित औषधीय पौधों के उत्पादन को मिला दिया जाय तो सन् 2012–13 के आँकड़ों के अनुसार कुल उत्पादन 2716 हजार टन था। राजस्थान में प्रतिवर्ष लगभग 20 हजार टन फल और 27 हजार टन सब्जियाँ खराब हो जाती है। यदि फल और सब्जियों का सीधा उपयोग एवं निर्यात स्थिर भी रख लिया जाय, तब भी 18 हजार टन फल और 22 हजार टन सब्जियाँ प्रसंस्करण के लिए उपलब्ध होती हैं। यदि फसल कटाई के बाद होने वाली हानि को उचित ढंग से नियंत्रित कर लिया जाय, तो खाद्य प्रसंस्करण गतिविधियों से किसानों की सतत् आजीविका एवं आय में वृद्धि को एक वृहद् आधार मिल सकता है और प्रधानमंत्री के 2022 तक किसानों की आय को दुगना करने के संकल्प को राजस्थान में भी प्रभावी ढंग से संकल्प प्राप्ति हेतु तेजी से कदम बढ़ाए जा सकते हैं। यह एक प्रसन्नता का विषय है कि फसल कटाई के बाद होने वाली हानि 2004 के सापेक्ष 2015 में कम हुई है। ऐसा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के एक अध्ययन से सामने आया है।

शुष्क क्षेत्र के कुछ फलों की प्रसंस्करण तकनीक

1. आँवला :

- आँवला (*Emblica officinalis*) एक औषधीय फल है, इसमें प्रचुर मात्रा में विटामिन C 600 mg , पोटेशियम 225 mg, कैरोटिन 270 ug, कोलीन 256 mg, सोडियम 5 mg, प्रति 100gm पाये जाते है। आँवले के नियमित सेवन से रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है व आंखे स्वस्थ्य रहती हैं। हड्डियों के निर्माण में सहायक विटामिन इस फल में मिलते है। इसके सेवन से स्नायविक तंत्रिकाए व नाड़ी तंत्र सामान्य बने रहते है।
- परिरक्षण के अनुभव के आधार पर आँवले की देशी किस्म आचार बनाने के लिए व उन्नत किस्में मुरब्बा, जैम, कैन्डी, चूर्ण आदि बनाने के लिए उपयुक्त पाई गई है। आँवला परिरक्षण की घरेलू ईकाई स्थापित करने के लिए आधारभूत पूंजी 10–12 हजार व पानी, हवा, बिजलीयुक्त भवन की आवश्यकता होती है। औषधीय गुणों के कारण आँवला परिरक्षण का व्यवसाय हमेशा लाभ में चलता है। काजरी द्वारा समय–समय पर परिरक्षण के प्रशिक्षण कार्यक्रम निःशुल्क चलाए जाते है। इसका लाभ सभी किसान भाई–बहन उठा सकते हैं।

आँवला कैंडी प्रसंस्करण तकनीक

- पश्चिमी राजस्थान की जलवायु आँवला उत्पादन के लिए उपयोगी पाई गयी है। आँवले की प्रचलित किस्में चकैया, बनारसी व कंचन है। आँवले की उन्नत खेती करने के लिए उचित किस्म के पौधे को 4.5 X 4.5 मीटर की दूरी पर गहराई से खोदे गड्ढे में बरसात के मौसम में लगाना चाहिये। लाईन से लाईन की दूरी 8 X 8 मीटर रखनी चाहिये। खाद की मात्रा प्रत्येक गड्ढे में 15 किलो गोबर की कम्पोस्ट व 500 ग्राम फॉस्फोरस बुवाई से पहले डालनी चाहियें। भारत वर्ष में आँवले की खेती 110 हजार है. में की जाती है जिससे लगभग 1265 हजार MT उत्पादन होता हैं। सतत्

देखभाल, कीट नियंत्रण, सामयिक शस्य क्रियाएं करने से दस वर्ष का एक वृक्ष लगभग 50—70 किलो फल प्रति वर्ष देता है।

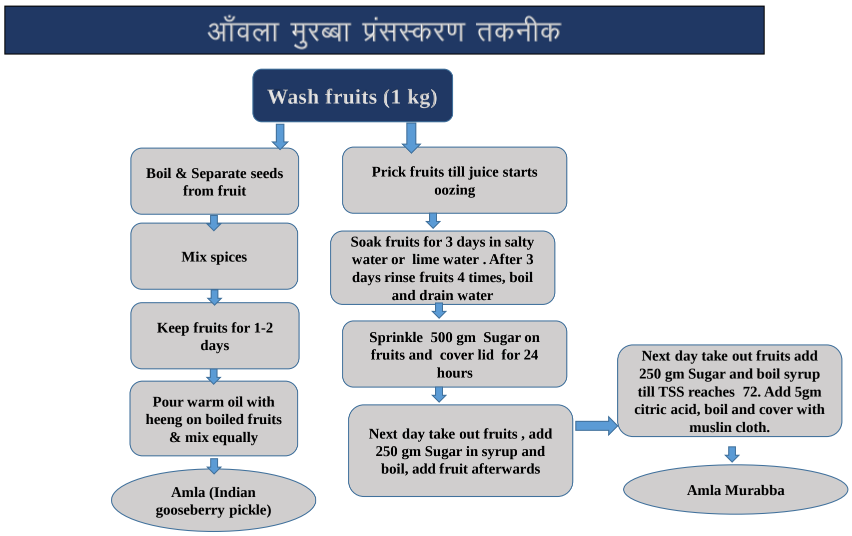

2. बेल :

- बेल *(Aegle marmelos)*शुष्क जलवायु में उगने वाला औषधीय फल है। उतरी भारत के कुछ स्थानों पर इसे विल्व, बील, बेलपत्र आदि नाम से जाना जाता है।

बेल में कैलशियम 85 mg, फॉस्फोरस 50 mg, रेशे 2.9 gm, कैरोटीन 55 ug, विटामिन C,8 mg, पोटेशियम 600 mg प्रति 100 gm फल में पाया जाता हैं। ग्रीष्म ऋतु में इस फल के सेवन से लू व तापघात से बचा जा सकता है। इसके वृक्ष में वातावरण में फैली जहरीली गैस को अवशोषित करने की शक्ति होती है, व पत्तों को हिन्दू वैदिक अनुष्ठान में काम में लिया जाता है। इसके सेवन से कब्ज, मधुमेह आदि रोगो में राहत मिलती है।

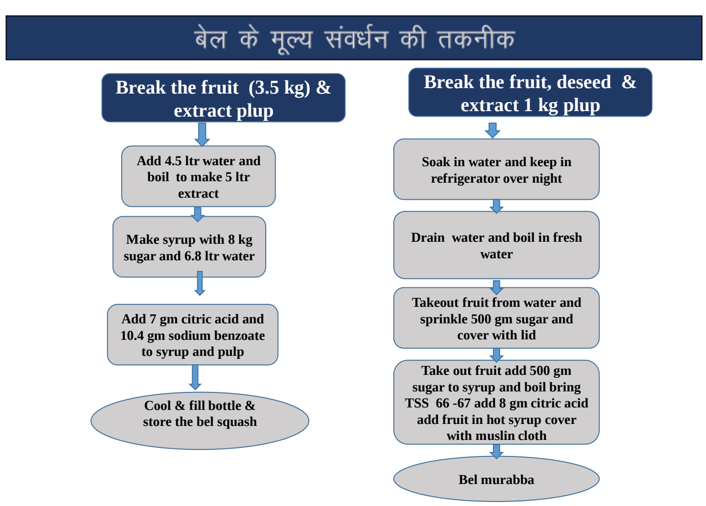

- बेल की प्रचलित किस्में नरेन्द्र बेल 5 एवं नरेन्द्र बेल 9 हैं। इन प्रजाति के पौधो की ऊँचाई मध्यम होती है एवं फलन 4–5 वर्ष बाद प्रारम्भ हो जाता है। फलों का आकार गोल या लम्बोतरा गोल होता हैं। वृक्षारोपण वर्षा के प्रारम्भिक महिनों में करना लाभकारी होता है। बेल के परिरक्षण में देशी व उन्नत दोनों ही प्रकार के फलों का प्रयोग किया जाता है। देशी किस्म के फलों की खुशबू व रंग, शर्बत व जैम में अधिक अच्छे लगते है। बेल का शर्बत बनाने के लिए पाल में पके फलों को तोड़कर बीज रहित करके गूदे को शक्कर के 45^0 ब्रिक्स घोल में मिला कर द्वितीय श्रेणी के रासायनिक लवण मिलाकर परिरक्षण करते हैं। बेल के परिरक्षण की घरेलू ईकाई स्थापित करने के लिए आधारभूत पूंजी 10–12 हजार, पानी व हवादार भवन व पारिवारिक सदस्यों की आवश्यकता होती है। बेल के औषधीय गुणों के कारण परिरक्षण ईकाई में स्वच्छता से तैयार किये उत्पाद का व्यवसाय हमेशा लाभ में चलता है।

3. अनार :

अनार एक औषधीय फल है। इसका मूल उत्पादन ईरान व इसके आस–पास के देशों में होता था। आजकल यह पूरे भारतवर्ष में उगाया जाता हैं। अनार में 5.1 ग्राम रेशा, 16 मि.ग्रा. विटामिन ब, 44 मि.ग्रा. मैग्नीशियम, 133 मि.ग्रा. पोटेशियम प्रति 100 ग्राम फल पाया जाता है। यह फल ह्रदय, किडनी, कैंसर रोगियों के लिए औषधीय हैं। अनार का उत्पादन महाराष्ट्र में 78000 है., कर्नाटक 15000 है., गजरात 7400 है. आन्ध्रप्रदेश 6200 है. व राजस्थान में 11000 है. में होता हैं। विगत कुछ वर्षो में राजस्थान में अनार का क्षेत्रफल बढ़ा हैं अनार की प्रचलित किस्में गणेश, भगवा, मृदुला, जालोर–बेदाना आदि हैं। राजस्थान में अनार जयपुर, अजमेर, जोधपुर, पाली, जालौर, झुंझनु, सिरोही, भीलवाडा, चितौड़गढ़ में उगाया जाता है। अनार की सबसे बडी मण्डी आजादपुर दिल्ली में हैं। महाराष्ट्र व तमिलनाडु में अनार वर्षभर आता है। अनार का क्षेत्रफल महाराष्ट्र में सर्वाधिक है परन्तु उत्पादकता के आधार पर तमिलनाडु देश में प्रथम है। अनार के निर्यात के मानक महाराष्ट्र प्रदेश के निर्धारित हो गये हैं।

अनार के परिरक्षण की विपुल सम्भवानाएं हैं। इसका जूस, शर्बत, अनार दाना आदि घरेलू व व्यावसायिक स्तर पर बनाए जा सकते है। अनार के छिलके का भी औषधीय उपयोग होता है। इसलिए अनार की व्यावसायिक परिरक्षण ईकाई में मुनाफे की गुंजाईश हमेशा ही रहती है।

उपसंहार : खाद्य प्रसंस्करण एक लाभदायक व्यवसाय है। कृषि की बढ़ती पैदावार के साथ ही प्रसस्करण में यदि अधिक मानव श्रम की खपत की जाए तो, युवा वर्ग में बढ़ती बेरोजगारी को काफी बड़े पैमाने पर कम किया जा सकता है। प्रसंस्कृत भोज्य पदार्थो की मांग प्रतिदिन बढ़ रही है। इसलिए खाद्य प्रसंस्करण को कृषि में उगते सूरज की संज्ञा भी दी जाती है।

उगते सूरज को नमस्कार ।खाद्य प्रसंस्करण से स्वरोजगार ।।

कृषि फसलों में तुड़ाई उपरांत प्रबंधन एवं मूल्य संवर्धित उत्पाद विकास

सोमा श्रीवास्तव

भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

यदि हम राजस्थान की बात करें तो यहाँ पानी की कमी के कारण व अन्य वातावरणीय परिस्थितियों की वजह से फल व सब्जियों का उत्पादन कम ही हो पाता हैं। यदि इन्हें समय पर परिरक्षित कर लिया जाये तो इनका न केवल घरेलू स्तर पर उपयोग कर सकते हैं, बल्कि इनका विपणन कर अधिक आय भी प्राप्त कर सकते है। फल व सब्जियों के मूल्य संवर्धित उत्पाद भी आय प्राप्त करने का अच्छा साधन है। मूल्य संवर्धन उद्यमों को अपनाकर एक सफल लघु–उद्योग इकाई की स्थापना की जा सकती है तथा इसके लिये सरकार द्वारा विभिन्न संस्थानों में प्रशिक्षण कार्यक्रम व बैंको द्वारा लघु ऋण की भी व्यवस्था की जाती है।

फलों व सब्जियों की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए तोड़ाई भंडारण व परिरक्षण यानी प्रिजर्व करने की तकनीक का इस्तेमाल करना चाहिए क्योंकि फलों व सब्जियों में पानी की अधिक मात्रा होने के कारण वे तोड़ाई के बाद शीघ्र खराब हो जाते हैं. इस प्रकार कुल फलों व सब्जियों का 30 से 35 फीसदी भाग खराब हो जाता है। ज्यादातर फलों व सब्जियों की तोड़ाई हरी अवस्था में की जाती है जिससे उन की गुणवत्ता पर उलटा असर पड़ता है।

तुड़ाई

फलों की तुड़ाई फलों के पकने के आधार पर की जाती है। तरबूज, खरबूजा, बेर, जामुन, अमरूद व नीबू वर्गीय फलों को पेड़ों पर पकाते हैं और बाद में तोड़ते हैं लेकिन आम, केला, पपीता व चीकू वगैरह फलों को पकने से पहले तुड़ाई कर कमरों में पकाते हैं। सब्जियों की तुड़ाई तब की जाती है, जब वे मुलायम व रेशा रहित होती हैं। लिहाजा सब्जियों की हरी अवस्था तुड़ाई के लिए सब से अच्छी होती है. फलों व सब्जियों की तुड़ाई में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिएः

- यदि फलों व सब्जियों पर कीटनाशी या फफूंदनाशी या जहरीले रसायनों का इस्तेमाल किया गया हो तो कम से कम उन्हें 1 हफ्ते बाद ही तोड़ा जाना चाहिए।
- तरबूज, खरबूजा, कद्दू व टमाटर के फलों को पकी हालात में तोड़ा जाना चाहिए।
- बीन, लोबिया, खीरा, बैगन, भिंडी, लौकी, तुरई व पत्तेदार सब्जियों को मुलायम व हरी अवस्था में तोड़ा जाना चाहिए।
- गोभी वर्गीय सब्जियों को तैयार होने पर काटें।

- प्याज, लहसुन व आलू पूरी तरह पकने पर ही खोदें।
- केला, पपीता, चीकू, आम, कटहल, शरीफा व बेल वगैरह फलों को पेड़ से पकने की हालत में तोड़ कर कमरे में पकाना चाहिए।
- अंगूर, अमरूद, जामुन, बेर, फालसा व नीबू वर्गीय फलों को पेड़ पर पकने के बाद तोड़ना चाहिए।

भंडारण

जब खेत के ज्यादा फल पकने की हालात में आ जाते हैं, तो उन्हें एकसाथ तोड़ना जरूरी हो जाता है। ऐसे में यह जरूरी है कि सही ढंग से तुड़ाई करके उनका अच्छी तरह भंडारण किया जाए। अगर सब्जियों व फलों को साधारण कमरे के तापमान पर खुले हवादार स्थान पर जूट की बोरी पर रख कर पानी छिड़कते रहें तो वे 2–3 दिनों तक बहुत आसानी से रखे जा सकते हैं। निम्न बातों का ध्यान रख कर तोड़ाई के बाद सब्जियों व फलों का जीवनकाल बढ़ाया जा सकता है।

उन्हीं फलों व सब्जियों का चुनाव करना चाहिए जिन पर कीट, बीमारी, चोट व खरोंच न लगी हो।

- पत्तीदार सब्जियों को काटने के बाद भीगे कपड़े में लपेट कर रखें और समय–समय पर उन में पानी छिड़कते रहें।
- तोड़ाई के बाद खेत की गरमी को खत्म करने के लिए फलों व सब्जियों को हवादार कमरे या किसी छायादार स्थान पर रख कर गरमी खत्म होने के बाद भंडारण करना चाहिए।
- कार्बन डाई आक्साइड का 5–10 फीसदी उपचार गाजर, खरबूजा व आलू वगैरह में बेहतर रहता है, जिस से भंडारण कूवत बढ़ जाती है।

सब्जी एवं फल परिरक्षण

परिरक्षण द्वारा यानी प्रिजर्व कर के हम बिना मौसम के तमाम सब्जियों व फलों का प्रयोग कर के लाभ उठा सकते हैं व उन की उपयोगिता बढ़ा सकते हैं. तमाम फलों व सब्जियों को हम विभिन्न कामों में इस्तेमाल कर सकते हैं।

फल एवं सब्जियों में मूल्य संवर्धन/परिरक्षण का महत्व

- मौसमी उत्पादन का संरक्षण एवं नुकसान से बचाव

- विभिन्न उत्पादों का निर्माण तथा एक स्थान से दूसरे स्थान तक उत्पाद के प्रयोग को संभव बनाना
- आय उपार्जन के साधन बढाना
- कच्चे उत्पाद से संवर्धन के द्वारा
- उसके गुणवत्ता, महत्त्व एवं मूल्य का बढना
- खाद्य सुरक्षा को बढावा देना

मूल्य संवर्धन करने के लिये मूलभूत आवश्यकतायें क्या हैं?

- उत्पाद के उपलब्धता का ज्ञान
- उत्पाद के तैयार होने के समय का ज्ञान
- उपभोक्ता की आवश्यकताओं की समझ
- मूल्य संवर्धन की विभिन्न तकनीकियों की जानकारी
- उपयुक्त तकनीकी में दक्षता प्राप्त करना
- संसाधनों का ज्ञान
- आर्थिक मदद व संभावित बाजार का अनुमान
- आत्मविश्वास, कल्पनाशीलता,

मूल्य संवर्धन के लिए उपयुक्त शुष्क क्षेत्र की फल व सब्जियाँ

केर

केर झाड़ी या अनेक शाखाओं युक्त छोटे वृक्ष के रूप में शुष्क क्षेत्र में बहुतायत से पाया जाता है। केर में मार्च अप्रैल के महीने में फूल आते हैं। केर के फल छोटे छोटे, 1–3, 1–8 से.मी. व्यास के हरे रंग के, गोल, गूदेदार व बीजयुक्त होते हैं जोकि पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं मई दृजून के महीने में केर के फल बहुतायत से मिलते हैं। केर के फलों को सुखकर संरक्षित किया जाता है जिनका वर्ष भर उपयोग किया जा सकता है। बाजार में सूखे हुए फलो का बहुत अच्छा मूल्य मिल जाता है। बच्चे एवं महिलाएं इनके फलो को तोड़कर एकत्र करते हैं। केर के वृक्ष में छोटे–छोटे कांटे होने के कारण इनको तोड़ते समय विशेष ध्यान रखना चाहिए अन्यथा हाथों को अत्यधिक नुकसान पहुँच सकता है। केर का प्रयोग अचार बनाने के लिए भी होता है। केर के फलों में प्रोटीन व खनिज लवण जैसे आइरन, कैल्सियम, ज़िंक, विटामिन–सी तथा बेटा–केरोटीन काफी अच्छी मात्रा में पाये जाते हैं।

सांगरी

शुष्क क्षेत्र में खेजड़ी के वृक्ष बहुतायत से मिलते हैं जिन्हें सामाजिक आर्थिक रूप से काफी महत्वपूर्ण माना जाता है। इन्हें शुष्क क्षेत्र की जीवनरेखा की संज्ञा भी दी गयी है। खेजड़ी के वृक्ष में दिसंबर से अप्रैल के मध्य फूल आते हैं व मार्च से जून माह के मध्य इसमें 10–20 सेंटीमीटर लंबी फलियाँ लगती हैं। इन्हें मारवाड़ में सांगरी के नाम से जाना जाता है। कच्ची व छोटी फलियाँ हरे रंग की मुलायम व रेशेदार होती हैं जोकि सूखने पर भूरे रंग की हो जाती हैं।सांगरी अत्यधिक पौष्टिक व खाने में स्वादिष्ट होती है। इसमे 9–15% प्रोटीन विटामिन–सी, कैल्सियम, फास्फोरस अच्छी मात्र में पाया जाता है। सांगरी को सुखाकर साल भर प्रयोग में लिया जाता है। सुखे हुए केर व सांगरी का प्रयोग पंचकुटा बनाने में किया जाता है जोकि मारवाड़ में अत्यधिक प्रचलित है।

लसोड़ा/गूँदा

गूँदा या लसोड़ा का वृक्ष माध्यम ऊँचाई वाला व बड़े–बड़े पत्तों से युक्त होता है जिसे खेतों में व्यवस्थित रूप से या फिर मेड़ पर लगाते हैं। वृक्षारोपड़ के लगभग 4–5 वर्षों के बाद गूँदे के वृक्ष में फल आने लगते हैं। ज़्यादातर अप्रैल–मई के मध्य लसोड़े के फल आते हैं जोकि हरे रंग के, गूदेदार, चिपचिपे गूदे वाले व फीके होते हैं। कच्चे फलों का प्रयोग सब्जी या अचार बनाने में में किया जाता है। पके हुए फलों को भी खाने में काम में लेते हैं। गूँदे के प्रत्येक वृक्ष से लगभग 30–45 किलो फल प्राप्त किए जा सकते हैं। सरकार द्वारा भी गूँदे की बागवानी को काफी प्रोत्साहित किया जा रहा है।

बेर

बेर का वृक्ष झाड़ीनुमा, शाखायुक्त व सदाबहार होता है। शुष्क क्षेत्र में बेर की व्यावसायिक बागवानी भी होती है। शुष्क क्षेत्र का मौसम बेर के इतना अनुकूल है की बेर के वृक्ष बिना किसी विशेष प्रयास के स्वतः ही शुष्क क्षेत्र में उग जाते हैं। इसकी अच्छी पैदावार के लिए शुष्क व गरम मौसम काफी अच्छा होता है। इसकी विभिन्न उन्नत प्रजातियों की पैदावार व फलों की गुणवत्ता भिन्न दृभिन्न होती है। इसकी मुख्य प्रजातियाँ सेब, गोला, मुंडिया, इलायची वगैरह हैं। बेर में सितंबर से मार्च के मध्य फूल व फल आते है। बेर की उपज 1–2 क्विंटल प्रति वृक्ष प्राप्त की जा सकती है। बेर के फल हरे–पीले रंग के गूदेदार, गुठली युक्त होते हैं। इसके फल पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं। बेर में प्रोटीन फास्फोरस, कैल्सियम, आइरन, विटामिन–सी, व बीटा–केरोटीन पाया जाता है। बेर के फल अत्यधिक मीठे व स्वादिष्ट होते हैं जिनहे सीधे ही खाया जा सकता है। बेर को प्रसंस्कृत करके विभिन्न उत्पाद जैसे चटनी, जूस, कैंडी, जेली, मुरब्बा, स्कवैश, आदि बनाया जाता है। बेर को सुखकर इसका पाउडर भी बनाया जाता है जो कि विभिन्न प्रयोगों में लिया जाता है।

बेर के फल को सुखाना

परंपरागत रूप से, फलों को सौर ऊर्जा के द्वारा सुखाया जाता है। इस विधि द्वारा फल सूखने के बाद बहुत कठोर हो जाते हैं और इस प्रक्रिया में फलों पर धूल के कण भी जमा हो जाते हैं। यह विधि सभी फलों को सुखाने के लिए उपयुक्त नहीं हैं। काठा या उमरान, छुहारा, बगवाड़ी, मेहरान, सनौर–2 और सनौर–3 किस्म के फल अच्छे निर्जलीकृत उत्पाद देने के लिए उपयुक्त हैं। सुनहरे पीले से लाल भूरे रंग के फल निर्जलित उत्पादों की सर्वोत्तम गुणवत्ता देते हैं। निर्जलीकरण से पहले ब्लांचिंग (2–6 मिनट के लिए उबलते पानी में फलों को डुबोना) और सल्फरिंग (3.5–10 ग्राम सल्फर पाउडर प्रति किग्रा फल जलाकर 3 घंटे के लिए सल्फर डाई ऑक्साइड के धुएं में फलों को रखना) करने से उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार होता है। खुले आसमान में सूर्य की उपस्थिति में बेर के फलों को सुखाने के लिए 7–10 दिन लगते हैं, जबकि सौर शुष्कक द्वारा फलों को 4–5 दिनों में एवं कृत्रिम शुष्कक द्वारा 20–35 घंटों में ही सुखाया जा सकता है।

फलों के गूदे से बने उत्पाद का विकास

पेय पदार्थ तैयार करने के लिए, बेर फल के रसदार किस्मों का उपयोग किया जाता है। फलों को पहले छीलकर गूदे को बीज से अलग किया जाता है और उसके बाद पानी में मिलाकर कुछ मिनटों के लिए गर्म किया जाता है। इस लसदार मिश्रण को मलमल के कपड़े में बांधकर रस को अलग कर दिया जाता है। रस को लम्बे समय तक भण्डारण के लिए रासायनिक परिरक्षकों को मिलाकर पाश्चुरीकृत किया जाता है। रस का उपयोग स्क्वैश, जैम और शरबत तैयार करने के लिए किया जाता है। बेर के रस में रंग और स्वाद की कमी होती है, इसलिए इसे समान मात्रा में अनार और करौंदा के रस के साथ स्वादानुसार मिश्रित करके बेहतर–गुणवत्ता वाले स्क्वैश तैयार किये जा सकते हैं।

मतीरा

मतीरा तरबूज के सम्मान दिखने वाला शुष्क क्षेत्र का फल है जो कि खेतों में बेलों के रूप में फ़ेल जाता है। इसकी व्यावसायिक खेती भी की जाती है। इसकी कई प्रककर की प्रजातियाँ भी विकसित की गयी हैं जिनके फलों की गुणवत्ता भिन्न भिन्न होती है। इसकी कुछ प्रजातियों में बीज की मात्रा अत्यधिक होती है व कुछ में कम बीज पाये जाते हैं। इसका गूदा सफ़ेद–पीले रंग का व रसदार होता है तथा ऊपरी सतह (खोल) काफी मोटा होता होता है जिस पर हरे रंग की धारियाँ होती हैं। यह ज़्यादातर अगस्त से दिसंबर के मध्य पैदा होता है। मतीरा में (टी एस एस) 5–15% के बीच पाया जाता है। कुछ प्रजातियों के फल कम मीठे व कुछ के अधिक मीठे होते हैं। जो कि उसमे उपस्थित ग्लूकोस, फ्रक्टोस व सुकरोस शर्करा की मात्र पर निर्भर करता है जोकि फल के पकने के साथ साथ बढ़ती जाती हैं। मतीरा के छोटे व कच्चे फल जो कि लगभग 100 ग्राम वजन के होते हैं सब्जी बनाने में प्रयोग किए जाते हैं। मतीरा के बीज बहुत

उपयोगी होते हैं व इनका प्रयोग मिठाई, लड्डू, आइसक्रीम, बिस्किट, नाश्ते के पकवानों में व शरबत आदि में बहुतायत से होता है। मतीरा के बीजों को स्थानीय भाषा में (मगज) कहा जाता है। मतीरा के बीज अत्यधिक पौष्टिक होते हैं व इनमें 25–32% प्रोटीन व 30–40% तेल पाया जाता है। मतीरा की कुछ उन्नत किस्में विकसित की गयी हैं जिनमें बीज की मात्र देसी क़िस्मों से काफी अधिक होती है।

काचरी

काचरी शुष्क क्षेत्र में वर्षा ऋतु में प्राकृतिक रूप से पायी जाती है। यह अगस्त से नवंबर के मध्य बहुतायत से मिलती है। इसके फल छोटे, बेलनकार व हरे दृपीले रंग के होते हैं जो कि पकने पर पीले रंग के चित्तीदार हो जाते हैं। इसके फल अनेक बीजयुक्त, खट्टे व रसदार होते हैं। काचरी में 88% जल, 7–5% कार्बोहाइड्रेट, कैल्सियम, आइरन, जिंक, विटामिन–सी व बीटा केरोटीन पाया जाता है। काचरी के फल सब्जी के रूप में खाये जाते हैं तथा इन्हें सुखाकर साल भर के लिए संरक्षित किया जा सकता है। इसके पाउडर का प्रयोग अमचूर के विकल्प के रूप में किया जा सकता है। काचरी के फलों को सुखाकर व पीसकर बनाया गया पाउडर खट्टा स्वाद लाने के लिए विभिन्न खाद्य वस्तुओं में किया जाता है जैसे अचार में व चिकन को गलाने में भी इसका प्रयोग किया जाता है। काचरी का उपयोग परंपरागत राजस्थानी सब्जी पंचकुटा में भी किया जाता है। काचरी में अनेक औषधीय गुण पाये जाते हैं अतः इसका प्रयोग औषधि निर्माण के लिए भी होता है जो कि मुख्यतया कब्ज, पेट से संबन्धित रोगों आदि के लिए किया जाता है।

आँवला

आंवले की अच्छी उपज के लिए शुष्क क्षेत्र का मौसम अनुकूल होता है व इसकी उन्नत प्रजातियों की खेती करने पर यहाँ बहुत अच्छी पैदावार मिलती है। आंवले के उन्नत किस्में क्रमशः बनारसी, चकाइया, कंचन, फ्रांसिस, कृष्णा आदि हैं। इसके व्यावसायिक खेती के लिए सरकार द्वारा काफी प्रोत्साहन दिया गया हैं आंवले का उपयोग विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पाद जैसे, जूस, शर्बत, लड्डू, कैंडी, मुखवास, चूरन, मुरब्बा, आचार आदि बनाने के लिए किया जाता है। आंवले के वृक्ष में 4–5 साल में फल आने लगते हैं तथा प्रति वृक्ष 1. 5–2.0 क्विंटल फल प्राप्त किए जा सकते हैं। इसके पुराने वृक्षो की ऊपर से प्रूनिंग कर देने पर पैदावार अच्छी प्राप्त होती है। आंवले का वृक्ष 10 साल से 50 वर्ष तक अच्छी उपज देता है। अच्छी तरह प्रबंधन करने पर आंवले का वृक्ष 70 साल तक फल प्रदान कर सकता है। आंवले में फरवरी के माह में फल आते हैं जोकि कुछ हल्के–पीले से होते हैं। कच्चे फल हरे रंग के होते हैं जो कि पकने पर धीरे धीरे हल्के–पीले हो जाते हैं। इसके फलो का प्रयोग विभिन्न प्रकार की आयुर्वेदिक दवाई व तेल बनाने में भी होता है। इसके

फल 60–70 ग्राम के होते हैं तथा 1 किलो में लगभग 15–20 आ जाते हैं इस प्रकार अच्छा प्रबंधन करने पर उन्नत प्रजातियाँ अत्यधिक उपज देती हैं।

परिरक्षण के लिए सही फल व सब्जियां

- डब्बाबंदी के लिए सही फल व सब्जियां : आम, अमरूद, नाशपाती, लीची, केला, अंजीर, मटर, आलू, टमाटर, करेला, बैगन, अदरक व गाजर।
- चटनी केचप व सौस के लिए फल व सब्जियां : टमाटर, आम, पपीता, सेब, आंवला।
- अचार के लिए फल व सब्जियां : टमाटर मटर, गाजर, अदरक, नीबू।
- जैम के लिए फल : सेब, आम, अनन्नास व पपीता।
- जैली के लिए सही फलः अमरूद व आलूबुखारा।
- मार्मलेड के लिए मुनाबिस फल व सब्जियां : नीबू व संतरा।
- मुरब्बों के लिए सही फल व सब्जियां : आंवला, आम, बेल, गाजर, पपीता, बेर, नाशपाती व केला।
- कैंडी के लिए सही फल व सब्जियां : पेठा, आंवला, पपीता।

शुष्क क्षेत्र के फल सब्जियों में मूल्य संवर्धित उत्पाद विकास

फल	**प्रसंस्कृत उत्पाद**
केर	अचार, चूर्ण
हिंगोटा	चूर्ण, मीठी हिंगोटा, नमकीन, ब्रेड स्प्रेड
बेर	अचार, चूर्ण, ज्यूस, स्कवैश, कैंडी, जैम
सांगरी	अचार, बिस्किट, लडडू, सब्जी
मतीरा	ज्यूस, स्कवैश, कैंडी
काचरी	अचार, चूर्ण, सब्जी
ग्वार	अचार, चूर्ण, सब्जी, आईसक्रीम स्टबिलाइजर, ग्वारगम
फॉग	चूर्ण, रायता
आंवला	ज्यूस, शर्बत, लडडू, कैंडी, मुखवास, चूर्ण, मुरब्बा, अचार, तेल

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग

शेख़ मुख्तार मंसूरी

भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

परिचय

मानव उपभोग के लिए कच्चे संघटकों को खाद्य पदार्थ में बदलने या खाद्य पदार्थों को अन्य रूपों में बदलने के लिए प्रयुक्त विधियों और तकनीकों का समायोजन खाद्य प्रसंस्करण कहलाता है। आम तौर पर खाद्य प्रसंस्करण में खेती से प्राप्त फसल या अन्य पशु उत्पादों को लेकर आकर्षक खाद्य पदार्थों का उत्पादन किया जाता है जो की अधिक समयावधी तक खाने के लिए सुरक्षित रखे जा सकते हैं। अर्थव्यवस्था को संभालने में खाद्य प्रसंकरण उद्योगों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में भी खाद्य उद्योग देश के आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि यह भारतीय अर्थव्यवस्था में दो सबसे महत्वपूर्ण स्तंभों, औद्योगिक और कृषि क्षेत्र के बीच तालमेल रखते हैं। वर्तमान समय में चीन के बाद भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा खाद्य उत्पादक देश है। भारत में मुख्यतः फल और सब्जियां, अनाज, दूध, मसाले, मांस, मछली, अंडे और मदिरा का प्रसंस्करण किया जाता है जिनमें उपभोक्ता के लिए बनाए गए खाद्य उत्पाद जैसे मिष्ठान, चॉकलेट, कोको उत्पाद, सोया आधारित उत्पाद, उच्च प्रोटीन खाद्य इत्यादि शामिल हैं। भारतीय खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मुख्यतः निर्यात उन्मुख है। आने वाले वर्षों में भारतीय खाद्य उद्योगों के उच्च विकास और लाभप्रदता की संभावनाएं हैं।

वर्तमान स्रोत और ऊर्जा की स्थिति

खाद्य उत्पादन एवं प्रसंस्करण बिना ऊर्जा के उपयोग के संभव नहीं है उबालना, पकाना, तलना, सुखाना, ठंडा करना, पिसाई करना– सभी काम करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। वैश्विक ऊर्जा दक्षता की समस्या को हल करने के लिए खाद्य प्रसंस्करण प्रौद्योगिकियों में ऊर्जा दक्षता को संबोधित करना एक महत्वपूर्ण काम है। खाद्य उत्पादन में कई प्रक्रियाएँ एक क्रम में होती हैं, जैसे पिसाई और मिश्रण (जैसे कोको बीन्स, चीनी और दूध पाऊडर का मिश्रण)। इन प्रक्रिया चरणों का एकीकरण न केवल संचालन के समय और ऊर्जा की खपत को कम करेगा बल्कि मशीनों की सफाई की जरूरत को भी कम करेगा। उद्योगों में इन प्रक्रियाओं के लिए मुख्य ऊर्जा स्रोत तेल है, जो न केवल आयात पर निर्भर है बल्कि ग्रीन हाऊस गैस उत्सर्जन भी कर रहा है। भारत में हर साल ईंधन के रूप में तेल की खपत 100 मिलियन टन है जिसका लगभग 40 प्रतिशत औद्योगिक क्षेत्र में खपत होता है। इसके अलावा, इस खपत का 40–50 प्रतिशत (प्रतिवर्ष लगभग 20 मिलियन टन ईंधन तेल) अकेले तापीय ऊर्जा (तापमान 250 डिग्री सेल्सियस से

कम) के रूप में उपयोग होता है। तेल और गैस की कमी, ऊर्जा की बढ़ी हुई कीमत एवं ग्रीन हाउस गैसों के उत्पादन को कम करना, नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उद्योगों में उपयोग को बढ़ावा देता है।

खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) ने 2011 में अपना "एनर्जी–स्मार्ट" फूड फॉर पीपल एंड क्लाइमेट कार्यक्रम शुरू किया, जिसका मुख्य उद्देश्य सदस्य देशों की खाद्य श्रृंखला में ऊर्जा प्रबंधन करना है, इसके कुछ बिन्दु निम्नलिखित हैं:

- निम्न–कार्बन ऊर्जा प्रणालियों पर अधिक भरोसा करना और ऊर्जा का अधिक कुशलता से उपयोग करना।
- खाद्य प्रणालियों के भीतर नवीकरणीय ऊर्जा की भूमिका को मजबूत करना
- विकास के लिए आधुनिक ऊर्जा सेवाओं तक अधिक पहुंच प्रदान करना, और साथ ही राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा और सतत विकास लक्ष्यों की उपलब्धि का समर्थन करना।

यह पहल सदस्य देशों को कृषि–खाद्य उद्योग से संबंधित क्षेत्रों के लिए सार्वजनिक नीतियों को मजबूत करने के लिए बढ़ावा देती है, साथ ही साथ निजी क्षेत्र को एक व्यापक टिकाऊ कृषि–खाद्य श्रृंखला के कार्यान्वयन में तेजी लाने के लिए तैयार करती है। खाद्य प्रसंस्करण में नवीकरणीय ऊर्जा का अनुकूल स्थानों में उपयोग उत्पादन प्रक्रिया को दक्ष बनाता है। यह विभिन्न खाद्य उत्पाद जैसे पनीर निर्माण और पेय पदार्थों जैसे फलों के रस के उत्पादन में उपयोगी ऊर्जा की आवश्यकता को पूरा करता है।

विभिन्न प्रसंस्करण तकनीकी एवं तापमान

उद्योग क्षेत्र	प्रक्रिया	तपमान, डिग्री सेल्सियस
खाद्य और पेय उत्पादन उद्योग	सुखाना ऊष्मा उपचार धोना पकाना पास्तुरीकरण विसंक्रमण	30 – 90 40 – 60 40 – 80 95 – 105 80 – 110 140 – 150
कपड़ा उद्योग	धुलाई सफेद करना रंगना	40 – 80 60 – 100 100 – 160
रसायन उदयोग	वाष्पीकरण आसवन विभिन्न रासायनिक प्रक्रिया	95 – 105 110 – 300 120 – 180
अन्य उद्योद	पानी को गर्म करना कमरे को गर्म करना	30 – 100 30 – 60

खाद्य प्रसंकरण उद्योगों में ताप निम्न ऊर्जा स्रोतों से उत्पन्न किया जा सकता है:

सौर ऊर्जा : सौर ऊर्जा संग्रहन पर आधारित सौर वायु एवं जल तापन प्रणाली (चित्र 1) को विभिन्न खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों में उपयोगी पाया गया है। खाद्य प्रसंस्करण के लिए आम तौर पर कम तापमान (50–100 डिग्री सेल्सियस) पर गर्म हवा व जल की आवश्यकता होती है, जिसका उपयोग विभिन्न खाद्य प्रसंस्करण उद्योग जैसे चाय की पत्ती/कॉफी बीन्स जैसे उत्पादों को सुखाने के लिए और फल, मसाले, अनाज, मशरूम, पापड़, सब्जियां, समुद्री भोजन एवं मछली आदि के प्रसंस्करण के लिए भी किया जा सकता है।

पहले खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों में सौर ऊर्जा का उपयोग मुख्य रूप से सुखाने के कार्यों तक सीमित था। लेकिन कुछ वर्षों में, कई सौर प्रौद्योगिकियों का विकास हुआ है। सौर सांद्रता की मदद से उच्च तापमान प्राप्त किया जा सकता है और यह सांद्रक सौर ऊष्मक यंत्र के साथ प्रभावी ढंग से उद्योगों में उपयोग किया जा सकता है जिससे सौर ऊर्जा का उपयोग खाने को उबालने, पकाने या भूनने में कर सकते हैं। सौर ऊर्जा का उपयोग बिजली उत्पादन के लिए भी किया जा सकता है जो की सीधे ही उद्योगों में बिजली चालित उपकरणों और मशीनों को चलाने के लिए उपयोग हो सकता है।

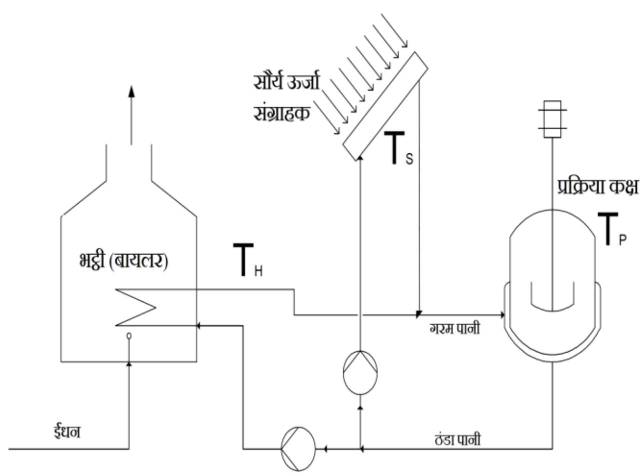

चित्र 1: खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में सौर ऊर्जा का पानी गरम करने में उपयोग

बायोमास : बायोमास एक नवीकरणीय ऊर्जा का स्रोत है जिसकी प्राप्ति वन अवशेष, फसल काटने के बाद बचे हुए चारे और अन्य ठोस अपशिष्ट से की जा सकती है। इसकी अंतर्निहित ऊर्जा सूर्य से आती है एवं यह अपेक्षाकृत कम समय में फिर से प्राप्त हो जाते हैं। पेड़ वातावरण से कार्बन डाइ ऑक्साइड लेते हैं और इसे बायोमास में बदल देते हैं और जब वे जलाए जाते हैं, तो इसे वापस वायुमंडल में छोड़ देते हैं। जब यह बायोमास उपलब्ध होता है, तो इसे जलाकर, या अवायवीय पाचन संयंत्र का उपयोग कर अक्षय गर्मी उत्पन्न की जा सकती है।

कृषि अपशिष्ट को पारंपरिक रूप से ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है, जिसका उपयोग ठोस, तरल या गैसीय उत्पाद के रूप में किया जा सकता है। ठोस रूप में लकड़ी या ईट (या ब्रिकेट) जो की किसी दहनशील बायोमास सामग्री जैसे लकड़ी का चूरा, लकड़ी के चिप्स, घास, या फसलों से प्राप्त कचरे को एक संकुचित ब्लॉक बनाकर जलाने के लिए उपयोग किया जा सकता है। अन्यथा ऐसे कार्बनिक पदार्थों को गैसीय या तरल ईंधन में सूखी और गीली दोनों प्रक्रियाओं द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है। यह प्रक्रियाएं तापीय, रासायनिक और जीवाणुओं द्वारा पाचन विधियों पर आधारित हैं जो कि निम्न प्रकार हैं:

गैसीकरण

पायरोलिसिस

हाइड्रो कार्बोनाइजेशन

बायोगैस : जैवगैस या बायोगैस वह गैस मिश्रण है जो आक्सीजन की अनुपस्थिति में जैविक सामग्री के विघटन से उत्पन्न होती है। यह सौर ऊर्जा और पवन ऊर्जा की तरह ही नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत है। बायोगैस स्थानीय उपलब्ध कच्चे पदार्थों एवं कचरा से पैदा की जा सकती है। बायोगैस प्लांट का निर्माण गैस की जरूरत और व्यर्थ पदार्थ की उपलब्धता एवं साथ ही डाइजेस्टर के बैच फीडिंग या लगातार फीडिंग पर भी निर्भर करता है। बायोगैस प्लांट जमीन की सतह या उसके नीचे बनाया जाता है। इस गैस का उपयोग खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों में ईंधन के रूप में किया जा सकता है।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग

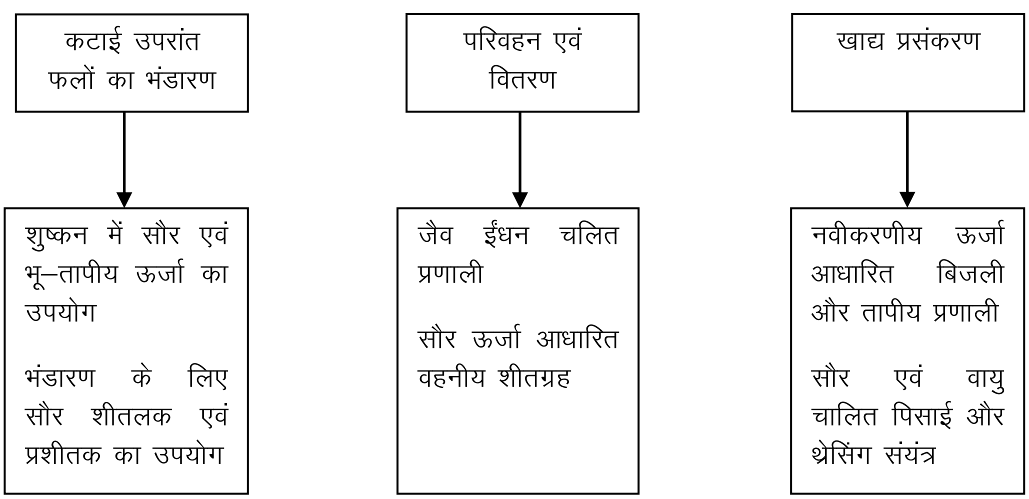

सौर प्रशीतक : सौर प्रशीतन प्रौद्योगिकी में सौर ऊर्जा का दोहन एक शीतलन प्रणाली को चलाने के लिए करते हैं। जिन स्थानों पर सौर विकिरण प्रचुर मात्र में उपलब्ध है और कोई बिजली की आपूर्ति नहीं है या

केवल एक अविश्वसनीय आपूर्ति है सौर ऊर्जा का यह उपयोग भोजन के संरक्षण एवं टीके और दवाओं के प्रशीतन के लिए एक आकर्षक विकल्प है। विभिन्न प्रकार के सौर शीतलन उपकरण जो वर्तमान में उपलब्ध हैं की निम्न दो श्रेणियां हैंः

1. सौर बिजली (फोटोवोल्टिक)
2. सौर तापीय प्रशीतक

सौर फोटोवोल्टिक रेफ्रिजरेटर : यह वाष्प संपीड़न चक्र पर आधारित एक पारंपरिक प्रशीतन उपकरण है जो की सौर फोटोवोल्टिक से प्राप्त बिजली पर चलता है अर्थात शीतलन चक्र को संचालित करने के लिए प्रशीतक के पंप को सौर ऊर्जा के माध्यम से यांत्रिक ऊर्जा की प्रदान की जाता है।

सौर तापीय प्रशीतक : सौर तापीय प्रणाली शीतलन प्रभाव उत्पन्न करने के लिए सौर ताप का उपयोग करती है। एक प्रशीतक को ताप से चलाने के लिए अवशोषण प्रशीतन चक्र सबसे अधिक सक्षम है।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में स्वच्छता और उत्पादन के दृष्टिकोण से नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग इस क्षेत्र के लिए एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। देश में नवीनिकरणीय ऊर्जा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है और इसका उपयोग खाद्य उत्पादन में ऊर्जा की बचत एवं अच्छे लाभ के लिए किया जा सकता है।

पश्चिमी राजस्थान में नवीकरणीय ऊर्जा संसाधनः एक अवलोकन

दिलीप जैन एवं प्रियब्रत सांतरा

भा.कृ.अनु.प.—केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

भुमिका

भारत अक्षय स्रोतों से ऊर्जा उत्पादन के सबसे बड़े संभावित देशों में से एक है। जहाँ, राजस्थान उच्चतम वार्षिक सौर विकिरण प्राप्त करने के कारण नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग करने में अग्रणी है। जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास के कारण भारत की ऊर्जा खपत तेजी से बढ़ रही है। लाखों भारतीय परिवारों के शहरीकरण में वृद्धि के कारण मांग में और वृद्धि हो सकती है। इसलिए, ऊर्जा मांग के साथ—साथ पर्यावरण के दृष्टिकोण के लिए नवीकरणीय ऊर्जा संसाधनों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है। देश में कुल स्थापित बिजली क्षमता (69.02 गीगावाट) का 20 प्रतिशत नवीकरणीय ऊर्जा (यानी पवन, सौर, बायोमास इत्यादि) का योगदान है। 31 मार्च 2018 तक जल विद्युत स्थापित क्षमता 45.29 गीगावाट थी जो की कुल बिजली क्षमता का 13 प्रतिशत है। अधिकांश देशों के विपरीत, भारत जल विद्युत को अक्षय ऊर्जा लक्ष्यों के अन्दर गणना नहीं करता है। इस प्रकार, बड़े पैमाने परस्थापित किये गये जल विद्युत समेत अक्षय ऊर्जा वर्तमान में भारत में कुल स्थापित बिजली क्षमता का लगभग 33प्रतिशत है। 2012 में भारत की घरेलू बिजली मांग 918 बिलियन यूनिट थी (चित्र 1)। यह उम्मीद की जाती है कि 9.8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि पर यह मांग 2020 तक 1,640 अरब यूनिट तक पहुंच जाएगी। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच ऊर्जा असमानता है। शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण इलाकों में बिजली की कमी केंद्रीयकृत प्रणाली के माध्यम से वितरण में पक्षपातपूर्ण लगती है। जबकि अक्षय ऊर्जा के माध्यम से ऊर्जा आपूर्ति में शहरी—ग्रामीण अंतर को कम किया जा सकता है।

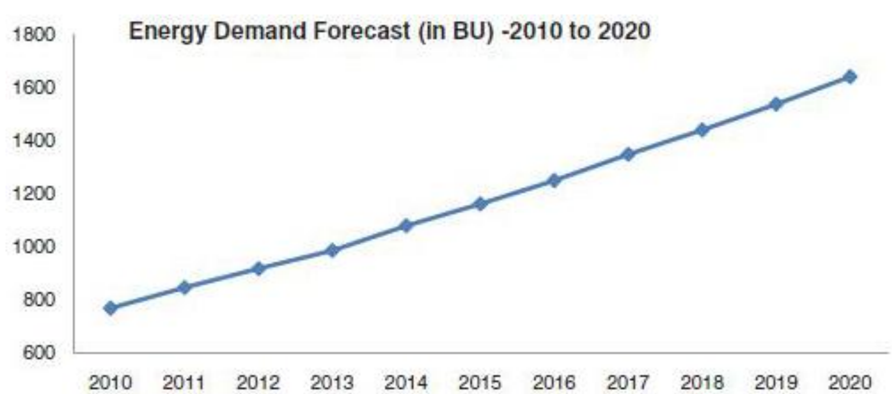

चित्र 1. भारत में ऊर्जा की मांग

राष्ट्रीय सौर मिशन के तहत 2022 के अंत तक 1,00,000 मेगावाट या 100 गीगावाट सौर ऊर्जा उत्पन्न करने का लक्ष्य रखा गया है। साथ ही 2022 तक 60,000 मेगावॉट पवन ऊर्जा को उत्पन्न करने का लक्ष्य रखा गया है। इन राष्ट्रीय लक्ष्यों में, राजस्थान और गुजरात अधिकतम योगदान दे सकता है और सौर और पवन ऊर्जा दोनों इन दो राज्यों में उपयोग किया जा सकता है (तालिका 1)

तालिका 1ः 2022 के अंत तक नवीकरणीय ऊर्जा स्थापना के अंदाजन लक्ष्य (एमएनआरई)

राज्य	सौर ऊर्जा (मेगावाट)	पवन ऊर्जा (मेगावाट)
राजस्थान	5762	8600
गुजरात	8020	8800
जम्मू–कश्मीर	1155	–
राष्ट्रीय लक्ष्य	1,00,000	60,000

राजस्थान में नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन :

राजस्थान में 5.5 से 6.8 किलोवाट प्रति वर्ग मीटर की दर पर सौर विकिरण प्राप्त होता है। औसतन 35 मेगावॉट क्षमता सौर संयंत्र 1 वर्ग किमी पर स्थापित किया जा सकता है। अब तक, राजस्थान में तीसरी पीढ़ी के सौर पीवी प्रौद्योगिकियों के आधार पर कोई भी ग्रिड कनेक्टेड सौर पीवी पावर प्लांट स्थापित नहीं किया गया है।

पवनऊर्जा :

पवन ऊर्जा पवन टरबाइन के माध्यम से वायु प्रवाह से बिजली बनाता है। जीवाश्म ईंधन जलाने के विकल्प के रूप में पवन ऊर्जा, भरपूर मात्रा में उपलब्ध है। यह उत्पादन के दौरान कोई ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन नहीं करता है, पानी नहीं लेता है, और छोटी भूमि का उपयोग करता है। गैर नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों की तुलना में पवन ऊर्जा की पर्यावरण पर बहुत कम समस्याग्रस्त हैं। एक पवन फार्म विद्युत ऊर्जा के उत्पादन के लिए उपयोग किए जाने वाले उसी स्थान पर पवन टरबाइन का एक समूह है। राजस्थान पहले से ही 5400 मेगावाट की अनुमानित क्षमता के साथ भारत में विद्युत ऊर्जा में पवन ऊर्जा को टैप करने में अग्रणी है। हाल की योजनाओं में पांच पवन ऊर्जा परियोजनाएं शामिल हैं जिनमें संयुक्त बिजली उत्पादन क्षमता 1600 मेगावाट है, जिनकी योजना जैसलमेर, बाड़मेर और जोधपुर के लिए की गई है। दिसंबर 2014 तक कुल 3065 मेगावॉट पवन ऊर्जा क्षमता स्थापित की गई है।

सौर ऊर्जा :

सौर ऊर्जा सौर फोटोवोल्टिक कोशिकाओं के माध्यम से सौर विकिरण से विद्युत उत्पादन करते है। राजस्थानके रेगिस्तान में 300–330 स्पष्ट धूप वाले दिनों के साथ कैलिफ़ोर्निया, नेवादा, कोलोराडो और एरिजोना के मुकाबले सौर मानचित्र पर चमकता है। राज्य के बाड़मेर, बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर जैसे जिले सबसे अच्छे सौर विकिरण वाले प्रमुख क्षेत्र हैं। राजस्थान में महत्वपूर्ण संसाधन उपलब्ध है जो सौर ऊर्जा उत्पादन के लिए आवश्यक हैंः उच्च सौर विकिरण (6–7किलोवाट प्रति वर्ग मिटर प्रतिदिन) और अपेक्षाकृत फ्लैट, अविकसित भूमि के बड़े हिस्से। जवाहर लाल नेहरू राष्ट्रीय सौर मिशन (जे.एन.एन.एस.एम) के चरण –1 में 1100 मेगावाट आवंटन (79.36 प्रतिशत) से 873 मेगावॉट के अधिकतम हिस्से को प्राप्त करने वाले राज्य में ये कारक महत्वपूर्ण थे। जेएनएनएसएम 355 मेगावाट के दूसरे चरण के तहत 750 मेगावाट से राजस्थान को आवंटित किया गया है। दिसंबर, 2014 तक राज्य में 866.60 मेगावाट की कुल स्थापित क्षमता स्थापित की गई है।

2022 तक 20 गीगावाट सौर ऊर्जा स्थापित करने का सरकारी लक्ष्य जनवरी 2018 में चार साल पहले सौर पार्कों के साथ–साथ छत के शीर्ष पैनलों के माध्यम से शेड्यूल से चार साल पहले हासिल किया गया था। भारत ने 2022 तक 100 गीगावाट सौर ऊर्जा हासिल करने का एक नया लक्ष्य निर्धारित किया है। दुनिया भर में शीर्ष सात सबसे बड़े सौर पार्क भारत में 1000 मेगावाट की क्षमता के साथ आंध्र प्रदेश के कुरनूल में दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा सौर पार्क समेत भारत में हैं। दुनिया का सबसे बड़ा सौर ऊर्जा संयंत्र, भद्रा सौर पार्क का निर्माण राजस्थान में 2255 मेगावाट की क्षमता के साथ किया जा रहा है और 2018 के अंत तक पूरा होने की उम्मीद है।

पिछले कुछ वर्षों के दौरान, सौर पीवी प्लांट, पवन टरबाइन, जल विद्युत, बायोगैस जैसे स्थापित करने के लिए एक महान कदम उठाया गया है। नवीनीकरण योग्य संचयी क्षमता 2011–12 में 24914 मेगावॉट से बढ़कर 2015–16 के अंत तक बढ़कर 42752 हो गई है, जो कि 17.8 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर है। मार्च 2016 के अंत तक, पवन ऊर्जा स्थापना अधिकतम 26769मेगावाट (62 प्रतिशत) साझा करती है जबकि सौर पीवी स्थापना 6762 मेगावाट (15.8 प्रतिशत) साझा करती है। राजस्थान और गुजरात देश में कुल सौर ऊर्जा स्थापित क्षमता का 58 प्रतिशत हिस्सा साझा करते हैं, जबकि इन दो राज्यों में कुल पवन स्थापित क्षमता का 29.2 प्रतिशत हिस्सा है। तमिलनाडु और महाराष्ट्र 2014–15के अंत तक कुल स्थापित क्षमता का 52 प्रतिशत साझा करके हमारे देश में कुल पवन स्थापना में आगे है। अब तक, जमीन पर सौर पीवी और पवन टरबाइन अलग से स्थापित किया गया है। अगर हम भारत के पवन संसाधन मानचित्र और सौर एटलस देखते हैं, तो देश के कुछ क्षेत्र हैं जहां हवा और सौर संसाधन दोनों पर्याप्त रूप से उपलब्ध हैं (चित्र 2)।

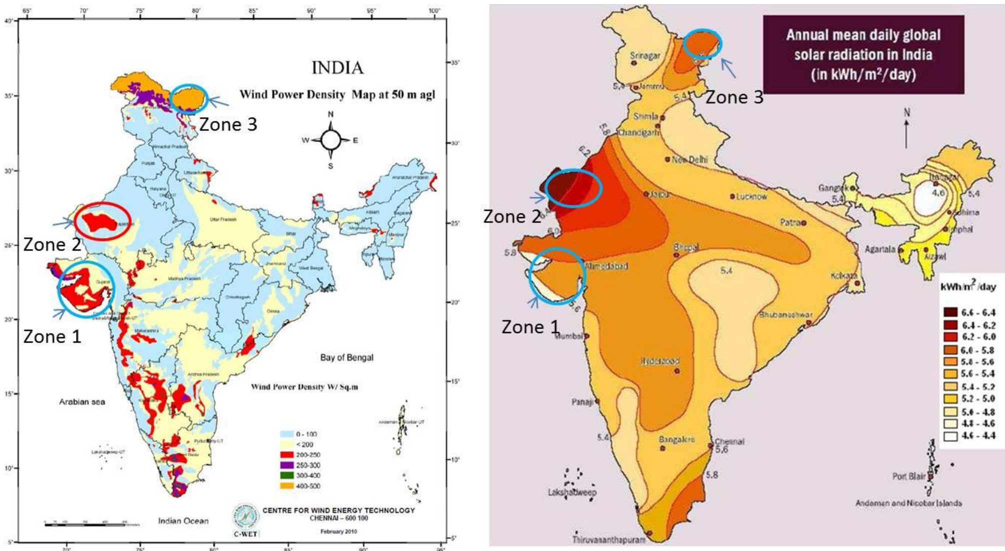

चित्र 2: भारत में सौर और पवन संसाधन

राजस्थान और गुजरात में जो जोन हैं वहाँ जमीन से 50 मीटर ऊंचाई पर पवन ऊर्जा घनत्व 200—250 वाटप्रति वर्ग मिटर है और साथ ही सौर संसाधन भी उच्च हैं (5.6—6.6 किलोवाट प्रति वर्ग मीटर प्रतिदिन)। उच्च ऊंचाई पर जम्मू—कश्मीर के एक हिस्से में भी उच्च हवा और सौर संसाधन हैं, हालांकि मुश्किल इलाके और स्थलाकृति के कारण सौर और पवन टरबाइन स्थापित करना हमेशा संभव नहीं होता है।

बायोमास ऊर्जा

बायोमास विभिन्न मानव और प्राकृतिक गतिविधियों के कार्बोनेशियास अपशिष्ट से व्युत्पन्न एक नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन है। यह कई स्रोतों से लिया गया है, जिसमें काष्ठ उद्योग, कृषि अवशेष जैसे बैगेज, फसल स्ट्रॉ, पशु गोबर और कृषि आधारित उद्योगों से उत्पन्न अपशिष्ट शामिल हैं। बायोमास कार्बन को वायुमंडल से बाहर ले जाता है, जबकि यह बढ़ रहा है, और इसे जला दिया जाता है। यदि यह एक स्थायी आधार पर प्रबंधित किया जाता है, तो बायोमास को लगातार भरने वाली फसल के हिस्से के रूप में कटाई की जाती है। नगरपालिका ठोस अपशिष्ट, पशु और कुक्कुट कचरे को बायोमास भी कहा जाता है क्योंकि वे प्रकृति में जैव—अवक्रमणीय होते हैं। मुख्य बायोमास स्रोत नीचे सूचीबद्ध हैं।

- काष्ठ और उसका अपशिष्टः वन काष्ठ, ऊर्जा बागानों से लकड़ी, धूल, पेड़ की शाखाओं और पत्तियों आदि।
- कृषि अवशेषः चावल भूसी, बैगेज, मूंगफली के गोले, कॉफी भूसी, भूसे, नारियल के गोले, नारियल भूसी, अरहर डंठल, जूट इत्यादि।

- एक्वाटिक और समुद्री बायोमासः शैवाल, जलीय खरपतवार और पौधों, समुद्री घास बिस्तर, केल्प, मूंगा चट्टान आदि
- वेस्टः नगरपालिका ठोस अपशिष्ट, नगरपालिका सीवेज कीचड़, पशु अपशिष्ट, पेपर अपशिष्ट, औद्योगिक अपशिष्ट आदि

भारत में, ग्रिड से जुड़े और ऑफ–ग्रिड क्षमताओं दोनों में जैव ऊर्जा के तहत कुल 4,449 मेगावाट स्थापित किया गया है।

राजस्थान राज्य में बायोमास ऊर्जा का मुख्य स्रोत सरसों भूसा और विलायती बबूल है। इन उपलब्धता के मुख्य क्षेत्र टोंक, सिरोही, बरन, अलवर, कोटा, सवाई माधोपुर, नागौर, हनुमानगढ़ और जालोर जिले हैं। राज्य सरकार ने इस क्षेत्र में निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए 'बायोमास से विद्युत उत्पादन को बढ़ावा देने की नीति' जारी की है। 99.30 मेगावाट की क्षमता वाले बायोमास आधारित बिजली परियोजनाओं को दिसंबर 2014 तक चालू कर दिया गया है। 2016 तक भारत में नवीकरणीय ऊर्जा प्रणालियों की समग्र स्थापना तालिका 2 में दी गई है।

तालिका 2: भारत में नवीकरणीय ऊर्जा की स्थापित क्षमता

नई और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय	
2015–16 में कार्यक्रम / योजनावार शारीरिक प्रगति (और मार्च, 2016 के महीने के दौरान)	
क्षेत्र	क्षेत्र संचयी उपलब्धियां(31.03.2016 तक)
प्रथमः ग्रिड–इंटरैक्टिव पावर (मेगावाट में क्षमताए)	
पवन ऊर्जा 2676 9 .05	26769.05
सौर ऊर्जा	6762.85
लघु हाइड्रो पावर	4273.90
बायोपावर (बायोमास और गैसीफिकेशन और बागैसी कॉजनरेशन)	4831.33
अपशिष्ट से क्षमता	115.08
कुल	42752.21

द्वितीयः ऑफ–ग्रिड या केपटिभ पावर (समतुल्य मेगावाट में क्षमताएं)		
अपशिष्ट ऊर्जा		160.16
बायोमास कोजेनरेशन (गैर–बागैसी)		651.91
बायोमास गेसिफायर	ग्रामीण	18.15
	औद्योगिक	164.24
एयरो–जेनरेटर या हाइब्रिड सिस्टम		2.69
एस.पी.वी. सिस्टम		313.88
जल मिलों या सूक्ष्म जल विद्युत		18.71
कुल		1329.74
तृतीयः अन्य नवीकरणीय ऊर्जा प्रणाली		
पारिवारिक बायोगैस संयंत्र (लाखों में)		48.55
सोलर जल तापक–संग्राहक क्षेत्र (मिलियन वर्ग मिटर)		8.90

सारांश :

राजस्थान को लंबी अवधि के लिए उच्च सौर विकिरण प्राप्त होता है और उच्च हवा प्रवाह के साथ खेती के लिए अधिकतम क्षेत्रफल है और बिजली उत्पादन के लिए सबसे संभावित नवीकरणीय संसाधन हैं।

मोटे अनाजों का प्रसंस्करण

ओम प्रकाश

भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

मोटे अनाजों जैसे कि बाजरा, रागी, कांगणी, शावां, शामक, चेना व कोदो आदि के उत्पादन में भारत हमेशा से अग्रणी रहा है। सीमित जल, शुष्क जलवायु और कम उर्वरा वाले भूमि के लिए उपयुक्त होने के कारण यह राजस्थान प्रदेश के लिए काफी महत्वपूर्ण हो जाता है। इन खूबियों के कारण यह फसल जलवायु परिवर्तन के असर को निम्न रखता है। यद्यपि दूसरे प्रमुख फसल (धान और गेहूं) केवल खाद्य सुरक्षा दे सकते हैं, मोटे अनाज बहुविकल्पी सुरक्षा (खाद्य, चारा, स्वास्थ्य, पोषण, आजीविका, पारिस्थितिकी) के कारण कृषि सुरक्षा के फसल कहलाते हैं। इस प्रकार इन फसलों से किसानों को मिलने वाले विशेष लाभ निम्नांकित हैं :

कम जल की जरुरत, कम परिपक्वता अवधि, उच्च उत्पादकता, उच्च ताप में उत्पादन की क्षमता, खराब मृदा में उत्पादन की क्षमता, बहुविकल्पी सुरक्षा और कीट रोधी फसल

उपरोक्त सभी असामान्य गुणों व क्षमता के बावजूद भारत में मोटे अनाजों के उत्पादन–क्षेत्र में गिरावट दर्ज की गई है। आने वाले दशकों में इनका विलोपन न केवल खाद्य और खेती के लिए क्षति होगी, बल्कि सभ्यतागत और पारिस्थितिक आपदा साबित हो सकता है। इसलिए, इन फसलों के उत्पादन को अधिक लाभकारी बनाकर किसानों को सक्षम बनाना समय की मांग है।

पोषक तत्वः किसी भी मानक के अनुसार मोटे अनाज अन्य प्रमुख अनाजों (धान व गेहूं) की तुलना में काफी अधिक पोषक पाए गए हैं। ये प्रोटीन, खनिज (कैल्सियम, लौह) और रेशा के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

स्वास्थ्य लाभः मधुमेह रोधी सुरक्षा, हानिकारक रक्तवसा का निम्न स्तर, रक्त दाब में कमी, स्तन में कर्क रोग से बचाव, श्वसन समबन्धी अवस्था (अस्थमा) का उपचार, कब्ज और सूजन का विलोपन, ग्लूटेन मुक्त अनाज और शरीर का विषहरण।

यद्यपि मोटे अनाजों के विभिन्न उत्पाद पारम्परिक तरीके से घरो में बनाये जाते रहे हैं, तथापि इनके व्यावसायिक उत्पादों की कमी परिलक्षित है।

कुछ पारम्परिक उत्पाद इस प्रकार हैंः रागी दलिया (पॉरिज), बाजरा माल्ट, सोरगम मुरुक्कु, बाजरा कोलुकृत्तई, लिटिल मिलेट का पायसम, बार्नयार्ड मिलेट का पिट्टू, फॉक्सटेल मिलेट केसरी, कोदो मिलेट हलवा, रागी बिस्कुट रागी ढोकला, रागी चकली, रागी पापड और रागी आटा।

बड़े बाजार की तलाश में अभी कुछ उत्पाद स्थानीय स्त्तर पर उपलब्ध हैः लिटिल मिलेट मैक्रोनी, कोदो मिलेट नूडल्स, बार्न यार्ड मिलेट वर्मिसेली, सोरगम ब्रेड, रागी केक, कोदो मिलेट कुकीज़, सोरगम फ्लेक्स, बाजरा फ्लेक्स और रागी फ्लेक्स।

जबकि कुछ व्यावसायिक उत्पाद बड़े स्त्तर पर भी उपलब्ध हैं जैसे कि बाजरे का आटा, रागी माल्ट, कम्बु नूडल्स, मिलेट ड्रिंक, ऑर्गनिक मिलेट ब्रेड, न्यूट्री चॉइस रागी बिस्कुट, निम्न ग्लाइसेमिक कुकीज़, व्हिस्की, मिलेट माल्ट, मिलेट राइस, पॉर्रिज फ्लेक्स, मिलेट फ्लेक्स और मिलेट कुकीज़।

इसी क्रम में व्यावसायीकरण के लिए उपलब्ध मोटे अनाज का एक उच्च पोषक मान वाला उत्पाद हैः रागी युक्त नाश्ते का धान्य, जिसे बहिर्वेधन विधि द्वारा बनाया गया है। बहिर्वेधन (एक्स्ट्रूजन) खाद्य प्रसंस्करण की वह तकनीक है, जिसमे इसकी विभिन्न इकाइयाँ जैसे कच्चे खाद्य सामग्री के मिश्रण बनाने, गूंथने, पकाने व अभीष्ट आकार में बनाने की क्रिया को सम्मिलित किया गया है। खाद्य बहिर्वेधन (एक्स्ट्रूजन) उच्च ताप पर सीमित समय के साथ पाक प्रसंस्करण की एक विधि है। इसमें कच्चे खाद्य पदार्थों (अनाज के चूर्ण) के मिश्रण को दबाव से विशेष क्षिद्र द्वारा गुजारने के बाद विशिष्ट माप में ब्लेड द्वारा काटा जाता है। विभिन्न सर्वेक्षणों से विगत वर्षों में लोगों के खान–पान की आदतों में बदलाव का पता चला है। खाने के लिए तैयार नाश्ते के रूप में प्रसंस्कृत अनाजों (चकत्तीकृत, फुले हुए व बहिर्वेधित उत्पाद) की मांग में तीव्र वृद्धि दर्ज की गई है।

प्रसंस्कृत अनाजों से नाश्ते के लिए तैयार यह खाद्य उत्पाद प्रायः दिन के पहले आहार के रूप में खाया जाता है। यह सामान्यतया ठन्डे रूप में दूध, रस, पानी या दही में फल (वैकल्पिक) के साथ अथवा सूखे भी खाये जाते हैं। नाश्ते के इन उत्पादों को बनाने के लिए बहिर्वेधन (एक्स्ट्रूजन) प्रक्रिया को अपनाया जाता है। उच्च उत्पादकता और पोषण धारण करने के साथ प्रसंस्करण प्रक्रिया की निरन्तरता के कारण बहिर्वेधन (एक्स्ट्रूजन) तकनीक को अपेक्षाकृत अधिक पसंद किया जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान खाद्य अवयवों के क्रियाशील गुण संशोधित हो जाते हैं पोषण रोधी व विषाक्त पदार्थों, अवांछनीय एन्ज़ाइम, सूक्ष्म जीव व अन्य खाद्य जनित कीटों को भी बहिर्वेधन नष्ट अथवा निष्क्रिय कर देता है। बहिर्वेधन (एक्स्ट्रूजन) प्रसंस्करण में विशिष्ट नमी की मात्रा के साथ कच्चे खाद्य अवयवों के चूर्ण का प्रयोग किया जाता है।

रागी युक्त नाश्ते के धान्य को मक्का, रागी और गाजर चूर्ण के मिश्रण से बनाया गया है। इस उत्पाद में 9.6 प्रतिशत प्रोटीन, 3.4 प्रतिशत रेशा, 2 मिलिग्राम / 100 ग्राम बीटा कैरोटीन तथा 3 मिलीग्राम / 100 ग्राम कैल्सियम है। बाजार में उपलब्ध समान उत्पादों की तुलना में निम्न ग्लाइसेमिक सूचकांक के कारण इस उत्पाद को मधुमेह रोधी पाया गया। यह उत्पाद कुपोषण से लड़ने में सहायक, कुरकुरा, हल्का, स्वादिस्ट (दूध के साथ अथवा रहित) तथा कृत्रिम रंग व गंध से मुक्त है। इस तरह यह खाने के लिए तैयार स्वादिष्ट,

पौष्टिक और तुलनीय मूल्य पर उपलब्ध बेहतर उत्पाद है। प्रारम्भ में इस उत्पाद का व्यवसाय छोटे–2 पढ़ने वाले बच्चों को ध्यान में रखकर शुरू किया जा सकता है। इसके लिए 30 लाख रुपये तक की लागत के साथ 1.5 साल की लागत वापसी अवधि अनुमानित है।

कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण और मूल्यवर्धन के लिए सौर ड्रायर द्वारा शुष्कीकरण

सुरेन्द्र पुनियाँ, ए.के. सिंह, दिलीप जैन एवं प्रियब्रत सांतरा

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

भारत देश की जनसंख्या बहुत तीव्र गति से वृद्धि कर रही है। वर्तमान में भारतीय जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग निम्न पोषित है। खाद्य उत्पादन में कोई समस्या नहीं है, परन्तु खाद्य में कमी का मुख्य कारण यह है कि खाद्य पदार्थ की अधिकतर मात्रा कटाई उपरान्त ही व्यर्थ हो जाती है, जो कि कीटों के हमले, संग्रहण के दौरान नुकसान, विषाक्तता इत्यादि द्वारा हो रही है। यह कमी खाद्य का संग्रहण करने से पूर्व उपयुक्त रूप से शुष्कीकरण द्वारा रोकी जा सकती है। किसी भी खाद्य पदार्थ के संग्रहण के दौरान नुकसान की सीमा अंतिम उत्पाद की आर्द्रता की मात्रा पर निर्भर करती है। उचित तरीके से शुष्कीकरण द्वारा अधिक अवधि तक आर्द्रता की मात्रा कम की जा सकती है। सिर्फ अनुपयुक्त तरीके से किये गये शुष्कीकरण से भारत जैसे विकासशील देशों में 20 से 30 प्रतिशत फसलें नष्ट हो जाती हैं।

कृषि उत्पादों को सुखाने हेतु अच्छी विधियाँ कृषकों तक नहीं पहुंच पातीं अतः वे इस उद्देश्य के लिए विभिन्न सुविधाओं का लाभ नहीं ले पाते। ग्रामीण क्षेत्रों में शुष्कीकरण अनिवार्य रूप से सूर्य विकिरणों पर आधारित होता है जिससे धूल, संक्रमण, पक्षियों द्वारा खा लिये जाने तथा अचानक वर्षा से नुकसान होने की आशंका बनी रहती है जिसे खुला सौर शुष्कीकरण कहते हैं। इसके अन्तर्गत उत्पाद को खुली सौर विकिरणों में फैलाया जाता है और तब तक रखा जाता है जब तक उत्पाद की नमी हट न जाए और ऐच्छिक स्तर पर शुष्कीकृत उत्पाद प्राप्त न हो जाए। शुष्कीकरण के दौरान उत्पाद को सब तरफ से समान रूप से सुखाने के लिए थोड़े समय के अन्तराल में पलटा जाता है। वर्षा एवं तूफान के दौरान यह नहीं किया जाता।

सौर ऊर्जा का उचित उपयोग कृषि एवं उद्योग में मुख्यतया उनमें जिनमें कम तापमान की आवश्यकता होती है, शुष्कीकरण पद्धति में किया जा सकता है। सौर ऊर्जा की किसी स्थान पर उपलब्धता के बारे में सौर उपकरणों के प्रबंधन, डिजाइन एवं शोध के साथ कोई क्रियाविधि करने हेतु जानकारी प्राप्त करना बहुत आवश्यक है। हालांकि सौर विकिरणों की उपलब्धता मौसम पर, रोजाना एवं घंटों के हिसाब से, साथ ही दिशा पर भी निर्भर करती है। यह जानना बहुत जरूरी है कि मौसमी तथ्यों के साथ भौगोलिक स्थिति पर किस दिशा में सबसे ज्यादा सौर ऊर्जा उपलब्ध रहती है।

सौर ऊर्जा वातावरणीय मित्र है, जो कि मुफ्त रूप से उपलब्ध अक्षय ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत है। सौर ऊर्जा अक्षय, प्रदूषण रहित और बिल्कुल मुफ्त है। यह परम्परागत ईंधन से संबंधित समस्याओं से

बचाती है। सौर ऊर्जा के समुचित उपयोग से पारंपरिक स्त्रोतों पर निर्भरता काफी हद तक कम की जा सकती है। पश्चिमी राजस्थान में सौर विकिरण उर्जा, प्रचुर मात्रा (6.0–7.4 किलो वाट घंटा मी$^{-2}$ प्रतिदिन) में उपलब्ध है एवं लगभग 300 दिनों तक आसमान साफ रहता है। शुष्क क्षेत्र में सौर ऊर्जा की प्रचुर मात्रा में उपलब्धता को देखते हुए इसका अधिक से अधिक दोहन हो सकता है। इस कभी खत्म न होने वाली सौर ऊर्जा का उपयोग करने के लिए काजरी ने पिछले तीन दशकों से विभिन्न प्रकार के घरेलू, खेती और उद्योग में काम आने वाले सौर यन्त्रों के विकास हेतु शोध कार्य किया जा रहा हैं। सौर ऊर्जा को खाना पकाने, कृषि उत्पादों को सुखाने, पानी गर्म करने, जल को शुद्ध करने, पशु आहार उबालने, आसुत जल उत्पादन, मोम पिघालने, शीत भण्डारण आदि के उपयोग में लिया जा सकता है। इसके अलावा पौधों में दवाई छिड़कने के लिए सोलर स्प्रेयर और सोलर डस्टर भी बनाए गए। वर्तमान में काजरी में कृषि–वोल्टेइक प्रणाली या सौर खेती की परियोजना पर कार्य चल रहा है जिसके द्वारा एक ही भूमि इकाई से फसल और बिजली, दोनों का उत्पादन किया जा सकता है। मरुक्षेत्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए प्रकृति प्रदत्त इस निशुल्क सौर ऊर्जा का उपयोग कर संस्थान ने घरेलू, व्यावसायिक व कृषि सम्बन्धी सौर उपकरणों का विकास किया गया।

सौर शुष्कक :

शुष्कीकरण एक बहुत पुरानी तकनीक है जिससे कृषि एवं उद्यानिकी के विभिन्न उपयोगी उत्पादों से अतिरिक्त नमी हटा दी जाती है। बहुत पुराने समय से लोग कम अवधि वाले व जल्दी खराब होने वाले उत्पादों का शुष्कीकरण करके उनको लम्बे समय तक भण्डारण योग्य, सुविधाजनक यातायात एवं बाद में उपयोग में लिये जा सकने के योग्य बनाते थे। आधुनिक समय में, घरेलू महिलाएँ, कृषक, उद्योगपति विभिन्न उत्पादों, विशेषतया खाद्य पदार्थों को विभिन्न कारणों के लिए अलग–अलग पद्धतियाँ काम में लेकर शुष्कीकरण करते हैं। छोटे एवं असंगठित स्तर पर अभी भी खुले में सौर ऊर्जा द्वारा शुष्कीकरण प्रचलित है लेकिन औद्योगिक क्षेत्र शीघ्र एवं नियंत्रित शुष्कीकरण के लिए यांत्रिक शुष्कक काम में लेते हैं। ऊर्जा की हमेशा से बढ़ती हुई कीमतें एवं उसके द्वारा होने वाले प्रदूषण के कारण सौर शुष्कक जैसे साधन ढूंढने जरूरी हैं। आजकल के दिनों में उच्च गुणवत्ता वाले सौर ऊर्जा द्वारा सुखाए गए उत्पाद जिनका असली रंग एवं पोषण मुख्यरूप से लोगों को बहुत आकर्षित करते हैं। खाद्य उत्पादों की मूल्य वृद्धि में पहली इकाई शुष्कीकरण है। विभिन्न प्रकार के सौर शुष्कक विभिन्न उत्पादों के शुष्कीकरण हेतु अभिलक्षणिक गुणों के हिसाब से विकसित किए गए हैं। भारत देश के अधिकतर स्थान साल में 300 दिन खुली धूप वाले हैं, जहाँ सौर ऊर्जा को आसानी से शुष्कीकरण के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।

शुष्क क्षेत्रों में अधिकतम सौर विकिरण एवं न्यूनतम आपेक्षिक आर्द्रता के कारण प्राकृतिक संवहन प्रकार का सौर शुष्कक काफी उपयोगी पाया गया है। विद्युत चालित शुष्कक काफी महंगा एवं बिजली की

उपलब्धता पर निर्भर होने के कारण कम उपयोग में आता है। इसलिए काजरी में प्राकृतिक संवातन (convection) युक्त इनक्लाइन्ड सौर शुष्कक, सौर फोटोवोल्टाइक शुष्कक एवं सौर प्रकाश वोल्टीय/ऊष्मीय हाइब्रिड सौर शुष्कक का विकास किया गया है। इस संबंध में धनिया, हरी मिर्च, पालक, भिण्डी, टमाटर, मेथी, प्याज, गाजर, फूल गोभी, पत्ता गोभी, बथुआ, लौकी, शकरकन्द, इमली इत्यादि सुखाने के सफल प्रयोग किये गये है। इसमें सूखे हुए पदार्थो में कुछ ''इन्सटेन्ट प्रोडक्ट'' भी बनाये गये है जैसे धनिया की चटनी, टमाटर चटनी इत्यादि।

सिद्धांत :

सौर शुष्कक समतल सौर संग्राहक एवं हरित गृह प्रभाव के सिद्धान्त पर आधारित है। सूर्य की लघु/मध्यम तरंगों वाली किरणें (<400 एवं 400–700 नैनोमीटर) काँच के तल पर पड़ने के बाद संग्राहक में प्रवेश करती हैं जो दीर्घ तरंग तापीय किरणों में परिवर्तित हो जाती है एवं काँच के तल के बाहर नहीं जा पाती। इससे तापमान काफी हद तक बढ़ जाता है। दिक् कोण (inclined angle) एवं अक्षांश (लैटीट्यूड) के हिसाब से कोण निर्धारित कर अधिकतम सौर ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है।

1. इनक्लाइन्ड सौर शुष्कक :

प्राकृतिक संवातन युक्त सौर शुष्कक का निर्माण जोधपुर स्थित भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान की कार्यशाला में किया गया। इस शुष्कक में उष्मीय ऊर्जा का उत्पादन सौर संग्रहक से होता है। इस शुष्कक के निर्माण में विभिन्न घटक हैंः एल्युमिनियम या सफेद लोहे की चद्दर, लोहे की एंगल, दो स्टेनलेस तार से बनी जंग रहित स्टील की जालीदार ट्रे, बाजरा के तने (डोके) निचली सतह पर एवं काँच का ऊपरी ढक्कन। शुष्कक का निर्माण 1280 मिमी × 980 मिमी (22 गेज) की जी.आई. चद्दर से किया गया जिसमें 2 शुष्कक ट्रे भी शामिल है। शुष्कक का संग्रहण क्षेत्रफल लगभग 1.08 मी.^{2} है। दो ट्रे (950 मिमी × 600 मिमी) का निर्माण स्टेनलेस स्टील की जाली से किया गया। शुष्कक के पिछले हिस्से के दरवाजे से इन ट्रे को निकाल सकते है। बाहरी हवा शुष्कक के अन्दर लाने के लिए छः प्लास्टिक के निपल लगाये गये है। बाजरे के तने संग्राहक की पेंदी में बिछा देते है जो की इन्सुलेशन के लिए काम में लिया जाता है ताकि उष्मा का कम से कम ह्यास हो। इस शुष्कक की क्षमता**:** पत्तीदार सब्जीः 4 कि.ग्रा., अन्य सब्जीः 8 कि.ग्रा. तथा सुखाने का समयः पत्तीदार सब्जीः 2 दिन**,** अन्य सब्जीः 4 दिन है।

चित्र 1. इनक्लाइन्ड सौर शुष्कक

किसानों के पास जब सब्जियों की मात्रा व उत्पादन अधिक हो तो उस समय सुखाकर बाद में अधिक कीमत पर बेच भी सकते है। इन सुखाई गई सब्जियों को सब्जियों का मौसम बीत जाने के बाद ऊँचे दामों पर बेचकर अत्यधिक आय प्राप्त की जा सकती है। सूखी हुई सब्जियों व फल के व्यवसायीकरण को राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय व्यापारिक पद्धति से जोड़कर आमदनी प्राप्त की जा सकती है। इन सूखी सब्जियों को गृहणियाँ घरों में रख सकती हैं व जरूरत पड़ने पर विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ बना सकती हैं तथा विभिन्न प्रकार की इन्सटेन्ट चटनियां व इन्सटेन्ट सूप भी तैयार कर सकती हैं जिससे श्रम व समय की बचत हो सकती है। अतः यह सौर शुष्कक गृहणियों के लिए वरदान है। इस सौर शुष्कक, जिसकी क्षमता 10 कि.ग्रा. है, की कीमत करीब रुपये 9,500 है। इस तरह पूरी इकाई, जिसमें 10 सौर शुष्कक लगे होते हैं, की कीमत रुपये 95,000 है। इन दस इकाइयॉ को एक क्रम में लगाकर 40 किग्रा पत्तो वाली (पालक, धनियाँ, मेथी, पुदीना एवं बथुआ) एवं 80 किग्रा अन्य सब्जियाँ (भिण्डी, गोभी, ग्वारफली, प्याज, लहसुन, हरी व लाल मिर्च, मटर, चुकन्दर, टमाटर, अरबी, हल्दी, मूली, गाजर, इमली, काचरा, इत्यादि) तथा बेर, खजूर, अंगूर, इत्यादि फल सुखा सकते है। इनकों सौर शुष्कक द्वारा 2 से 4 दिनों में सुखाया जा सकता है। हरी सब्ज्यिों का रंग हरा ही रहता है। सूखी सब्जियों को गर्म पानी में भिगाने से उनका आकार वापस ताजी सब्जी के बराबर हो जाता है तथा बाद में सब्जी बना सकते है। यह शुष्कक विकासशील देशों के लिए वरदान है। शुष्कक का आर्थिक मूल्यांकन किया गया जिसमें निवेश से होने वाली मुनाफा अवधि (पे बैक

समय) 1.42 कम समय की होने के कारण शुष्कक इकाई बहुत लागत प्रभावी है। इस शुष्कक की अवधि करीब 12 वर्ष है।

2. सौर फोटोवोल्टाइक शुष्कक एवं विनोवर

सौर वोल्टिक शुष्कक एवं विनोवर अनाज एवं भूसे के मिश्रण से अनाज अलग करने एवं फल तथा सब्जियों को सुखाने में काम आता है। स्लाटेड एंगल आयरन एवं फाइबर शीट से निर्मित दीर्घ आकार वाला सौर शुष्कक विकसित किया गया। इसे एक जगह से दूसरी जगह आसानी से ले जा सकते है। प्रारंभिक परीक्षण के उपरान्त छः अनुभागों वाला, 30 ट्रे के साथ प्री एयर हीटर, बैटरी (40 ए एच) तथा 75 वॉट का सौर पैनल वाला शुष्कक कृषि विज्ञान केन्द्र पाली में स्थापित किया गया। इसकी क्षमता (100–150 कि.ग्रा.) है। प्री एयर हीटर के कारण थर्मल ग्रेडियन्ट 5–6° सेन्टीग्रेड से घटकर 2–2.5° सेन्टीग्रेड तक आ गया जिससे कोई भी वस्तु समान रूप से सुखाई जा सके। बैटरी के द्वारा खराब मौसम में भी सुखाने का काम सम्भव हो सकता है। इस शुष्कक द्वारा पुदीना, धनियाँ, पालक, मैथी एवं सांगरी इत्यादि सुखाये गये एवं सूखे हुए उत्पाद के रंग तथा गन्ध दोनो ही बरकरार रहे। डाइंग चैम्बर में तापमान के अनुमान के लिए मॉडल विकसित किया गया। सौर विनोवर भी एक उपयोगी उपकरण है। जिससे तकरीबन 200–300 कि. ग्रा. अनाज को भूसे से प्रतिदिन अलग किया जा सकता है। प्री एयर हीटर के कारण समान रूप से ड्रांइग सम्भव हो सकी एवं सूखे उत्पाद के रंग तथा गन्ध दोनो ही बरकरार रहे, खास तौर पर हरे पत्ते वाली सब्जियों जैसे पुदीना, पालक, मैथी इत्यादि में।

चित्र 2. सौर फोटोवोल्टाइक शुष्कक एवं विनोवर

3. अवस्था परिवर्तनीय पदार्थ आधारित सौर प्रकाश वोल्टीय/ऊष्मीय हाइब्रिड सौर शुष्कक

एक अवस्था परिवर्तरनीय पदार्थ आधारित सौर प्रकाश वोल्टीय/ऊष्मीय हाइब्रिड सौर शुष्कक का रेखांकन एवं निर्माण किया गया। इस सौर शुष्कक का निर्माण कुछ इस तरह किया गया कि सौर पैनल एवं सौर तापीय संग्राहक से विद्युत एवं तापीय ऊर्जा का उत्पादन हो सके। यह शुष्कक संग्रहण इकाई एवं शुष्कन कक्ष द्वारा निर्मित होता है। इसमें डी.सी. पंखा, प्रकाश वोल्टीय पैनल एवं पी.सी.एम. कक्ष भी होते हैं। प्रकाश वोल्टीय पैनल शुष्कक की बाईं ओर डी.सी. पंखा चलाने के लिए लगा होता है जससे कि यह फोर्स्ड संवहन शुष्कक की तरह काम कर सके। इस शुष्कक का आकार (1250 मिमी $\times$ 850 मिमी) है जो जी.आई. चद्दर (22 गेज) से बना होता है। शुष्कक के ऊपर 4 मिमी मोटाई का साधारण कांच लगा होता है। संग्राहक इकाई का क्षेत्रफल 1.06 मी^{2} है। इसमें 10 वॉट का पंखा लगा होता है जो नम हवा को बाहर की ओर फेंकता हे। इस पंखे को 20 वॉट के प्रकाश वोल्टीय पैनल से चलाते हैं। इसमें दो बड़े (840 मिमी $\times$ 600 मिमी) एवं दो छोटे आकार (400 मिमी $\times$ 600 मिमी) की ड्राइंग ट्रे होती है। शुष्कक के पेन्दे की तरफ बगल में छः प्लास्टिक की पाईप लगी होती है जिसके द्वारा बाहर की हवा अन्दर जाती है। ड्राइंग ट्रे के नीचे अवस्था परिवर्तन पदार्थ में डिब्बे रखे होते हैं। दो प्रकार के पी.सी.एम. एक (पी.ई.जी. 600, गलनांक 17^0 से 23^0 एवं पी.ई.जी. 1000, गलनांक 33^0 से 40^0) क्रमशः सर्दी एवं गर्मियों में प्रयोग किया गया। इन पदार्थों द्वारा संग्रहित ऊर्जा का उपयोग, रात में फल एवं सब्जी सुखाने में किया गया। इस शुष्कक में बेर, गोंदा, टमाटर, पालक, गाजर, केर, आंवला और सांगरी को सुखाने का प्रयोग किया गया। इस शुष्कक में अधिकतम तापमान 74^{0}C पाया गया जो कि फल एवं सब्जियों को अन्दर रखने पर घटकर तापमान 60 से 62^{0}C तक तक आ गया जबकि बाहर का तापमान 23 से 26^{0}C था। टमाटर की आर्द्रता 95 प्रतिशत से घटकर 4.5 प्रतिशत, पालक 93 से 4.5 प्रतिशत, गाजर 71 से 12 प्रतिशत, बेर 80 से 26 प्रतिशत एवं गोंदा 85 से 10 प्रतिशत के स्तर पर 2 से 3 दिनों के अन्दर आ गयी। इस सौर शुष्कक की औसत दक्षता 16.7 प्रतिशत पाई गई।

चित्र 3. सौर प्रकाश वोल्टीय/उष्मीय हाइब्रिड सौर शुष्कक

सारांश :

राजस्थान के थार मरूस्थल में कृषि उत्पादों को सुखाने के लिए बिजली से चलने वाले उपकरण काम में लिए जाते है। यहां सौर ऊर्जा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, जिसका उपयोग फल व सब्जियों को सुखाने के लिए किया जा सकता है। इन उपरोक्त समस्याओं को हल करने के लिए केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी) ने सौर ऊर्जा का उपयोग कर कम कीमत के उन्नत सौर शुष्कक बनाए गए हैं। काजरी का यही उद्देश्य है कि काजरी में निर्मित सौर यन्त्रों का लाभ सीधे खेतों मे पहुंचा कर किसानों की आमदनी बढाई जा सके।

पौध संरक्षण के लिए सौर फोटोवोल्टिक चालित छिड़काव एवं बुरकाव यन्त्र

सुरेन्द्र पुनियाँ एवं प्रियब्रत सांतरा

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

सर्व विदित है कि ईंधन आधारित ऊर्जा की तेजी से हो रही कमी को देखते हुए, अक्षय ऊर्जा दुनिया के भविष्य की ऊर्जा सुरक्षा के लिए सबसे व्यवहार्य विकल्प है। वर्तमान में, दुनियाँ के वैश्विक बिजली उत्पादन के लिए अक्षय ऊर्जा की हिस्सेदारी 22.8 प्रतिशत है जो कि ज्यादातर पन बिजली के योगदान से किया जाता है। भारत का कुल पवन ऊर्जा स्थापना में विश्व में 5 वाँ स्थान है। वर्तमान में भारत में ऊर्जा उत्पादन का 13 प्रतिशत नवीनीकरण पवन, सौर तथा बायोमास जैसे श्रोतों के माध्यम से पूरा किया जाता है जबकि कोयला 60 प्रतिशत योगदान के साथ अभी भी ऊर्जा उत्पादन का मुख्य श्रोत है। वर्तमान में राजस्थान एवं गुजरात सौर ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्र में अंग्रणी राज्य हैं एवं कुल सौर ऊर्जा का लगभग 58 प्रतिशत इन राज्यों से उत्पादित होता है। केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय सौर मिशन के तहत 2021–22 का 1,00,000 मेगावाट (100 गीगावाट) सौर ऊर्जा पैदा करने का महत्वाकांक्षी लक्ष्य रखा है। इसी तरह राजस्थान रिन्यूएबल एनर्जी कॉर्पोरेशन लिमिटेड ने सन् 2022 तक राजस्थान में 25,000 मेगावाट के सौर ऊर्जा प्लांट लगाए जाने का लक्ष्य निर्धारित किया है।

सौर ऊर्जा वातावरणीय मित्र है, जो कि मुफ्त रूप से उपलब्ध अक्षय ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत है। सौर ऊर्जा अक्षय, प्रदूषण रहित और बिल्कुल मुफ्त है। सौर ऊर्जा एक वैकल्पिक नवीकरणीय ऊर्जा भी है जो कम लागत और अपनी उच्च क्षमता की वजह से तेजी से मुख्य धारा का विकल्प बनती जा रही है। यह परम्परागत ईंधन से संबंधित समस्याओं से बचाती है। इसकी औसत ऊर्जा लगभग 6.0 किलो वाट घंटा मी$^{-2}$ प्रतिदिन है। सौर ऊर्जा के समुचित उपयोग से पारंपरिक स्त्रोतों पर निर्भरता काफी हद तक कम की जा सकती है। सौर ऊर्जा की किसी स्थान पर उपलब्धता के बारे में सौर उपकरणों के प्रबंधन, डिजाइन एवं शोध के साथ कोई क्रियाविधि करने हेतु जानकारी प्राप्त करना बहुत आवश्यक है। हालांकि सौर विकिरणों की उपलब्धता मौसम पर, रोजाना एवं घंटों के हिसाब से, साथ ही दिशा पर भी निर्भर करती है। सौर ऊर्जा के जरिए कार्य स्थलों एवं घरों के उपयोग के लिए विद्युत उत्पादन के साथ साथ सौर ऊर्जा के इस्तेमाल से हम विद्युत चालित ड्रायर, कुकर, भट्टी, रेफ्रीजरेटर, और एसी भी चला सकते हैं। कृषि कार्यों में भी सौर ऊर्जा के इस्तेमाल में बढ़ोत्तरी हो रही है जो भारत में परंपरागत तौर पर भारी मात्रा में बिजली की खपत की वजह है। सौर ऊर्जा तकनीक कृषकीय उपकरणों के लिए एक बेहतर विकल्प हो सकता है। सोलर फोटोवोल्टीक सेल सूर्य से प्राप्त प्रकाश ऊर्जा को सीधे विधुत ऊर्जा में तब्दील करता है। संकेंद्रित सौर ऊर्जा (सीएसपी) प्रणाली रूपांतरण प्रक्रिया के लिए अप्रत्यक्ष विधि का प्रयोग करता है। सोलर फोटो

वोल्टाइक (एसपीवी) और सीएसपी के अलावा डाय–सेन्सेटाइज्ड सोलर सेल, ल्युमिन्सिकेंट सोलर कंसेंट्रेटर, बायो हाइब्रिड सोलर सेल, फोटोन इनहैंस्ड थरमाइयोनिक इमिशन सिस्टम जैसी कुछ अन्य नई तकनीक भी हैं। इन सभी उपकरणों का छोटे स्तर पर भी उत्पादन किया जा सकता है; ये आकार में छोटे होते हैं जो इन्हें आसानी से कृषि कार्यों में उपयोग के लायक बनाता है।

खेतों में कृषि रसायनों के छिड़काव के लिए काजरी में सौर पीवी स्प्रेयर एवं डस्टर बनाये गए हैं। जिससे कीटनाशक रसायनों एवं पाउडर को फसल पर आसानी से छिड़का जा सकता है। अगर कीट और रोग सही समय पर नियंत्रित नहीं किए जाये तो लगभग 35% फसल उत्पादन क्षतिग्रस्त हो जाता है। फसल क्षेत्र में पौध संरक्षण के लिए रसायनों का तरल फार्मूलेशन से या धूल कीटनाशक का एक समान छिड़काव कीटनाशकों के प्रभावी नियंत्रण के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, कई सौर पीवी संचालित उपकरणों को डिजाइन और विकसित किया गया है उदाहरण के लिए सौर पीवी स्प्रेयर, सौर पीवी डस्टर, आदि।

सौर ऊर्जा चलित छिड़काव यन्त्र (सौर पी वी स्प्रेयर) :

खेतों में कृषि रसायनों के छिड़काव के लिए सौर पीवी स्प्रेयर विकसित किया गया। इस पीवी स्प्रेयर में 60 वॉट का डी सी पम्प 120 पीक वॉट के सौर पीवी मॉड्यूल से जुड़ा हुआ है जिससे उत्पादित ऊर्जा सीधी डी सी मोटर द्वारा इस्तेमाल की जा सके। बिजली की सतत आपूर्ति के लिए दो बैटरी बैंक (12 वॉट, 7 ए एच) को लगाया गया। पीवी स्प्रेयर की प्रमूख इकाइयां निम्नलिखित है (1) सौर पीवी मॉड्यूल का उपयोग सौर ऊर्जा से बिजली पैदा करने के लिए ऊर्जा रूपान्तरण इकाई (2) बैटरी के रूप में ऊर्जा भंडारण इकाई (3) पम्पिंग प्रणाली के साथ डी सी मोटर (4) स्प्रेयर इकाई। सौर पीवी स्प्रेयर की अच्छी दक्षता से प्रति घंटे 84 लिटर रसायन का छिड़काव 0.21 हेक्टेयर क्षेत्र में किया जा सकता है। इस स्प्रेयर की दक्षता सौर ऊर्जा की उपलब्धता के आधार पर बदलती रहती है। उदाहरण के लिए जोधपुर में सर्दियों के दिनों में खुले आसमान से 10 से 11 बजे के बीच इसकी दर 82.2 ली. प्रति घंटा एवं 12–1 बजे के बीच 90.2 ली. प्रति घंटा रहती है। स्प्रेयर में इस्तेमाल टैंक की क्षमता 30 ली. है तथा यह स्प्रेयर 25 मी. × 25 मी. का क्षेत्र कवर करता है तथा इसकी उत्पादन लागत प्रति इकाईः 25000/-रु. है।

चित्र 1. सौर पी वी स्प्रेयर

सौर ऊर्जा चलित बुरकाव यन्त्र (सौर पीवी डस्टर) :

शुष्क खेती में पौधो को नाशीकीटों से बचाने के लिये कीटनाशक दवाओं के बुरकाव हेतु एक सौर बुरकाव यन्त्र बनाया गया है। इस उपकरण में सौर बैटरी के पैनल को सिर के ऊपर क्षैतिज अवस्था में रखने का प्रावधान है, जिससे काम करने वाले के सिर पर छाया भी हो जाती है और सौर उर्जा बिजली में परिवर्तित हो जाती है। इस संयन्त्र में उत्पन्न बिजली को बैटरी में भी संचित कर सकते हैं, जिससे इसको सुबह, देर षाम व बादल छाये रहने पर भी काम मे ले सकते है। खेतों में कीटनाशक पाउडर छिडकने के लिये बनाये गये अनूठे सोलर डस्टर मे सोलर सेल से उत्पन्न बिजली एक विशेष प्रकार के पंखे को तीव्र गति से चलाती है, जिससे पाउडर हवा के साथ स्वतः तेजी से बाहर निकल फसल पर फैलता रहता है। यह एक पर्यावरण हितैषी सुविधाजनक उपकरण है एवं इस सौर पीवी डस्टर के विभिन्न अवयवों के माप निम्नवत है: क्षमता: 0.075 हैक्टेयर/घंटा, सौर पैनल: 20 वाट पीक, वज़न 6.5 कि.ग्रा. तथा इसकी उत्पादन लागत प्रति इकाईः 8000/-रु. है।

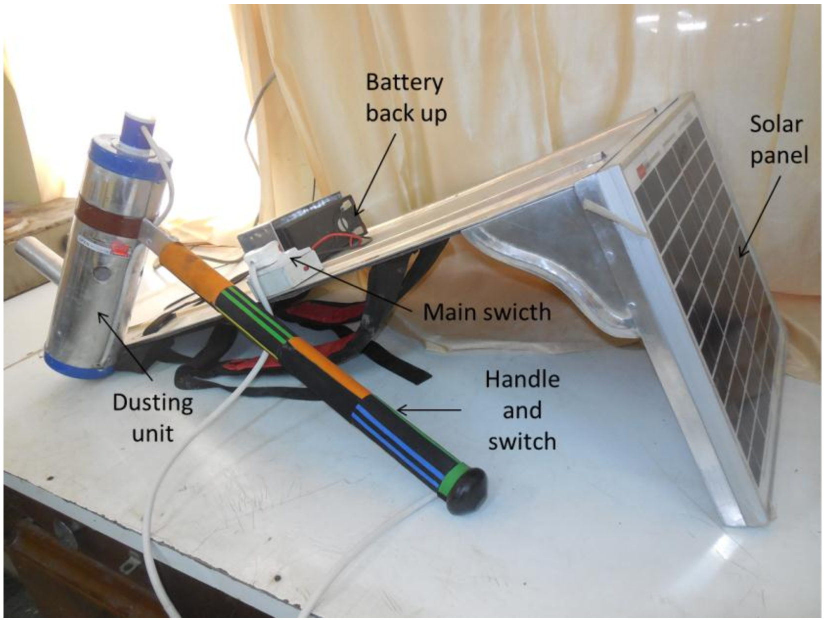

चित्र 2.सौर पीवी डस्टर

सारांश :

राजस्थान के थार मरूस्थल में पशु आहार उबालने, फल–फूल सब्जी को सुरक्षित रखने के लिए शीतल कक्ष, कृषि उत्पादों को सुखाने एवं पौधों में दवाई छिड़कने के लिए बिजली से चलने वाले उपकरण काम में लिए जाते है। शुष्क क्षेत्र में सौर ऊर्जा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, जिसका उपयोग पशु आहार उबालने एवं फल व सब्जियों को सुखाने के लिए किया जा सकता है। इन उपरोक्त समस्याओं को हल करने के लिए केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी) ने सौर ऊर्जा का उपयोग कर कम कीमत के पशु आहार सौर चूल्हा, उन्नत सौर शुष्कक, शीतल कक्ष एवं सौर पी वी स्प्रेयर सौर पीवी डस्टर बनाए गए हैं। काजरी का यही उद्देश्य है की काजरी में निर्मित सौर यन्त्रों का लाभ सीधे खेतों मे पहुंचा कर किसानों की आमदनी बढाई जा सके।

सौर ऊर्जा आधारित खाना बनानें एवं गर्म पानी के विभिन्न उपकरण

अनिल कुमार सिंह

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

थार मरूस्थल देश का एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ सबसे ज्यादा सौर ऊर्जा उपलब्ध रहती है और सबसे ज्यादा समय तक सूर्य उपलब्ध रहता है। इस क्षेत्र में वर्षा केवल 20 दिन तक ही हो पाती है और कभी–कभी तो नहीं भी होती। इसलिये इस क्षेत्र में सौर ऊर्जा का दोहन अधिक से अधिक हो सकता है। सौर ऊर्जा को खाना पकाने, कृषि उत्पादों को सुखाने, पानी गर्म करने, पशु आहार पकाने, पानी का आसवन करने, मोम पिंघालने, शीत भण्डारण आदि के उपयोग में लिया जा सकता है। इसके अलावा सौर ऊर्जा को बिजली में बदलकर पम्प चलाना, लाईटें जलाना, टी.वी. चलाना आदि प्रयोग में भी लिया जा सकता है।

सौर ऊर्जा आधारित विभिन्न उपकरण

1 : सौर चूल्हा

भारत में कुल ऊर्जा की खपत का 50 प्रतिशत सिर्फ भोजन पकाने में खर्च हो जाता है। लकड़ी की खपत करीब 400 कि. ग्रा. प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष है। गावों में उपलों को भी जलाया जाता है। अगर उपलों को जलाने के बजाय खाद के रूप में खेतों में प्रयोग करें तो कृषि उत्पादन बढ़ सकता है। अतः सौर चूल्हे ईधन बचाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

सौर चूल्हा दोहरी दीवार वाला बक्सा होता है। दीवारों के बीच में कुचालक भरा जाता है। ऊपर दो पारदर्शी काँच तथा ऊपर एक दर्पण लगा रहता है। इसे दक्षिण दिशा की तरफ रखा जाता है। भोजन जो पकाना हो उसको एल्युमिनियम के डब्बों में उचित मात्रा में पानी के साथ रखने से दो से तीन घण्टे में पक जाता है। सर्दियों में समय ज्यादा लगता है गर्मियों में कम से कम चार व्यंजन एक साथ बना सकते हैं। इन चूल्हों में घाट, राब, दाल, चावल, सब्जी, बाटी (रोटा) खींच इत्यादि पका सकते हैं। लेकिन चने जैसे अहारों को उबालने में समय अधिक लगता है। नरम भोजन जैसे चावल में समय कम लगता है (Table 1.)बाजार में उपलब्ध सौर चूल्हे के प्रयोग से 5 व्यक्तियों का भोजन एक साथ पका सकते हैं तथा भोजन में लगने वाली ऊर्जा की करीब आधी खपत को बचा सकते हैं। इस चूल्हे के प्रयोग से प्रतिवर्ष करीब 400 किलो ग्राम लकड़ी या तीन गैस (एल.पी.जी.) के सिलेण्डर की बचत कर सकते हैं।

चित्र 1 : सौर चूल्हा

Box dimension –

1100 mm × 330 mm × 100 mm

Absorber plate - 3′×10 ′′Double glass cover - 3′×10”

Reflector size - 3′ X 1′, Cost: Rs 5000/- with reflector

Table 1. Cooking performance of non-tracking cooker

Sr No.	Food material	Quantity (gm)	Water (gm)	Cooking time (minute)
1	rice	750	1500	100
2	pulse	500	1000	120
3	egg	30 number	1200	110
4	potato	1000	1600	130
5	kheer	200	1500	120
6	khichdi	500	1500	120
7	tea		2000	60
8	maggi	600	1200	60

2 : पशु आहार सौर चूल्हा

गांवो में पशु आहार (बांटा) पकाने के लिये बड़े पैमाने पर लकड़ी व गोबर को जलाया जाता है। बाजार में उपलब्ध सौर चूल्हा दिन में दो बार खाना बनाने में सक्षम है। इसलिए इसकी कीमत भी बहुत अधिक है। चूँकि पशुओं के लिए एक बार ही आहार (बांटा) को उबालना पड़ता है इसलिए यह सस्ता पड़ता है। पशुओं के खाद्य पदार्थ (बांटा) पकाने हेतु एक बड़े आकार का सौर कुकर रेखांकित, विकसित और अन्विक्षित किया गया। कुकर में स्थानीय रूप से उपलब्ध एवं सस्ती सामग्री चिकनी मिट्टी, गोबर, बाजरा या गेंहूँ का भूसा प्रयोग में आती है। व्यवसायिक सामग्री जो इसके निर्माण हेतु आवश्यक है वह है सादा कांच, लकड़ी, माइल्ड स्टील एंगल और शीट, एल्यूमिनियम सीट व पकाने के बर्तन आदि। इसके लिए जमीन पर गड्ढा

खोदते है। चिकनी मिट्टी, बाजरे की भूसी एवं गोबर का पेस्ट तैयार कर लेते है। इसे दो दिनों तक सूखने देते है। इसका 53 मिमी मोटा लेप गड्ढे की तली में बिछा देते है। चारों तरफ तथा तले में 150 मिमी लेप लगाते है। उसके ऊपर 24 गेज की जी आइ शीट, पेंदे में रखकर काले रंग का पेन्ट कर देते है। कोणीय लोहा एवं लकड़ी फ्रेम में दो काँच (4 मिमी. मोटा) फिट कर देते है। चार एल्यूमिनियम के बर्तनों को काले किए गए ढक्कन से ढक देते है। पशु आहार को पानी में मिलाकर बर्तन में रख देते है। पशु आहार चूल्हे के विभिन्न अवयवों के माप निम्नवत दिये गये है। गड्ढे का मापः 1980 मिमी × 760 मिमी × 100 मिमी, अवशोषक प्लेटः 6′ × 2′, दोहरे काँचः 6′3′′ × 2′3′′, परावर्तकः 6′3′′× 2′3′′ इसके द्वारा 5 पशुओं हेतु बाँटा (खाने की सामग्री) 10 किग्रा तक दिन के 3 बजे तैयार हो जाता है तथा यही समय पशु आहार (बांटा) का होता है एव प्रतिवर्ष लगभग 1059 कि.ग्रा. ईंधन की लकड़ी की बचत करता है जो कि 3611 मेगा जूल ऊर्जा के बराबर है। इसकी कीमत परार्वतक के साथ लगभग 12,500 है। पशु आहार सौर चूल्हे के उपयोग से प्रतिवर्ष 1442.64 किग्रा तक कार्बन डाइ आक्साइड की बचत कर सकते हैं।

चित्र 2 : पशु आहार सौर चूल्हा

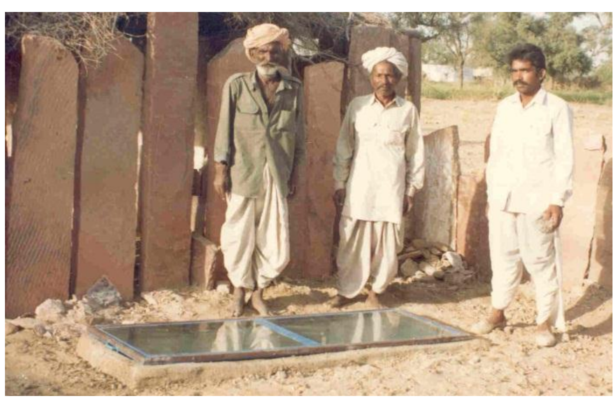

चित्र 3 : पशु आहार सौर चूल्हा

3 : संग्राहक सहित संयम टंकी वाला सौर जल तापक

गर्म जल का उपयोग नहाने, कपड़ों व बर्तन धोने आदि घरेलू कार्यो के लिये किया जाता है। देश में प्रचलित प्राकृतिक घुमाव वाले सौर जलतापक की कीमत अधिक होती है। साधारण आदमी इसे खरीदने में असमर्थ है अतः एक नये प्रकार का सौर जलतापक बनाया गया है जिसमें सौर संग्राहक व संचयन टंकी को एक ही में बना दिया गया है। यह टंकी संग्राहक का कार्य भी करती है तथा गर्म पानी को इकट्ठा भी रखती है।

यह सौर जल तापक आयताकार जस्ते लगे लोहे की टंकी का बना होता है जिसकी क्षमता 100 लीटर है। टंकी की ऊपरी सतह को श्याम पट्ट रंग से रंग दिया जाता है। टंकी को जस्ते लगे लोहे की चद्दर की बनी ट्रे में 100 मि.मी. कुचालक पदार्थ भरकर रख लिया जाता है। इसके ऊपर 4 मि.मी. मोटे दो साधारण पारदर्शी काँच लगाये जाते हैं। तापक को उचित कोण पर लोहे के एंगल स्टैण्ड पर खड़ा रखा जाता है जिससे शीत ऋतु में तापक की सतह पर अधिकाधिक सौर विकिरण गिरे। इस सौर जल तापक से प्रतिदिन 100 लीटर पानी 55 से 65 सेन्टीग्रेड तक शाम को प्राप्त किया जा सकता है तथा कुचालक ढ़क्कन से शाम को ढ़कने पर दूसरे दिन प्रातःकाल तक 40–42 सेन्टीग्रेड तक गर्म जल प्राप्त कर सकते हैं। इस जल तापक के प्रयोग से प्रतिदिन 4 किलोवाट विद्युत की बचत कर सकते हैं।

चित्र 4 : सौर जलतापक

4 : बहुउद्देशीय सौर यन्त्र

गर्म पानी की आवश्यकता सिर्फ जाड़ों में होती है और सौर शुष्कक जो कि फल व सब्जियां सुखाने के काम आता है सिर्फ उन दिनों में प्रयोग में आता है जब कि फल व सब्जियां उपलब्ध हो। अतः

सौर उपकरण वर्ष भर काम में नही आता है तथा अलग अलग प्रयोग के लिए अलग अलग उपकरण की आवश्यकता होती है। इन सबको देखते हुए एक ऐसा उपकरण बनाया गया जिससे गर्म पानी, तथा फल व सब्जियां सुखा सकते है। इस श्रृंखला में एक संयत्र सौर चूल्हा मय शुष्कक है, जिसके द्वारा परिवार के 5 सदस्यों का खाना बना सकते हैं। एक ही यंत्र से दो या उससे अधिक कार्य करने हेतु बहुउद्धेशीय सौर संयत्र भी काजरी में बना लिये गये हैं। इनमें एक सौर शुष्कक मय चूल्हे से भोजन भी बन सकता है और फल सब्जियों को भी सुखाया जा सकता है। एक अन्य संयत्र सौर जलतापक मय शुष्कक से पानी भी गर्म किया जा सकता है। इस प्रकार एक **बहुउद्धेशीय** संयत्र से पानी भी गर्म हो सकता है, भोजन भी बन सकता है और फल सब्जियों को भी सुखाया जा सकता है। इनके उपयोग से घरेलू कार्यो में खर्च होने वाले ईंधन की बचत की जा सकती है।

चित्र : 5 बहुउद्धेशीय सौर संयत्र

शीतलता के सिद्धान्त पर आधारित कूल चैम्बर

अनिल कुमार सिंह

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

पानी के वाष्पीकरण द्वारा शीतलता के सिद्धान्त पर आधारित कूल चैम्बर

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर ने एक बहुत सस्ती घरेलू शीतल तकनीक का विकास किया है जो रेगिस्तान जैसे क्षेत्रों में सब्जी एवं फलों का लघु समय के लिये आसानी से संरक्षण कर सकती है। इस नई शीतल विधि की विशेषता यह है कि इसमें न तो बिजली की कोई आवश्यकता होती है और न ही इसे बनाने में किसी विशेष निर्माण सामग्री की जरूरत पड़ती है गाँव में ही उपलब्ध निर्माण सामग्री से इसे आसानी से बनाया जा सकता है।

यह नई शीतल विधि पानी के वाष्पीकरण द्वारा शीतलता के सिद्धान्त पर कार्य करती है यह विधि गर्मियों में काफी उपयोगी है, विशेषकर ऐसे क्षेत्रों में जहाँ पर हवा में आर्द्रता कम हो। राजस्थान में अधिकतर जगहों पर गर्मियों के दिनों में आर्द्रता कम ही रहती है। पानी के वाष्पीकरण द्वारा शीतलता से ठण्डक पैदा करना आर्द्रता पर निर्भर करता है। जैसे–जैसे आर्द्रता कम होती है ठंडक का प्रभाव बढ़ता चला जाता है। ज्ञात रहे कि डेजर्ट कूलर भी इसी वाष्पीकरण द्वारा शीतलता के सिद्धान्त पर कार्य करता है, अन्तर इतना है कि डेजर्ट कूलर में बिजली की आवश्यकता होती है और इसे घरों को ठण्डा करने के लिये प्रयोग में लिया जाता है जबकि इस विधि (कूल चेम्बर) में बिजली की कोई आवश्यकता नहीं होती और सब्जी, फलों, बचा हुआ खाना एवं दूध आदि को ठण्डा रखकर उनका लघु समय के लिये संरक्षण किया जाता है।

यह नई शीतल विधि एक दोहरी ईट की दीवार से बनाया गया छोटा चैम्बर है। इस दोहरी ईट की बनी दीवार के बीच पानी (दिन में एक बार) भर देते हैं। यह पानी ईंट की बाहरी दीवार की सतह से वाष्पीकरण द्वारा चैम्बर के अन्दर के तापमान को घटा देता है जैसे मटके में पानी का तापमान स्वतः ही समय के साथ घटता जाता है। कूल चैम्बर की अन्दर वाली ईंट की दीवार से पानी का वाष्पीकरण होने से चैम्बर में आर्द्रता काफी अधिक (80–90 प्रतिशत तक) बनी रहती है जबकि खुली जगह में आर्द्रता लगभग 50 प्रतिशत या इससे भी कम रहती है। अधिक आर्द्रता और तापमान कम होने के कारण कूल चैम्बर में लघु समय के लिये फलों एवं सब्जियों का संरक्षण किया जाता है (चित्र 1)। इस संस्थान में पिछले दो सालों से कुछ सब्जियों जैसे टमाटर, मिर्च, बैगंन, पत्ता गोभी, गाजर, भिण्डी, फूलगोभी, आलू और दूध इत्यादि का गर्मी एवं सर्दी के दिनों में सफलतापूर्वक संरक्षण किया है। इस तरह की यह नई शीतल विधि किसानों और सब्जी विक्रेताओं के लिये एक वरदान है। सब्जी सही समय पर खेतों से निकास नहीं होने तथा बाजार तक

नहीं पहुँच पाने के कारण खराब हो जाती है। किसान को उचित मूल्य नहीं मिलने पर सब्जी का अल्प समय के लिये सरंक्षण करना पड़ता है इससे किसान को दोहरी मार झेलनी पड़ती है पहली सब्जी का कम भाव मिलना दूसरा संरक्षण के समय सब्जी में होने वाला नुकसान। बचा हुआ खाना एवं दूध आदि भी अधिक गर्मी से खराब हो जाते हैं। इस शीतल चैम्बर के प्रयोग से किसान सब्जी का लघु समय (4–5 दिन) के लिये सुरक्षित संरक्षण कर सकते हैं तथा अच्छा भाव मिलने पर सब्जी का विक्रय किया जा सकता है।

मरू वातावरण में वायुमण्डल का तापमान सामान्य से अधिक होता है। उससे फल–फूल सब्जियों से नमी कम होती जाती है। परिणामस्वरूप उनके उपभोग का समय भी कम हो जाता है। अतः सब्जियाँ जल्दी से खराब हो जाती हैं। यदि इन भोज्य पदार्थो को शीतल यंत्रों द्वारा ठण्डा रखा जाये तो विद्युत एवं अन्य ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। ये यंत्र मंहगे और रख–रखाव की आवश्कता रखने वाले होते हैं।गॉवों में उनकी उपलब्धता भी नगण्य सी होती है। इन्ही तथ्यों को ध्यान में रखते हुए एक वाष्पीकृत शीतल कक्ष का निर्माण किया गया है। यह शीतल कक्ष तापीय इंटों एवं सीमेन्ट से निर्मित है। यह दो दोहरी इंटों की दीवारों से बना कक्ष है। इन दो दीवारों के बीच की जगह में मोटी कणों वाली मिट्टी एवं जल भरा जाता है। इस कक्ष के ऊपर एक जालीदार ढक्कन लगाया जाता है। इस शीतल कक्ष में गर्मियों में $12\text{-}14^0$ सेन्टीग्रेड तक जबकि सर्दियों में $6\text{-}8^0$ सेन्टीग्रेड तक तापमान कम किया जा सकता है तथा आपेक्षित आद्रता 90 प्रतिशत तक रहती है। इस वातावरण में फल–फूल सब्जियों को बिना वजन घटे एवं रंग रूप सहित साफ व स्वच्छता से रखा जा सकता है। इस शीतल कक्ष की कुल कीमत रूपये 6000 मात्र आती है।

इस शीतल कक्ष की मुख्य विशेषताएँ :–

1. यह फल–फूल एंव सब्जी की उपयोग की अवधि बढ़ाती है।
2. शीतल कक्ष बनाने की संरचना सरल है। इसे ग्रामीण क्षेत्र में उपलब्ध सामानों से बनाया जा सकता है।
3. इसका रख–रखाव खर्च नगण्य है।
4. यह पर्यावरण के अनुकूल है।
5. इससे फल–फूल सब्जी की अच्छी कीमत प्राप्त की जा सकती है।

चित्र 1. शीतल कक्ष

इसी तरह सब्जी विक्रेता भी कूल चैम्बर का उपयोग कर सब्जियों को खराब होने से बचा सकते हैं और लाभ में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं। कूल चैम्बर में 4–5 दिन तक प्रायः सभी प्रकार की सब्जियाँ ताजी बनी रहती हैं जिससे बाजार में इनकी कीमत अच्छी मिल सकती है।

शुष्क क्षेत्र में भूमि उत्पादकता बढ़ाने के लिए कृषि–वोल्टाइक प्रणाली

प्रियव्रत सांतरा

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

विकास के साथ तालमेल रखने के लिए जीवन के हर क्षेत्र और कृषि में भी ऊर्जा उपयोग में वृद्धि हुई है, लेकिन तेजी से घटने वाले जीवाश्म ईंधन जलने के कारण ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस संदर्भ में, हमें ऊर्जा के अधिक अक्षय रूपों का उपयोग करने और उपयोग करने की आवश्यकता है, विशेष रूप से सौर ऊर्जा जो देश के अधिकांश हिस्सों में भरपूर मात्रा में है। भारत में लगभग 14.8 प्रतिशत ऊर्जा उत्पादन नवीकरणीय स्रोतों के माध्यम से मिलती है जैसे पवन, सौर, बायोमास इत्यादि, जबकि कोयले ऊर्जा उत्पादन का मुख्य स्रोत है एवं कुल उत्पादन का लगभग 60 प्रतिशत योगदान देता है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान नवीकरणीय ऊर्जा की क्षमता में काफी वृद्धि हुई है, जैसे 2011–12 में 24,914 मेगावॉट से दिसंबर 2016 के अंत तक 50,068 मेगावाट तक वृद्धि हुई एवं इस अवधि के दौरान वार्षिक वृद्धि दर 17.8 प्रतिशत थी। पवन ऊर्जा का देश में कुल नवीकरणीय ऊर्जा स्थापना में अधिकतम योगदान है एवं इसकी कुल स्थापन क्षमता 28,700 मेगावाट है जो कुल नवीकरणीय ऊर्जा स्थापना की 57 प्रतिशत है जबकि सौर पीवी स्थापना केवल 9,013 मेगावाट (18 प्रतिशत) है। कृषि क्षेत्र में, ऊर्जा का उपयोग पानी की सिंचाई के लिये, विभिन्न मशीनीकृत कृषि उपकरणों को चलाने के लिये एवं खाद्य पदार्थों की फसल प्रसंस्करण के संचालन के लिए किया जाता है। कृषि से खाद्य उत्पादन प्रणाली की प्रगति के साथ भविष्य में एक प्रौद्योगिकी संचालित कृषि प्रणाली के लिये, कृषि में ऊर्जा उपयोग में तेजी से वृद्धि हुई है। देश में कृषि क्षेत्र में ऊर्जा खपत का हिस्सा कुल ऊर्जा खपत की लगभग 7–8 प्रतिशत है और अगले 20 वर्षों के खाद्य उत्पादन लक्ष्य को पूरा करने के लिये ऊर्जा उपयोग में और वृद्धि की उम्मीद है एवं फिलहाल खेत में ऊर्जा उपयोग की दर 1.6 किलोवाट प्रति हेक्टेयर है जो भविष्य में 2.5 किलोवाट प्रति हेक्टेयर होने की उम्मीद है।

मानव सभ्यता के लिए ऊर्जा और भोजन दो मुख्य आवश्यकताएं हैं; हालांकि इन दो संसाधनों की मांग तेजी से बढ़ रही है। ऊर्जा और खाद्य उत्पादन की भविष्य की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, कृषि–वोल्टाइक प्रणाली को एक भूमि क्षेत्र में एक ही समय में सौर पैनलों और फसलों को जोड़ने वाली मिश्रित प्रणालियों के रूप में प्रस्तावित किया जाता है। वर्ष 2022 तक 100 गीगावाट ऑन–ग्रिड पीवी स्थापना के राष्ट्रीय लक्ष्य में योगदान के लिए कृषि–वोल्टाइक प्रणाली के माध्यम से बिजली उत्पादन एवं कृषि उत्पादन के लिए खेत में सौर पीवी मॉड्यूल स्थापित किए जा सकते हैं। कृषि–वोल्टाइक प्रणाली द्वारा फसल उत्पादन, पीवी आधारित बिजली उत्पादन और वर्षा जल संचयन एक कृषि इकाई पर किया जा

सकता है। कृषि–वोल्टाइक प्रणाली उन किसानों के खेत में स्थापित की जा सकती है जहां सौर विकिरण बहुत मात्रा में उपलब्ध है और स्थानीय ग्रिड नेटवर्क किसान के खेत के पास मौजूद है। देश के बाकी हिस्सों की तुलना में पश्चिमी राजस्थान में सौर विकिरण (5.5–6.0 किलोवाट प्रति वर्ग मिटर प्रतिदिन) की भरपूर उपलब्धता के कारण भारत में शुष्क पश्चिमी राजस्थान और गुजरात में कृषि–वोल्टाइक प्रणाली की के बहुत अच्छे अवसर है।

भविष्य में कृषि–वोल्टाइक प्रणाली के महत्व को ध्यान में रखते हुए, 105 किलोवाट ऐसी प्रणाली भा.कृ.अ.प. –केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसन्धान संस्थान जोधपुर में डिजाइन और स्थापित की गई है। कृषि–वोल्टाइक प्रणाली के पीवी मॉड्यूल 49.84 रुपये प्रति डब्ल्यूपी की कीमत दर पर स्थापित किए गए हैं, इस प्रकार जोधपुर में 105 किलोवाट सिस्टम के लिए स्थापना की लागत रुपये 52,33,200 थी। कृषि–वोल्टाइक प्रणाली तीन प्रयोगात्मक डिज़ाइनों के साथ तीन अलग–अलग ब्लॉक में स्थापित की गई है, जिनमें से प्रत्येक 36 मीटर × 36 मीटर क्षेत्र है। ये हैं (क) एक पंक्ति पीवी मॉड्यूल के पीवी सरणी और सरणी के बीच 3 मीटर अंतरण (ख) दो पंक्तियों पीवी मॉड्यूल के पीवी सरणी और सरणी के बीच 6 मीटर अंतरण और (ग) तीन पंक्ति पीवी मॉड्यूल के पीवी सरणी और 9 मीटर अंतरण के बीच सरणियों। जोधपुर में 34 वाटप्रति वर्ग मीटर की भूमि आवश्यकता के साथ पीवी मॉड्यूल स्थापित किए गए हैं। इस प्रकार, 1 हेक्टेयर भूमि क्षेत्र में 340 किलोवाट क्षमता की कृषि–वोल्टाइक प्रणाली स्थापित की जा सकती है या 1 एकड़ भूमि में 136 किलोवाट स्थापित किया जा सकता है। यदि दो पीवी मॉड्यूल के बीच कोई अंतर नहीं है तो अधिकतम 1 हेक्टेयर भूमि क्षेत्र में अधिकतम 500 किलोवाट की कृषि–वोल्टाइक प्रणाली स्थापित की जा सकती है।

कृषि–वोल्टाइक प्रणाली में फसल की खेती के लिए उपलब्ध जगह है दो पीवी सारणीयों के वीच अंतरस्थान क्षेत्र और पीवी मॉड्यूल के नीचे की क्षेत्र जो कुल ब्लॉक क्षेत्र का क्रमशः 49 प्रतिशत और 24 प्रतिशत है। कृषि–वोल्टाइक प्रणाली के लिए ऐसे फसलों को चुना जाता है जो कम ऊंचाई वाली फसलों जैसे 50 सेमी से कम हो और जो छाया की कुछ हद तक सहन करती है और कम मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। मूंग (*विग्ना रेडियटा),* मोठ *(विग्ना एकोनीटिफोलिया)* और ग्वार *(साइमोप्सिस टेट्रैगोनोलोबा)* खरीफ सीजन के दौरान कृषि–वोल्टाइक प्रणाली के अंतराल क्षेत्रों में उगायी जा सकते हैं जबकि इसबगोल *(प्लांटैगो ओवाटा),* जीरा *(क्यूमिनियम साइमिनियम)* और चना *(सीसर एरियाटिनम)* रबी मौसम के दौरान उगाया जा सकते हैं(चित्र 1)। औषधीय पौधों जैसे ग्वार पाठा *(एलोवेरा),* सोनामुखी *(कैसिया एंगस्टिफोलिया)* और शंखपुष्पी *(कन्वोलवुलस प्लुरिकालिस)* भी कृषि–वोल्टाइक प्रणाली में उगायी जा सकते है। कृषि–वोल्टाइक प्रणाली में पीवी मॉड्यूल के नीचे की क्षेत्र के लिए संभावित फसलें है हल्दी (*कुकुमा लंगा*)

प्याज *(एलियम सेपा)*, लहसुन *(एलियम सैटिवम)*, मतिरा (*सिट्रुलस लानाटस)*, काकरी *(कुकुर्बिटा पेपो)*, कचरी *(कुकुमिस कॉलोसस)* और पत्तेदार सब्जियां जैसे पालक, धनिया, पुदिना आदि।

चित्र 1: भा.कृ.अ.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसन्धान संस्थान जोधपुर में कृषि–वोल्टाइक प्रणाली के अंतराल क्षेत्र में बेंगन की फसल

पीवी मॉड्यूल की शीर्ष सतह से वर्षा जल एकत्र करने के लिए और इसे भूमिगत जल भंडारण टैंक में संचय करने के लिए 105 किलोवाट कृषि–वोल्टाइक प्रणाली के साथजल संचयन प्रणाली की डिजाइन भी विकसित किया गया है। जोधपुर में एक वर्ष में पीवी मॉड्यूल की शीर्ष सतह से 1.5 लाख लीटर बारिश का पानी की संचय करने की क्षमता है।

चित्र 2: भा.कृ.अ.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसन्धान संस्थान जोधपुर में स्थापित किये गये कृषि–वोल्टाइक प्रणाली में वर्षा जल संरक्षण

जोधपुर में 105 किलोवाट क्षमता की कृषि–वोल्टाइक प्रणाली प्रतिदिन कम से कम 420 किलोवाट–घन्टा बिजली उत्पन्न करेगी। पीवी उत्पन्न बिजली की बिक्री से आय प्रति वर्ष लगभग रुपये 7,60,000 होगी (विद्युत शुल्क माना जाता हैः 5 रुपये प्रति किलोवाट)। कृषि–वोल्टाइक प्रणाली के भीतर कृषि गतिविधि से, खरीफ सीजन के दौरान मूंग से रुपये 8235 प्रति एकड़ की संभावित आय और रबी मौसम के दौरान इसबगोल से रुपये 23,339 प्रति एकड की संभावित आय हो सकती है एवं यदि मूंग–इसबगोल फसल चक्र आपनाये जाये तो कुल आय प्रति वर्ष रुपये 31,574 प्रति एकड होगी। मूँग–जीरा फसल चक्र के मामले में, प्रति वर्ष कुल आय रुपये 30,065 प्रति एकड होगी।

कृषि–वोल्टाइक प्रणाली का प्रमुख संभावित लाभ कृषि भूमि से पीवी उत्पन्न बिजली के साथ–साथ फसल उपज की बिक्री से बढ़ी हुई आय है और इस प्रकार कृषि आय को दोगुना करने में योगदान देता है। अन्य लाभ में फसल की खेती के लिए दुर्लभ वर्षा जल संसाधनों के उपयोग के साथ–साथ पीवी मॉड्यूल की सफाई, भूमि समकक्ष अनुपात में सुधार, ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में कमी, इष्टतम पीवी उत्पादन के लिए सूक्ष्म आबहवा में सुधार और शुष्क भूमि आदि में फसल उत्पादन आदि शामिल हैं। इसलिए, कृषि–वोल्टाइक प्रणाली में खाद्य–ऊर्जा–जल सुरक्षा प्रदान करके भारतीय कृषि में एक प्रबल संभावना है और भविष्य में जलवायु स्मार्ट कृषि के लिए यह अच्छा विकल्प हो सकता है।

छत पर सौर ऊर्जा उत्पादनः एक विश्लेषण

प्रियब्रत सांतरा

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

छत पर सौर ऊर्जा

2022 के अंत तक 1 गीगावाट के राष्ट्रीय सौर मिशन लक्ष्य के अनुसार, 40,000 मेगावाट छत के शीर्ष पीवी के रूप में स्थापित किया जाना चाहिए। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए, आवासीय भवनों, सरकारी कार्यालय भवन, रेलवे स्टेशनों आदि में पीवी मॉड्यूल स्थापित करने के लिए पहल की गई हैं। भारत के कुछ शहरों में, नेट मीटरींग सिस्टम आवासीय छत के शीर्ष से जुड़े हुए हैं जिसमें ऊर्जा का उपभोग और उत्पादन नेट मीटर द्वारा निगरानी की जाती है और तदनुसार ऊर्जा शुल्क लिया जाता है। छत के शीर्ष पीवी सिस्टम के मुख्य घटक इस प्रकार हैंः

- **सौर पीवी मॉड्यूल** : इसेपीकवैट (डब्ल्यूपी) द्वारा परिभाषित किया जाता है, जो पूर्ण विकिरण के दौरान मॉड्यूल द्वारा उत्पन्न ऊर्जा की मात्रा को इंगित करता है। सौर पीवी की विभिन्न क्षमता जैसे 0.5 किलोवाट से 10 किलोवाट तक छत पर स्थापित किया जा सकता है और छत में उपलब्ध छायामुक्त खाली जगह पर निर्भर करता है। सैद्धांतिक रूप से, 1 किलोवाट सिस्टम के लिये 10–14 वर्ग मीटर खुलीछत की जगहों की आवश्यकता होती है, हालांकि, कुछ छत पर इससे कम जगह में 1 किलोवाट सिस्टम स्थापित किए गए हैं, जैसे 8–10 वर्ग मीटर प्रति किलोवाट की दरपर। लगभग 100 वर्ग मीटर की छत पर, 6 किलोवाट सिस्टम स्थापित किए जा सकते हैं।
- **इन्वर्टर या पावर कंडीशनिंग यूनिट** : छत पर सौर उर्जा प्रणाली का दूसरा मुख्य घटक इन्वर्टर या पावर कंडीशनिंग इकाई है। सिस्टम में आगे पी.डब्लू.एम. या एम.पी.पी.टी. सौर चार्ज नियंत्रक, रिवर्स फ्लोडायोड और प्राथमिकता शुल्क नियंत्रक होता है। पहले, ये उप घटक अलग से स्थापित होते हैं। हालही में, इन सभी उप घटकों को एक इकाई में एकीकृत किया गया है, जिसे पावर कंडीशनिंग यूनिट (पीसीयू) के नाम से जाना जाता है। यह बैटरी को सौर या ग्रिड के माध्यम से चार्ज करने की सुविधा प्रदान करता है। पीसीयू लगातार बैटरी वोल्टेज, सौर ऊर्जा उत्पादन और भार की स्थिति पर नज़र रखताहै। बिजली के निरंतर उपयोग के कारण, यदि बैटरी वोल्टेज एक सेटस्तर से नीचे चला जाता है, तो पीसीयू स्वचालित रूप से लोड को ग्रिडपावर में स्थानांतरित कर देगा और साथ ही चार्ज भी करेगा। एक बार बैटरियों को प्रीसेट स्तर पर चार्ज करने के बाद, पीसीयू सिस्टम को ग्रिड पावर से काट देता है और बैटरी फिर से सौर उर्जा से चार्ज होने लगते है एवं लोड बैटरी बैंक से चलना शुरु कर देता है। पीसीयू हमेशा सौर ऊर्जा को वरीयता देता है और

ग्रिडपावर का उपयोग तब करेगा जब सौर ऊर्जा या बैटरी लोड की आवश्यकता को पूरा करने में असमर्थ है।

- **बैटरी बैंक** : यह भार का समर्थन करने के लिए सौर पीवी सिस्टम से जुड़े बैटरी की एक श्रृंखला है। बैकअप की आवश्यकता के आधार पर, बैटरी का आकार डिज़ाइन किया जा सकता है।
- **ऊर्जा मीटर या नेटमीटर** : यह सौर पीवी सिस्टम और ग्रिड नेटवर्क से खपत ऊर्जा की निगरानी करने के लिये आवश्यक है।
- **लागत :** आमतौर पर, छत में 1 किलोवाट सौर उर्जा प्रणाली सहित सभी घटकों की लागत रुपये 60,000–70,000 है।

छत के शीर्ष सौर पीवी स्थापना के प्रमुख मापदण्ड

- दक्षिणी तरफ छाया मुक्त छत क्षेत्र।
- 1 किलोवाट सिस्टम के लिये 14–16 वर्ग मीटर छत की आवश्यकता होती है।
- सौर उर्जा प्रणाली का वजन है 40 किलो प्रति वर्ग मीटर।
- सुबह 9:00 पूर्वाह्न से शाम 4:00 बजे तक सौर विकिरण उपलब्ध होना चाहिये।
- पैनल के झुकाव कोण को ठीक करने के लिए स्थान का अक्षांश महत्वपूर्ण कारक है।
- उत्तरी गोलार्ध में सर्दी संक्रांति पर सुबह में सूर्य का उंचाई पैनलों के अंतर का निर्धारण में महत्वपूर्ण है।
- यदि इन सभी उपरोक्त मापदण्ड अनुकूल हैं, तो 1 किलोवाट सौर उर्जा प्रणाली प्रतिदिन 4–5 किलोवाट विद्युत ऊर्जा की इकाई उत्पन्न करती है बशर्ते आकाश खुला और स्पष्ट हो।

काजरी, जोधपुर में छत पर स्थापित किये गये सौर ऊर्जा प्रणाली

काजरी जोधपुर में छत पर 2 किलोवाट क्षमता की ऑफ–ग्रिड सौर पीवी प्रणाली स्थापित की गई है (चित्र 1)। इस प्रणाली में 250 वाट क्षमता की 8 पली क्रिस्टालाइन पीवी मॉड्यूल (1.64 मी. × 1 मी.), 48 वोल्ट, 300 एम्पियर–घन्टा के बैटरी बैंक जिनमें आठ 12 वोल्ट 150 एम्पियर–घन्टा की ट्यूबलर लीड एसिड बैटरी है, एवं पावर कंट्रोल यूनिट हैं। बिजली उत्पादन और इसके उपयोग पर नजर रखी गई है और यह देखा गया है कि प्रतिदिन भवन की लगभग 5 किलोवाट बिजली खपत सौर पीवी प्रणाली के माध्यम से मिलती है। वादल की छाया के दौरान या रात के समय के उपयोग के लिये, सिस्टम में बैटरी से लगभग 4 घंटे तक बिजली के भार का समर्थन करने की क्षमता है।

चित्र 1: काजरी जोधपुर में छत पर स्थापित किये गये सोलर सिस्टम

सिंचाई के लिए सौर फोटोवोल्टाइक (पीवी) पम्पिंग पद्धति

रंजय कुमार सिंह एवं प्रियब्रत सांतरा

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

जल मानव जाति के लिए जीवन का प्राथमिक स्त्रोत है और फसल उत्पादन के लिए सबसे जरूरी आवश्यकताओं में से एक है। फसलों को सिंचाई देने के लिए पानी की माँग बढ़ रही है, अतः कृषि में सतत उत्पादन के लिए उपयुक्त चरणों में फसलों को सिंचित करना बेहद महत्वपूर्ण है। यहां तक कि वर्षा की स्थिति में भी लक्षित उपज प्राप्त करने के लिए, लंबी सूखी अवधि के दौरान जीवन रक्षक सिंचाई फसल के लिए फायदेमंद होता है।

माना जा रहा है कि अगले तीन दशकों में धरती से ऊर्जा के जीवाश्म श्रोत खत्म होने शुरू हो जायेंगे। जीवाश्म ईंधन से तात्पर्य कोयला, तेल गैस और उन प्राकृतिक तत्वों से है जिसका हम ऊर्जा के लिए प्रचुरता से इस्तेमाल करते हैं। इसलिए पूरी दुनियाँ इन दिनों वैकल्पिक ऊर्जा के श्रोत तलाशने में लगी है और इसी के मद्देनजर पूरी दुनिया में प्रचुर तौर पर उपलब्ध सौर ऊर्जा के इस्तेमाल की शुरुआत हो चुकी है।

सूर्य से प्रचुर मात्रा में प्रकाश और ताप प्राप्त होता है जिसे सौर ऊर्जा कहा जाता है। पूर्णतः नवीकरणीय, अक्षय, विश्वसनीय और प्रदूषण रहित होने के कारण आज इसका महत्व काफी बढ़ गया है। सौर ऊर्जा को सौर फोटोवोल्टाइक प्रणाली (एसपीवी) से सीधे विद्युत ऊर्जा में बदला जा सकता है। पारंपरिक सौर सैल सिलिकॉन से तैयार किए जाते हैं जो सामान्यतः सर्वाधिक सक्षम होते हैं। हम सभी जानते हैं कि पारम्परिक तौर पर बिजली का उत्पादन तेल या प्राकृतिक गैस को जला कर किया जाता है। इससे कार्बन–डाई–आक्साइड, सल्फर–डाई–आक्साइड और नाइट्रोजन आक्साइड जैसी जहरीली गैस पैदा होती हैं और पर्यावरण पर बुरा असर डालती हैं। सौर ऊर्जा का सबसे बड़ा फायदा है कि यह एक स्वच्छ ऊर्जा है और जिससे पयार्वरण को सबसे ज्यादा राहत मिलती है।

देश में सिंचाई के लिए करीब 2.3 करोड़ पम्प लगे हुए हैं। अनुमान है कि इसमें से 1.6 करोड़ के लिए बिजली का इस्तेमाल होता है जबकि बाकी 0.7 करोड़ को चलाने में डीजल का। दोनों को मिलाया जाए तो देश में बिजली उत्पादन का पांचवां हिस्सा सिंचाई के लिए इस्तेमाल होने वाले पम्प करते हैं। डीजल से पम्प चलाना खासा महंगा तो है ही, बिजली की उपलब्धता, खासकर सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में, को देखते बिजली वाले पम्प पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। सौर ऊर्जा से चलने वाले पम्प सरल और टिकाऊ तो होते ही हैं साथ ही इन पम्पों के रखरखाव का खर्च डीजल या बिजली से चलने वाले पम्प से कहीं कम

है। ऐसे पम्प डीसी और एसी दोनों ही विकल्प के साथ उपलब्ध होते हैं। ऐसे पम्प जमीन के ऊपर रखकर भी चलाए जा सकते हैं या फिर जमा पानी के भीतर रख कर भी। वैसे सबसे ज्यादा पम्प जमीन के ऊपर रखकर ही चलाए जाते हैं। इन पम्पों के जरिए बोरवेल से पानी खींचा जा सकता है, तालाब से पानी खींचा जा सकता है या फिर किसी और पानी के भंडारण से। आमतौर पर ये पम्प 1–5 हार्सपावर के होते हैं वैसे कहीं–कहीं ज्यादा क्षमता वाले पम्प का भी इस्तेमाल होता है।

सौर ऊर्जा की उपलब्धता और लागत

कृषि में सौर ऊर्जा के इस्तेमाल की संभावनाओं को लेकर सबसे अहम तथ्य ये है कि देश के कई हिस्सों में औसतन 250 दिन ऐसे होते हैं जब दिन भर सूरज की रोशनी मिलती है। यदि हम उत्तर–पश्चिमी भारत की बात करें तो इस क्षेत्र में सौर ऊर्जा की भरपूर मात्रा प्राप्त होती है। राजस्थान राज्य में सोलर ऊर्जा की अपार सम्भावना है और यहाँ वर्ष में तकरीबन 300–325 दिनों में सूरज की रोशनी प्रचुर मात्रा में मिलती है। उदाहरण के लिए, जोधपुर में क्षैतिज सतह पर औसत अपरिवर्तन 6 किलोवाट मीटर $^{-2}$ दिन $^{-1}$ है। इस ऊर्जा का उपयोग सिंचाई उद्देश्य के लिए कृषि खेत में पंप के संचालन के लिए किया जा सकता है। हाल ही में, सौर पीवी पंप आधारित सिंचाई प्रणाली में, विशेष रूप से जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय सौर मिशन (जेएनएनएसएम) के कार्यान्वयन के बाद, किसानों की दिलचस्पी और बढ़ी है।

सौर ऊर्जा को लेकर अब तक ये समस्या रही कि इसकी लागत काफी ज्यादा थी। लेकिन अब स्थिति बदल चुकी है और उत्पादन लागत में कमी देखने को मिल रही है। बाजार शोध के मुताबिक, दो हार्स पावर वाला पम्प लगाने की लागत करीब दो लाख रुपये आती है। यदि डीजल की मदद से कोई इस पम्प के जरिए पाँच एकड़ जमीन की सिंचाई करे तो उसके लिए सालाना खर्च 70 हजार रुपये होगा। वहीं सौर ऊर्जा का इस्तेमाल करें तो लागत के अलावा कोई और खर्च नहीं और आसानी से 3 साल में पूरी लागत की वसूली हो जाएगी।

सरकार राज्य नोडल एजेंसियों और नाबार्ड के माध्यम से सिंचाई और पेयजल के लिए सौर पंप लगवा रही है। एमएनआरई राज्य नोडल एजेंसियों के माध्यम से सिंचाई उद्देश्यों के लिए सौर पम्प लगाने के लिए किसानों को 30 प्रतिशत की पूंजी सब्सिडी का भी प्रावधान किया गया है। राज्य सरकार भी अपने स्वयं के कोष से अतिरिक्त सब्सिडी दे सकती है।

सौर जल पंप ऑपरेशन के सिद्धांत

सौर पंपिंग सिस्टम के पीवी मॉड्यूल के ऊपर जैसे ही सौर विकिरण प्राप्त होता है, डीसी विद्युत धारा उत्पन्न होती है। डीसी पंप सीधे पीवी सारणी से जुड़ा होता है जबकि एसी पंप के लिए डीसी–एसी इनवर्टर की आवश्यकता होती है। पंप प्रकार और विशेषताओं के अनुसार, पीवी मॉड्यूल के सारणी श्रृंखला

या समानान्तर कनेक्शन में संयुक्त होते हैं। एक बार, पंप के लिए पर्याप्त वोल्टेज और एम्पीयर की आपूर्ति होते ही, यह सतही जलाशय या कुओं से पानी निकालती है। मॉड्यूल दक्षिणमुखी तथा स्थानीय अक्षांश पर झुका होता है। एक सौर पंप प्रणाली में निम्नलिखित घटक शामिल होते हैं :

1. सौर पी.वी. सारणी : यह पी.वी. मॉड्यूल का एक ऐसा सेट है जो श्रेणी और समानान्तर समायोजन में जुड़े होते हैं।

2. पंप नियत्रंक : यह एक इलेक्ट्रोनिक यत्रं है जो लीनियर करंट को बढ़ाता है। यह एक उच्च्तम पावर प्वाइटं ट्रेक्किंग नियत्रंक (एम.पी.पी.टी) और एक इनवर्टर से सुसज्जित होते हैं। एम.पी.पी.टी सौर विकिरण के आधार पर पंप का नियत्रंण करता है आरै इनवर्टर उपयुक्त आवृति के साथ डीसी विद्युत को एसी विद्युत में परिवर्तित करता है।

3. पंप ब्लॉक : यह मोटर और पंप से बना होता है और दोनों एक ही ब्लॉक में होते हैं। एक सौर फोटोवोल्टाइक सारणी सूर्य के प्रकाश से सीधे बिजली उत्पन्न करती है। यहाँ पर सौर विकिरण डीसी विद्युत मे परिवर्तित होता है जो बाद में एसी विद्युत में बदलता है और पंप चलाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

सौर पंप प्रणाली का स्थापन चित्र 1 में दिखाया गया है

चित्र 1: सौर पीवी पंपिंग प्रणाली

पीवी पैनल का आकार पानी खींचने के लिए पंप की क्षमता पर निर्भर करता है। यदि सक्शन हैड लगभग 4–5 मीटर (सतही जल जलाशय) है, तो 1 एचपी क्षमता पंप पर्याप्त है जिसके लिए डीसी पंप के मामले में 900 डब्ल्यूपी पैनल और एसी सतह पंप के मामले में 1400 डब्ल्यूपी पैनल की आवश्यकता होती है।

सौर प्रकाश वोल्टीय मोड्यूलों को खुले एवं छायारहित धूप वाले स्थलों पर लगाया जाता है। पम्प को यथासम्भव पानी के स्रोत के पास ही स्थापित किया जाना जरूरी है तथा पम्प के आस–पास पर्याप्त खुली जगह होनी भी जरूरी है ताकि इसके रख–रखाव में परेशानी न हो। पम्प प्रणाली को उचित आकार एवं दृढ़ता वाले आधार पर अच्छी तरह से लगाया जाता है तथा आधार को इस तरह से बनाया जाता है कि यह पम्प की इकाई तथा पाइप में स्थित पानी के भार को वहन कर सके। पाईप को अच्छी तरह सहारा देकर लगाया जाना भी जरूरी होता है ताकि पम्प पर तनाव न पड़े तथा घर्षण द्वारा हानि कम हो और पानी ऊपर उठने की गति समान बनी रहे। मोड्यूलों की ऊपरी सतह पर जमी धूल–मिट्टी को विशिष्ट प्रकार के कपड़े से नियमित रूप से साफ करना भी अति आवश्यक होता है ताकि अधिकतम प्रकाश को सैल अवशोषित कर सकें।

यदि कुएं या ट्यूबवेल से अधिक गहरे पानी को खींचने के लिए सौर पीवी पंप का उपयोग किया जाना है, तो पैनल का आकार तदनुसार अधिक होगा। क्षैतिज सतह से कोण के साथ पैनलों को बनाने के लिए माउन्टिंग संरचना, जो आम तौर पर किसी भी स्थान के अक्षांश के बराबर होती है, को तीव्र हवा वेग का सामना करने के लिए पर्याप्त मजबूत होना चाहिए। सौर पम्पिंग सिस्टम में इस्तेमाल किए जाने वाले पंप स्थिति के अनुसार डीसी या एसी प्रकार और सतह या पनडुब्बी प्रकार हो सकते हैं। चूंकि पीवी पैनल डीसी विद्युत धारा उत्पन्न करते हैं, एसी पंपिंग सिस्टम के लिए अतिरिक्त डीसी–एसी इन्वर्टर सिस्टम की आवश्यकता होती है। सूर्य के लंबवत पैनल को ट्रैक करने के लिए, ट्रैकिंग सिस्टम की आवश्यकता है। बाजार में मैनुअल और ऑटो ट्रैकिंग सिस्टम दोनों उपलब्ध हैं। हालांकि, ऑटो ट्रैकिंग सिस्टम के मामले में ट्रैकर की अतिरिक्त लागत होगी। 3 एचपी क्षमता पंप के साथ बाजार में उपलब्ध सौर पीवी पंपिंग प्रणाली की लागत ऑटो ट्रैकर के लिए 14,000 रुपये की अतिरिक्त लागत के साथ लगभग 4.00 लाख रुपये है।

विद्युत के अनुसार पंप का वर्गीकरण निम्न प्रकार से है–

डीसी पंप प्रणाली : सौर ऊर्जा पैनल के द्वारा सीधे ही विशेष कंट्रोलर के प्रयोग से डीसी पंप का संचालन होता है। डीसी पंप की विशेषता यह है कि यह न्यूनतम वॉल्ट्ज (180 वाट) से ही कार्य करना शुरू कर देता है। यह पंप सुबह जल्दी चालू हो जाता है तथा देर शाम तक चलता है।

ए.सी. पंप प्रणाली : ए.सी. पंप के संचालन के लिए एक विशेष कनवर्टर की आवश्यकता होती है। इसका कारण है सूर्य से सोलर पैनल को डीसी ऊर्जा ही प्राप्त होती है। एसी पंप एक निश्चित वोल्टेज (वाट) पर ही चलता है जिससे यह पंप पूर्ण सूर्य प्रकाश की उपलब्धता पर ही कार्य करता है। यह पंप पूर्ण दिवस में कम समय ही कार्य करता है, जिसके कारण इसकी तुलनात्मक क्षमता कम होती है।

सौर पीवी पंप ऑपरेशन के सिद्धांत

सतही जल जलाशय में सक्शन हैड या भूजल की गहराई अधिक है, तो पानी निकालने के लिए पंप की बड़ी क्षमता की आवश्यकता होती है, जो पीवी पैनल आकार को बढ़ाता है। पीवी पंप पीवी मॉड्यूल द्वारा उत्पन्न बिजली के साथ संचालित होते ही पीवी पैनल आकार और पंप क्षमता के अनुसार सिंचाई प्रणाली को डिजाइन करना है। यदि एक सिंचाई नेटवर्क के लिए उपलब्ध पंप की क्षमता और उपलब्ध सौर विकिरण की तुलना में उच्च परिचालन दबाव की आवश्यकता है, तो ऐसा पंप फसलों को सिंचाई करने में सक्षम नहीं होगा। उदाहरण के लिए, 1 एचपी का सौर पंप दिन के दौरान पूर्ण विकिरण पर लगभग 1.5–2 किग्रा सेमी$^{-2}$ ऑपरेटिंग दबाव उत्पन्न कर सकता है इसलिए, इसकी सहायता से 2 किलोग्राम सेमी$^{-2}$ के स्प्रिंकलर नहीं चलाये सकते हैं। इस उद्देश्य के लिए, बड़े आकार के पीवी पंपिंग सिस्टम जैसे 3 एचपी या 5 एचपी सौर पीवी पंपिंग सिस्टम की आवश्यकता होगी।

सौर पीवी पंप की उपयोगिता

किसान भाई विद्युत् अनुपलब्धता एवं सीमित विद्युत उपलब्धता आदि के समय सौर ऊर्जा से संचालित पंप से समय पर फसल, बगीचों आदि की सिंचाई कर अपनी आमदनी को सुनिश्चित कर सकते है। किसान सौर ऊर्जा से संचालित पंप का प्रयोग कर डीजल चलित पंप का प्रयोग कम होने से पर्यावरण पर होने वाले दुष्प्रभाव को कम कर सकते हैं। सौर पीवी पंप का सबसे अच्छा उपयोग दबाव सिंचाई प्रणाली के साथ किया जा सकता है जैसे टपक और फव्वारा सिंचाई। 1 एचपी क्षमता के छोटे आकार के सौर पीवी पंप सतही जल जलाशय से उच्च गुणवत्ता वाले सब्जी उत्पादन के लिए ग्रीनहाउस, पॉली हाउस, शेड नेट हाउस में फसलों को सिंचाई करने के लिए सबसे उपयुक्त हैं। बड़े आकार के सौर पंप (उदाहरण के लिए 3 एचपी और 5 एचपी क्षमता) का उपयोग नहर कमांड क्षेत्रों में फव्वारा सिंचाई के द्वारा फसलों को सिंचाई करने के लिए किया जा सकता है। गंगानगर और हनुमानगढ़ जिले के इंदिरा गांधी नहर परियोजना (आईजीएनपी) कमांड क्षेत्रों में किसान सरसों, गेहूँ, मूँगफली आदि के लिए सौर पीवी पंपिंग प्रणाली का व्यापक रूप से उपयोग कर रहे हैं।

निष्कर्ष

सौर पीवी पंपिंग सिस्टम भविष्य में ऊर्जा सुरक्षित कृषि के लिए सबसे व्यवहार्य विकल्पों में से एक के रूप में स्थापित हो गया है और राजस्थान और गुजरात जैसे राज्यों में इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। सौर विकिरण की उपलब्धता के अनुसार यह देखा गया है कि सौर पंप सुबह 10:00 बजे से अपराहन 4:00 बजे 6 घंटे के लिए आसानी से संचालित किया जा सकता है। इसके अलावा, 1 एचपी सौर पंप प्रणाली को विभिन्न दबाव वाले सिंचाई प्रणालियों और यहां तक कि मिनी–स्प्रिंकलर को संचालित करने के लिए

संतोषजनक पाया गया, जिसके लिए लगभग 2 किलोग्राम सेमी$^{-2}$ के परिचालन दबाव की आवश्यकता होती है। साथ ही किसानों की घरेलू बिजली की जरूरत का एक हिस्सा सौर पीवी पंपिंग सिस्टम द्वारा पूरा किया जा सकता है। डीजल संचालित पंप और विद्युतीकृत पंप के साथ सौर पीवी पंप के तुलनात्मक विश्लेषण से पता चलता है कि सौर पंप किसानों के लिए बेहद फायदेमंद होंगे।

भारत में बिजली हर बीतते दिन के साथ और अधिक महंगी होती जा रही हैं। इसलिए अपनी बिजली जरूरतों को पूरा करने के लिए सौर ऊर्जा का उपयोग करने में अधिक लोगों की रुचि भी निरंतर बढ़ रही है। बिजली कटौती व डीजी सेट पर निर्भरता, लोगों को अधिक और बेहतर विकल्पों की तरफ आकर्षित कर रहे हैं। सौर पीवी पैनल निश्चित रूप से एक बहुत अच्छा विकल्प प्रदान करते हैं। नवीन एवं नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय (एमएनआरई) भी देश में जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय सौर मिशन के तहत सौर पीवी प्रणाली को बढ़ावा देने के लिए उपयुक्त कदम उठा रहा है। वे इस योजना के अन्तरगत सौर पैनल खरीदने के लिए, लोगों को सब्सिडी प्रदान करते हैं।

कृषि क्षेत्र में पवन से ऊर्जा उत्पादन की संभावनाएं

दिनेश मिश्रा एवं अमित सिंह

भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

बहती वायु से उत्पन्न की गई उर्जा को पवन ऊर्जा कहते हैं। वायु एक नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत है। पवन ऊर्जा बनाने के लिये हवादार जगहों पर पवन चक्कियों को लगाया जाता है, जिनके द्वारा वायु की गतिज उर्जा, यान्त्रिक उर्जा में परिवर्तित हो जाती है। इस यान्त्रिक ऊर्जा को जनित्र की मदद से विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है।

पवन ऊर्जा (wind energy) का आशय वायु से गतिज ऊर्जा को लेकर उसे उपयोगी यांत्रिकी अथवा विद्युत ऊर्जा के रूप में परिवर्तित करना है।

मूल सिद्धान्त

सूर्य प्रति सेकंड पचास लाख टन पदार्थ को ऊर्जा में परिवर्तित करता है। इस ऊर्जा का जो थोड़ा सा अंश पृथ्वी पर पहुँचता है, वह यहाँ कई रूपों में प्राप्त होता है। सौर विकिरण सर्वप्रथम पृथ्वी की सतह या भूपृष्ठ द्वारा अवशोषित किया जाता है, तत्पश्चात वह विभिन्न रूपों में आसपास के वायुमंडल में स्थानांतरित हो जाता है। चूँकि पृथ्वी की सतह एक सामान या समतल नहीं है, अतः अवशोषित ऊर्जा की मात्रा भी स्थान व समय के अनुसार भिन्न भिन्न होती है। इसके परिणामस्वरूप तापक्रम, घनत्व तथा दबाव संबंधी विभिन्नताएं उत्पन्न होती है– जो फिर ऐसे बलों को उत्पन्न करती हैं, जो वायु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवाहित होने के लिए विवश कर देती हैं। गर्म होने से विस्तारित वायु, जो गर्म होने से हलकी हो जाती है, ऊपर की ओर उठती है तथा ऊपर की ठंडी वायु नीचे आकर उसका स्थान ले लेती है, इसके फलस्वरूप वायुमंडल में अर्द्ध–स्थायी प्रतिरूप उत्पन्न हो जाते हैं। वायु का चलन, सतह के असमान गर्म होने के कारण होता है।

लाभ

यह साफ–सुथरी हैः–

वायु का ऊर्जा उत्पादन करने हेतु उपयोग करने में न तो किसी भी प्रकार के प्रदूषण की समस्या या अम्लीय वर्षा की समस्या, या खानों के अपवाह या विषाक्त प्रदूषक पदार्थो जैसी कोई समस्या है और न ही इसके कारण हेक्टेयरों तक फैली भूमि क्षतिग्रस्त होती है। वास्तव में मानव की पर्यावरणीय आवश्यकताओं की पूर्ण आपूर्ति पवन ऊर्जा रूपांतरण तंत्रों द्वारा हो जाती है। कार्बन–डाईआक्साइड के उत्सर्जन को कम करने के लिए उपलब्ध कुछ एक तकनीकी विकल्पों में पवन ऊर्जा भी एक है। चूँकि इसमे गैसीय प्रदूषकों

के उत्सर्जन जैसी कोई समस्या नहीं है जो कि ग्रीन हाउस प्रभाव को उत्पन्न करके पर्यावरणीय समस्याओं को बढ़ाए, अतः विद्युत उत्पादन हेतु पवन ऊर्जा ही सबसे अधिक स्वीकृत स्रोतों में से एक है। यह नवीकरण योग्य ऊर्जा ही विश्वव्यापी उष्णता तथा अम्लीय वर्षा से संघर्ष कर सकती है।

यह असमाप्य हैः–

पवन अथवा वायु सुगमता से उपलब्ध है तथा कभी न समाप्त होने वाली है, जब कि जीवाश्मीय ईन्धन सीमित है। हालांकि और अधिक जीवाश्मीय ईंधनों की खोज की दिशा में सतत गवेषक कार्य चल रहा है, परन्तु विश्व के औद्योगिक तथा विकासशील देशों की निरंतर बढ़ती ईंधन की आवश्यकता निश्चित रूप से भविष्य में इन उच्च श्रेणी के ईंधन स्रोतों को समाप्त कर देगी। इस समस्या से निपटने के लिए, पवन ऊर्जा ही एकमात्र संभावित विकल्प है, जो कि नवीकृत भी होता रहता है। सूर्य कीं विकिरित ऊर्जा से पवन ऊर्जा सतत रूप से नवीकृत होती रहती है और इसका दोहन सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

इसकी आपूर्ति असीमित हैः–

पवन निशुल्क तथा प्रचुरता में उपलब्ध है, सरलता से प्राप्य है, समाप्त होने वाली नहीं है तथा इसकी आपूर्ति भी निर्बाध है। पवन अथवा वायु पर किसी भी देश या वाणिज्यिक प्रतिष्ठान का एकाधिकार नहीं है, जैसा कि जीवाश्मीय ईंधनों, यथा–तेल, गैस, या नाभिक ईंधनों–जैसे यूरेनियम आदि के साथ है। चूँकि ऊर्जा क़ी मांग सतत रूप से बढ़ती ही जायेगी, इसलिए कच्चे तेल के बढ़ते हुए मूल्यों के साथ निश्चित रूप से पवन ऊर्जा ही एकमात्र आकर्षक विकल्प प्रस्तुत करती है।

यह सुरक्षित हैः–

पवन ऊर्जा संयत्रों का परिचालन सुरक्षित है। आधुनिक व उन्नत माइक्रोप्रोसेसर्स के प्रयोग से समस्त संयंत्र पूर्णतः स्वचालित हो गए हैं तथा संयंत्र के परिचालन के लिए अधिक श्रमिकों क़ी आवश्यकता भी नहीं रह गई है। निर्माण तथा रखरखाव क़ी दृष्टि से भी यह पूर्णतः सुरक्षित है। यह बात तापीय ऊर्जा संयंत्रों अथवा नाभकीय ऊर्जा संयंत्रों पर लागू नहीं होती। आधुनिक पवन संयंत्रों में प्रयुक्त प्रभावी सुरक्षा यांत्रिकी से यहाँ तक संभव हो गया है कि इन्हें सार्वजनिक स्थलों पर भी थोड़ी सी क्षति अथवा बिना किसी क्षति के स्थापित किया जा सकता है।

पवन प्रणाली के लिए अधिक स्थान की आवश्यकता नहीं :–

पवन चालित प्रणाली के लिए तुलनात्मक रूप से कम स्थान की आवश्यकता होती है और इसे हर उस स्थान पर, जहाँ भी वायु की स्थिति अनुकूल हो, लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए इसे पहाड़ी के शिखर पर, समतल सपाट भू–प्रदेश, वनों तथा मरुस्थलों तक में लगाया जा सकता है। संयंत्र को अपतटीय क्षेत्रों तथा

छिछले पानी में भी लगाया जा सकता है। यदि पवन संयंत्रों को कृषि भूमि में भी लगाया जाता है तो मीनार के आधार स्थान तक खेती की जा सकती है।

इनका शीघ्र निर्माण किया जा सकता है:–

पवन चक्की श्रृंखलाओं में अनेक अपेक्षाकृत छोटी–छोटी इकाइयां होती हैं। इन्हें सरलता व शीघ्रता से समूहों में बनाया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप इनकी योजना बनाने में लचीलापन आ जाता है। किसी भी पवन चक्की फ़ार्म के पूरा होने के पहले ही निवेशित पूंजी शीघ्रता से वापस मिलने लगती है। मांग के बढ़ने के साथ–साथ, जब भी आवश्यकता अनुभव हो, नयी इकाइयां जोड़ी जा सकती है। इन्हें एक ही स्थान पर, समूह के रूप में या सम्पूर्ण देश के क्षेत्रों में बिखरा कर लगाया जा सकता है।

इनमें रखरखाव की कम आवश्यकता होती है:–

चूँकि यह पवन चालित संयंत्र सरल व परिचालन में आसान होते हैं, अतः अन्य विकल्पों की तुलना में इनके रखरखाव की आवश्यकता कम होती है।

पवन ऊर्जा कम खर्चीली है:–

चूँकि वायु बिना मूल्य उपलब्ध है, इसलिए इसमें ईंधन के मूल्यों में वृद्धि के साथ मुद्रास्फीति का भी कोई जोखम नहीं है। इस प्रकार पवन ऊर्जा धन तथा ईंधन दोनों ही रूपों में बचत करती है। अतः पवन ऊर्जा मूल्यप्रभावी है। आज विश्व के कई क्षेत्रों में, जहां वायु के स्रोत केन्द्रित है, वहां पवन ऊर्जा तेल चालित तथा नाभकीय–शक्ति से उत्पादित विद्युत को कड़ी चुनौती दे रही है, क्योंकि परम्परागत ऊर्जा स्रोतों के विकास की लागत जहां दिन–प्रतिदिन बढ़ रही है, वहीं पवन ऊर्जा की लागत तीव्रता से गिर रही है। वायु चालित टरबाइनों की दिनों–दिन बढ़ती हुई विश्वसनीयता से यह सिद्ध हो रहा है कि निकट भविष्य में अधिक से अधिक क्षेत्र ऊर्जा के अन्य रूपों की अपेक्षा पवन ऊर्जा को सबसे कम व्यय वाले आकर्षक विकल्प के रूप में अपनाएंगे।

पवन ऊर्जा के उपयोग की सीमाएं

पवन चालित संयंत्र महंगे है और केवल वहीं लगाए जा सकते है जहां आवश्यकतानुरूप वायु उपलब्ध हो। उच्च पवन गति वाले क्षेत्र पहुँच से बाहर हो सकते हैं अथवा उच्च वोल्ट क्षमता वाली पारेषण लाइनों से दूर स्थित हो सकते हैं, जिससे पवन ऊर्जा के संचार में समस्या हो सकती है। साथ ही विद्युत् की आवश्यकता समय के अनुसार घटती–बढ़ती रहती है तथा विद्युत उत्पादन को मांग चक्र के अनुसार समायोजित करना होता हैपवन–शक्ति की मात्रा या गति में अचानक परिवर्तन हो सकते हैं, अतः यह भी संभव है कि मांग या आवश्यकता के समय यह उपलब्ध ही न हो। अतः सतत रूप से एक ही मात्रा में उपलब्ध न होने तथा अविश्वसनीय आपूर्ति के कारण पवन ऊर्जा की व्यवहारिक असुविधा ने इसके उपयोग को, उन्हीं क्षेत्रों तक

सीमित कर दिया है जहाँ या तो विद्युत की सतत आपूर्ति की आवश्यकता नहीं है, या आवश्यकतानुरूप आपूर्ति हेतु एक अन्य स्थायी ऊर्जा विकल्प उपलब्ध है। विद्युत ऊर्जा का भंडारण कठिन एवं महँगा भी है, इसलिए पवन ऊर्जा का उपयोग किसी अन्य प्रकार की ऊर्जा के साथ साथ अथवा गैर–वैद्युत भंडारण के साथ किया जा सकता है। पवन ऊर्जा का उपयोग जलविद्युत ऊर्जा जनित्रों के साथ करना अधिक लाभप्रद है, क्योंकि जल का उपयोग ऊर्जा भंडारण के स्रोत के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है और भूमिगत संपीड़ित वायु के भंडारण का उपयोग एक अन्य विकल्प है।

पवन ऊर्जा का सिद्धांत

हवा की गतिशील ऊर्जा की गणना करने के लिए

$\frac{1}{2}\ mv^2 = \frac{1}{2}\ \rho AV^3$

m = घन, ρ = वायु घनत्व, V = वायु वेग, A = धुमा हुआ क्षेत्र

हवा से निकाली जाने वाली गतिशील ऊर्जा 16/27 या 0.593 है।

पवन टरबाइन का सैद्धांतिक अधिकतम ऊर्जा उत्पादन = $0.29\ \rho AV^3$

राजस्थान में पवन ऊर्जा से विद्युत् उत्पादन

क.सं.	विकासक	जैसलमेर (मे.वॉ.)	जोधपुर (मे.वॉ.)	सीकर (मे.वॉ.)	बाड़मेर (मे.वॉ.)	चितौड़गढ़ प्रतापगढ (मे.वॉ.)	कुल क्षमता स्थापित (मे.वॉ.)
1	आर.आर.ई.सी.	45.4	2.1			2.25	49.75
2	सुजलॉन	1608.95	315.5		9.6		1934.05
3	एनरकॉन + विष	896.77	98.4	7.2			1002.37
4	एन.पी.ई.सी.					0.675	0.675
5	आर.आर.बी. एनर्जी	25.8					25.8
6	वीर	76.5					76.5
7	रीजेन					211.5	211.5
8	आईनॉक्स	554					554
9	वेल्स्पन					126	126
10	गमेसा				40		40

11	निधी	62.9					62.9
12	तनोट	120					120
13	राजगढ़	74					74
14	शक्तिकृपा					7.5	7.5
15	सम्पदा					7.5	7.5
	कुल	**3464.32**	**416**	**7.2**	**49.6**	**355.425**	**4292.545**

पर्यावरणीय समस्याएँ

विद्युत चुम्बकीय व्यवधान

पवन उत्पादक संयंत्र विद्युत चुंबकीय संकेत वातावरण में प्रसारित करेंगे। क्षैतिज अक्ष वाले पवन चालित टर्बाइनों के घूमते हुए फलक (ब्लेड) दूरदर्शन संकेतों के दृश्य अंश विरूपित करके निकटवर्तीय क्षेत्रों में व्यवधान उत्पन्न कर सकते हैं। संयंत्रों से दूरी बढ़ने के साथ साथ यह व्यतिकरण कम हो सकता है, फिर भी यह परा–उच्च आवृत्ति (यू.एच.एफ.) चैनलों को कई किलोमीटर की दूरी पर भी प्रभावित कर सकता है। अगर ब्लेड स्थिर भी हो तो भी वायु में प्रसारित संकेत 'छद्म बिम्ब' (घोस्ट इमेज) उत्पन्न कर सकते है। इस समस्या को समुचित स्थल–चयन तथा सूक्ष्म तरंग (माइक्रोवेव) संपर्क के बीच 'दृष्टि रेखा' को बदल कर तथा संयंत्रों को प्रसारण केन्द्रों से दूर लगा कर किया जा सकता है।

शोर

अनेक विकसित देशों में 'शोर' की समस्या को पवन ऊर्जा विकास के विरुद्ध हथियार के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पवन चालित संयंत्र से शोर उत्पन्न होने के दो प्रमुख स्रोत हैः यांत्रिकी शोर जो कि घूमते हुए यांत्रिक एवं वैद्युतिक घटकों से उत्पन्न होता है और जिसे उचित गियर–प्रणाली या ध्वनिरोधक आच्छादन लगाकर कम किया जा सकता है। दूसरा कारण है सीटी जैसी वह आवाज जो फलकों के ऊपर वायु के प्रवाहित होने से उत्पन्न वायुगतिकीय शोर है, जिसकी अलग–अलग आवृत्तियां होती हैं।

वन्य जीव

अनेक प्रकृति प्रेमीयों या क्लबों की यह आशंका है कि पवनचालित संयंत्रों की उपस्थिति प्रवासी पक्षियों तथा सामान्य पक्षियों को भयभीत करती है। परन्तु आंकड़ों से यह अब सिद्ध हो चुका है कि पक्षी टकराने की घटनाएं निचली उड़ान के स्तर पर ही होती है और ऐसे पक्षियों की संख्या बहुत ही कम होती है।

सौंदर्य बोध

निस्संदेह वायु चालित टर्बाइनों का प्राकृतिक दृश्यावली पर निश्चित रूप से कुछ दुष्प्रभाव पड़ता है और यह दृश्य–प्रदूषण को जन्म देता है। जब बड़ी–बड़ी ऊँची मीनारें खड़ी की जाती है तो वे निश्चित रूप से प्राकृतिक दृश्यावली की सुरम्यता को प्रभावित करती हैं (विकसित देश इस दिशा में अधिक जागरुक हैं, जबकि विकासशील देशों में अधिकतर इसे प्रगति का चिन्ह माना जा रहा है)। इन सबके अतिरिक्त, कम उंचाई पर वायुयान संचालन, रडार–प्रसारणों तथा संचार के अन्य माध्यमों पर भी इसके दुष्प्रभाव पड़ सकते हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त चर्चा के अनुसार पवन मिल द्वारा उत्पन्न ऊर्जा का आर्थिक रूप से वाणिज्यिक ईंधन के परिवहन की निषिद्ध लागत के कारण देश के हवादार और निम्न जल स्तर के दूरस्थ क्षेत्रों में पानी उठाने और बिजली उत्पादन के लिए उपयोग किया जा सकता है। पवन मिलों के माध्यम से निर्वहन पानी का उपयोग पीने के उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है। इसका उपयोग उच्च उत्पादन प्राप्त करने के लिए फसलों की सिंचाई के लिए भी किया जा सकता है।

Cleaner Production & Waste Minimization

Gujarat Cleaner Production Centre

ENVIS Resource Partner: Cleaner Production & Clean Technology

Supported by: Ministry of Environment, Forest & Climate Change, Government of India

स्वच्छ उत्पादन एंव अपशिष्ट न्यूनीकरण

संगीता गोयल एंव मयूर भाटी

अपशिष्ट क्या है ?

अपशिष्ट एक अवांछित या अनुपयोगी सामग्री है। कोई भी पदार्थ जिसे प्राथमिक उपयोग के बाद छोड़ दिया जाता है, या फेंक दिया जाता है या खराब हो उसे अपशिष्ट कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है– एक घरेलू अपशिष्ट जो घर से उत्पन्न होता है और दूसरा औद्योगिक अपशिष्ट जो उद्योगों से उत्पन्न होता है।

अपशिष्ट के प्रकार :

- ठोस आवासीय अपशिष्ट – जैसे इलेक्ट्रानिक सामान, खाद्य सामग्री, प्लास्टिक, बायोमेडिकल अपशिष्ट, कबाड़ का सामान, मंदिर, पशु के अपशिष्ट, सड़क का कचरा
- वाणिज्यिक अपशिष्ट – जैसे लघु उद्योग, संस्थान, होटल, बाजार, बूचड़खाना, अस्पताल आदि के अपशिष्ट
- औद्योगिक अपशिष्ट – यह भी दो तरह का होता है

खतरनाक	गैर खतरनाक
ETP/STP/CETP के द्वारा निकला हुआ कीचड, अम्ल, ऑयल, ग्रीस, विलायक, उत्प्रेरक	खाद्य, प्लास्टिक, स्टेशनरी, फर्नीचर, निर्माण अपशिष्ट आदि

- तरल आवासीय एंव वाणिज्य अपशिष्ट – घरेलू सीवेज, तालाबों से धुलाई, रसायन, तेल का तरल अपशिष्ट, निर्माण आदि उद्योगों से निकला हुआ अपशिष्ट जल

स्वच्छ उत्पादन का प्रारंभ एंव अवधारणा

स्वच्छ उत्पादन का प्रारंभ 1992 में रियो समिट के युएनईपी के दौरान हुआ था जिसका लक्ष्य औद्योगिक द्वारा पर्यावरण पर प्रभाव को कम करना था। स्वच्छ उत्पादन एक सक्रिय एंव संघठित समाधान है जो उत्पादन क्रियाओं के दौरान प्रदूषण की समस्याओं और प्रदूषक का निवारण करती है। स्वच्छ उत्पादन का उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों की प्रति युनिट खपत को कम करना। यह एक अग्रेषित, प्रत्यक्ष एंव प्रतिबंधित दर्शनशास्त्र है।

अपशिष्ट न्यूनीकरण

अपशिष्ट न्यूनीकरण प्रक्रियाओं और प्रथाओं का एक समूह है जो अपशिष्ट उत्पादन तथा हानिकारक आग्रही अपशिष्ट को भी कम करता है और सतत् समाज को प्रेरित करता है। अपशिष्ट न्यूनीकरण में उत्पादों को नया स्वरूप प्रदान करता है एंव खपत और उत्पादन के सामाजिक रूप को परिवर्तित करता है।

स्वच्छ उत्पादन : कार्य प्रणाली

- योजना और संगठन
- परियोजना दल
- नीति, उद्देश्य, लक्ष्य
- योजना
- पूर्व आकलन (गुणात्मक समीक्षा)
- प्रवाह चार्ट
- निरीक्षण
- केन्द्र निश्चित करना
- परिमाणात्क समीक्षा
- परिणामात्मक डेटा का संग्रह करना
- सामग्री का संतुलन
- स्वच्छ उत्पादन अवसरों को स्पष्ट करना
- मूल्यांकन
- प्रारंभिक
- तकनीकी
- आर्थिक
- पर्यावरण
- व्यवहार्य विकल्प चुनना
- कार्यान्वयन और
- खाद्य अपशिष्ट

कारण

- उचित योजना का अभाव।
- अधिक मात्र में खाद्य पदार्थों को खरीदना और तैयार करना।
- वित्तीय, तकनीकी और प्रबन्धन में अवरोध।
- अधिक मात्रा में भोजन बनाना जैसे रेस्तरां, होटल आदि।
- सुपर मार्केट और खाद्य स्टोर्स में अधिक बिक्री और अधिक ऑर्डर बुक करना।
- उपभोक्ता का व्यवहार।
- न्यूनीकरण करना।
- जितना जरूरत हो उतना खरीदें और बनाएं।
- यथार्थवादी बनें।
- जिन सामग्री की समाप्ति तिथि नजदीक आने वाली है उसे पहले इस्तेमाल करें।
- खाद्य सामग्री का बेहतर ढंग से भंडारण करें।
- बचे हुए भोजन को पुनः इस्तेमाल कर सकते है।
- खाद्य अपशिष्ट के मुद्दों के बारे में नागरिकों में जागरूकता पैदा करें व शिक्षित करें।

खाद्य अपशिष्ट का उपचार

पृथक्करण एंव घर घर संग्रहण करना	छोटे गावों में पुर्नचक्रण प्रबन्धन	जैविक अपशिष्ट खाद
• हर घर से कचरा संग्रहण करना • हर घर में दो कचरा पात्र होने चाहिए, एक गीले और दुसरा सुखे कचरे के लिए • इसके लिए लोगों को प्रेरित करना	• जहाँ कचरे का घर घर संग्रहण नहीं हो सकता वहाँ एक स्थान चिन्हित कर कचरा पात्र प्रदान किये जाएं और हफ्ते में एक बार कचरे को साफ किया जाए • गीला और सूखे कचरे का अलग अलग संग्रह करें	• पशुओं के भोजन के लिये जैविक कचरे का पुनः इस्तेमाल करें • बायोगैस उत्पादन • घरेलू खाद उत्पादन

1. खाद्य पदार्थ का पृथक्करण करना

दो प्रकार के कचरा पात्र उपलब्ध कराना जिससे सूखा और गीला कचरे को पृथक किया जा सके।

2. छोटे गांव में अपशिष्ट का पुनरावर्तनीय का प्रबन्ध करना

पंचायत स्तर पर अपशिष्ट को पृथक करके इकट्ठा कर पुनरावर्तनीय करने के लिए हर हफ्ते आगे भेजना।

3. जैविक अपशिष्ट खाद

- घरेलू स्तर पर अपशिष्ट को चारे या खाद्य या बायोगैस की तरह इस्तेमाल करना।
- जैविक खाद्य घरेलू स्तर पर बनाने के लिए तीन प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है– अपशिष्ट तैयार करना, अपशिष्ट की अवनति और अपशिष्ट का परिष्करण।

लेखन सामग्री अपशिष्ट

अधिकांश व्यवसायों और संगठनों की प्राथमिक चिंताओं में से एक लागत प्रभावी है जिससे यह सुनिश्चित किया जाए कि कम्पनी के धन को सही तरीके से उपयोग के लिए रखा जाये। सही तरीका कम खरीद नहीं है पर उसकी आपूर्ति और लेखन सामग्री का अपव्यय और दुरूपयोग को कम करना है। लेखन सामग्री जैसे पेन, पेन्सिल, स्टेपलर, पिन, लिफाफे, कागज आदि की आपूर्ति को लगातार स्टॉक कर नजर रखी जाए। प्रमुख स्टेशनरी का कचरा घरों, स्कूलों, कार्यालयों आदि से बर्बाद होता है।

उपाय

- हर साल एक बड़ी रकम लेखन सामग्री में खर्च की जाती है। कुछ कर्मचारी अपने घर की आपूर्ति भी इसी खर्च से निकालते है अतः आप स्वयं एक उदाहरण निर्धारित करें कि हर एक सामान के स्टॉक में एंट्री कर उसे तरीके से इस्तेमाल किया जाए।
- यदि कोई कर्मचारी इन सामानों की चोरी करता पकड़ा जाये तो उसके खिलाफ कार्यवाही की जाए और जो नियमों का उल्लघंन करे उसे क्षतिग्रस्त सामग्री के लिए भुगतान करने के लिए कहें।
- स्टेशनरी के लिए अनुरोध ई–मेल के माध्यम से भेजा जाये जिससे ऑनलाईन रिकॉर्ड भी बना रहे। यह जानकारी अपने वरिष्ठ से साझा करें।
- कागज को दोनों तरफ से उपयोग में लाना चाहिये। जितना हो सके कागज की बजाय आनलाईन का उपयोग करना चाहिये।
- लेखन सामग्री का पुनरावृत्ति कर पुनः उपयोग करना। इस कार्य के लिए करीब 550 से अधिक मिले बेकार कागज का उपयोग करती है और इनसे कागज, पेपरबोर्ड, अखबारी कागज बनाने आदि सामान का उत्पादन करती है।

जैव चिकित्सा अपशिष्ट

काई भी अपशिष्ट जो मानव के निदान, उपचार या टीकाकरण के दौरान उत्पन्न होता है प्राणियों या जानवरों पर अनुसंधान गतिविधियों उत्पन्न होने वाले को जैव चिकित्सा अपशिष्ट कहते हैं।

प्रयोगशालाओं का अपशिष्ट

औद्योगिक प्रयोगशालाएं और पर्यावरण

अनुसंधान, शिक्षण और नैदानिक प्रयोगशालाएं विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट रसायनों का उत्पादन करती है जो कि नियामक प्रबंधन मानकों के अधीन हो अन्यथा यह मानव स्वास्थय तथा पर्यावरण के लिए खतरा पैदा कर सकते है।

प्रबन्धन

- अपशिष्ट रसायनों का संग्रह
  अपशिष्ट रसायनों को संचालन के दौरान एकत्र किया जाता है या फिर उनको लीक प्रूफ कंटेनर में एकत्र करते हैं।

- लेबलिंग एंव मार्किगं
  अपशिष्ट वाले कंटेनरों पर बड़े अक्षरों में लेबलिंग एंव मार्किगं की जाती है जैसे 'अपशिष्ट'– रसायन का नाम

- अपशिष्ट संग्रह तारीख
  लेबलिंग के बाद उन पर प्रारंभ अपशिष्ट संग्रह की तारीख लिखी जाती है फिर जब वह 90% पूर्ण हो जाता है तो बंद करके उसकी तारीख लिखी जाती है।

- छोटे और टेढे मेढे आाकार के कंटेनरों को एक बड़े कंटेनर में बंद किया जाता है और सारी जानकारी उस बड़े कंटेनर पर लिखी जाती है।
- अपशिष्ट कंटेनरों को खोलते एंव बंद करते समय सावधानी बरतें। खाली होने के बाद उनकी अच्छी तरह से सफाई करें।
- भरे हुए अपशिष्ट कंटेनरों को ऑपरेटर के नियंत्रण में सुरक्षित क्षेत्र में संग्रहित किया जाना चाहिये।
- इन कंटेनरों को 90 दिनों के भीतर प्रयोगशाला से हटा दिया जाना चाहिये।
- जो रसायन अप्रयुक्त, बंद या अज्ञात है उन्हे 30 दिनों के बाद हटा दिया जाना चाहिये।

- नामित कर्मियों को एक रसायनिक सूची बनानी चाहिये जिसमें जो भी रसायन खरीदा गया है उसकी सारी जानकारी लिखित रूप में होनी चाहिये। इस सूची की समय समय पर समीक्षा तथा अपडेट होनी चाहिये।
- कुछ रसायन ऐसे होते हैं जिन्हे नाली में प्रवाह नही कर सकते, उन्हे अलग सही तरीके से एकत्र करके निपटान करना चाहिये जैसे ज्वलनशील तरल पदार्थ, विस्फोटक रसायन,एंव पारा योगिक पदार्थ, रेडियोधर्मी सामग्री।

फर्नीचर अपशिष्ट

दान करना/पुराने को बेचना/आनलाईन पर बेचना/नवीकरण कर पुनः इस्तेमाल करना/रचनात्मक तरीके से उनका उपयोग करना।

उदाहरण :

- जैसे सीढी को सामान रखने के लिए इस्तेमाल करना
- पुराने दरवाजे को पलंग के पीछे सिरहाने की तरह रखना
- पुराने लकड़ी के खोखे को मेगजीन रखने के लिए
- पुराने लॉकर को जूते का रैक की तरह इस्तेमाल करना
- पुराने बक्से को टेबल की तरह काम में लेना

मंदिरों के अपशिष्ट

- नारियल के खोल – इसकी राख को सीमेंट के आंशिक प्रतिस्थापन के रूप में उपयोग किया जा सकता है। (सीमेंट बनने की प्रक्रिया में CO_2ज्यादा निकलता है)
- फूलों का उपयोग – जैविक खाद, तेल बनाना, रंग बनाना, अगरबत्तियाँ बनाना।

पानी का अपव्यय

आवासीय और वाणिज्यिक क्षेत्र के लिए जल बचत युक्तियाँ

- हमेशा बहते पानी को रोके।
- शॉवर में ज्यादा देर तक न नहाएं।
- सभी रिसाव को हटा दें।
- शौचालय और शावर में पानी के प्रवाह को कम करें।
- रिसाव के लिए नल और पाइप की जाँच करें। एक वियरेफ्यूसेट वॉशर से एक छोटी ड्रिप प्रति दिन 35 लीटर पानी बर्बाद कर सकती है। बड़ा रिसाव सैकड़ों लीटर बर्बाद कर सकता है।
- बर्तन साफ करते समय सिंक का नल बंद करें।
- अपने दांतों को ब्रश करने और शेविंग के व्यवहार को बदलें।
- हाथ और ब्रश को साफ करते हुए पानी को बंद करें।
- अपने टूथब्रश को गीला करें और फिर नल को बंद करें।
- शेविंग करते समय नल को बंद करें एंव आवश्यकतानुसार शुरू करें।
- दिन में जल्दी या देर से अपने यार्ड और बाहरी पौधों को पानी दें। यह 100 लीटर तक पानी बचाता है।
- चल रहे नल के नीचे एक भरे हुए सिंक में सब्जियों और व्यंजनों को धोएं।
- पाईप/रबर टयूब के स्थान पर अपनी कार को साफ करने के लिए स्पंज और पानी की बाल्टी का उपयोग करें। यदि आप पाईप का उपयोग करते हैं, तो सुनिश्चित करें कि आप शट–ऑफ नोजल का उपयोग करें ताकि पानी लगातार नहीं बहे।
- शौचालय में फ्लश करने या फर्श को पोंछने के लिए वॉशिंग मशीन से बहता हुआ पानी इकट्ठा करें।
- एक पूर्ण भार पर अपनी वॉशिंग मशीन भरें।
- अपने पुराने वॉशर को उच्च्च दक्षता वाली मशीन से बदलें।
- दोहरे फ्लश शौचालय का उपयोग करें क्योंकि यह पूर्ण पर 6 लीटर और आधे फ्लश पर 3 लीटर का उपयोग करता है।
- पानी के नल में जलवाहक, प्रवाह जुड़नार और ज्ञानेंद्री का उपयोग करें।
- फसलों में प्रयोग हेतु अधिकतम वर्षा जल संग्रहण।

औद्योगिक क्षेत्र के लिए जल बचाव की युक्तियाँ

- विनिर्माण प्रक्रिया में उपयोग किए जाने वाले पानी की मात्रा बनाए रखें।
- पुर्ननवीनीकरण पानी को प्रक्रिया में या बागवानी, धोने या किसी अन्य उद्देश्य के लिए उपयोग करें।
- नियमित रूप से वाटर ऑडिट करें।
- तूफान के पानी की निकासी निर्माण और संग्रहीत पानी का पुनः उपयोग।

ऊर्जा का अपव्यय

घर और कार्यालय में ऊर्जा का अपव्यय

- गैर–स्टार मूल्यांकन किये उपकरणों का उपयोग करना।
- गर्म लैंप/ट्यूबलाइट/सजावटी रोशनी का उपयोग करना।
- जब उपयोग में न हों तो उपकरण चालू रखना।
- बार–बार फ्रिज के दरवाजे खोलना।
- सोते समय टीवी/कंप्यूटर ऑन रखना।
- फोन/लैपटॉप को 100% चार्ज करने के बाद चालू रखना।
- प्लग को हमेशा सॉकेट में रखना।
- अनावश्यक रूप से ए.सी./पंखे/कूलर चालू रखना।
- ए.सी. का अनियमित रखरखाव।
- जल तापन में ऊर्जा का अपव्यय।

सार्वजनिक स्थान पर

- रात को विज्ञापन होर्डिंग्स को चालू रखना।
- स्ट्रीटलाइट्स में बिजली की बर्बादी।
- स्ट्रीट लाइट के रूप में लैंप का उपयोग करना।

सड़क पर

- वाहन का अनियमित रखरखाव।
- ट्रैफिक सिग्नल में इंजन ऑन रखना।
- अनुचित ड्राइविंग तरीके।

- सार्वजनिक परिवहन का कम उपयोग।

ऊर्जा की बचत युक्तियाँ

- उपयोग में न होने पर उपकरणों को सख्ती से बंद करें।
- स्टार रेटेड उपकरणों का ही उपयोग करें।
- प्रकाश व्यवस्था के लिए एलईडी का उपयोग करें, वे 10–15 साल के जीवन के लिए 80% बिजली बचा सकते हैं।
- यदि आप कंप्यूटर को इस्तेमाल करते समय सोने की आदत रखते हैं तो कंप्यूटर को ऑटो–स्टैंडबाय मोड पर चालू करें।
- टीवी में ऑटो टर्नऑफ मोड रखें अगर आपको इसे देखते हुए सोने की आदत है।
- पूरी तरह से या उपयोग में नहीं होने पर सॉकेट से प्लग निकालें।
- कमरे में नहीं होने पर एसी/कूलर/पंखे चालू न रखें, वे कमरे को ठंडा करने के लिए नहीं हैं।
- बहुत आवश्यक नहीं होने तक, घर में सेंट्रल एसी सिस्टम स्थापित न करें।
- बिजली के उपकरणों के साथ–साथ वाहनों का रखरखाव सेवा नियमित रूप से करें।
- अपने गीजर पाइप को इंसुलेट करें।
- खुले हीटर में पानी गर्म न करें। कॉइल वॉटर हीटर के उपयोग से बचें।
- एक छोटे से परिवार के लिए गैस चूल्हे के लिए इलेक्ट्रिकल कुकिंग पैन/प्लेट एक अच्छा विकल्प है।
- खाना मध्यम आंच पर पकाएं। बर्नर को नियमित रूप से साफ करें। खाना ढके हुए बर्तन में ही पकाएं।
- पूरे कमरे में बिजली चमकाने के बजाय स्पॉट लाइटिंग का इस्तेमाल करें।
- दिन के समय प्राकृतिक धूप का उपयोग करें।
- आंतरिक दीवारों पर चिंतनशील पेंट का उपयोग करें।
- सोलर वॉटर हीटर, सोलर कुकर, सोलर रूफ टॉप पीवी सेल और अन्य नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग करें।

अपने फ्रिज के साथ अच्छी तरह से रखते हुए

- एनर्जी स्टार योग्य रेफ्रिजरेटर मॉडल ही खरीदें।

- रेफ्रिजरेटर और दीवार के बीच कम से कम 3–4 इंच का अंतर रखें।
- उपयोग के बिना अक्सर दरवाजा खोलने से बचें।
- रेफ्रिजरेटर तापमान सेटिंग्स समायोजित करें।
- रेफ्रिजरेटर में रखने से पहले गर्म खाद्य पदार्थों को ठंडा करने के पश्चात फ्रिज में रखें।
- फ्रिज को अधिकतम स्पीड/गति पर न चलाएं।
- रिसाव के लिए दरवाजा सील (गैसकेट) की जाँच करें।

सार्वजनिक स्थानों पर

- वाहन का नियमित रखरखाव।
- ट्रैफिक सिग्नल में इंजन ऑफ रखना।
- उचित ड्राइविंग विधियों को प्राप्त करें।
- सार्वजनिक परिवहन का उपयोग।

सड़क पर

- सार्वजनिक परिवहन का प्रयोग करें।
- साइकिल का उपयोग करें।
- सिग्नल पर इंजन बंद करें।
- वाहन का नियमित रखरखाव।
- सहज तरीके से ड्राइविंग।

उद्योग में

- अछूता भाप पाइप।
- भट्ठी में उपयोग करते समय राशन को हवा में बनाए रखें।
- नए/नवीनतम मशीन उपकरण का उपयोग।
- नियमित रूप से एनर्जी ऑडिट करें।
- अधिकतम उपयोग अक्षय ऊर्जा।

इलेक्ट्रॉनिक अपव्यय (ई–अपव्यय)

ई–कचरे की संरचना : लोहा और इस्पात – 50%, प्लास्टिक – 21%, अलौह धातु – 13%, बुध, आर्सेनिक, सीसा आदि।

ई–कचरे के स्रोत : आईटी और दूरसंचार उपकरण, बड़े घरेलू उपकरण, छोटे घरेलू उपकरण, उपभोक्ता और प्रकाश उपकरण, इलेक्ट्रिकल और इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, खिलौने और खेल उपकरण, चिकित्सा उपकरण, निगरानी और नियंत्रण उपकरण

ई–कचरे को कम करने के लिए बचत के टिप्स : इन्वेंटरी प्रबंधन, उत्पादन प्रक्रिया संशोधन, मात्रा में कमी

प्लास्टिक अपशिष्ट

प्लास्टिक अपशिष्ट उत्पादन के स्रोत : प्लास्टिक अब नियमित हो गया है और कुछ प्रतिशत में इसका उपयोग किया जा रहा है जैसा कि चित्र में दिया गया है। प्लास्टिक का इस्तेमाल करने और इसे फेंकने की हमारी दैनिक आदतें हमारे लिए एक गंभीर चिंता का विषय बन गई हैं।

प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन : प्लास्टिक कचरे का निपटान एक गंभीर चिंता का विषय है। पर्यावरण पर अपने प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए नई तकनीकों का विकास किया गया है।

प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन के लिए पारंपरिक प्रौद्योगिकी

1. पर्यावरण की दृष्टि से प्लास्टिक की पुनर्चक्रण : प्लास्टिक रीसाइक्लिंग को ऐतिहासिक रूप से चार सामान्य प्रकारों में विभाजित किया गया है– प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक और चतुर्धातुक।

पुनरावर्तन प्रक्रिया में शामिल कदम

चयन : रिसाइकलर्स / रिप्रोसेसरों को कचरे / स्क्रैप का चयन करना होता है जो रीसाइक्लिंग / पुर्नसंसाधन के लिए उपयुक्त होता है।

अलगाव : प्लास्टिक कचरे को बीईएस दिशानिर्देशों में वर्णित कोड के अनुसार अलग किया जाएगा।

प्रसंस्करण : चयन के बाद और पूर्ववर्ती अपशिष्ट (कारखाना अपशिष्ट) के अलगाव को सीधे पुर्ननवीनीकरण किया जाएगा। उपभोक्ता अपशिष्ट (प्लास्टिक कचरे का उपयोग किया गया) को धोया जाएगा, टुकड़े टुकड़े किया जाएगा, ढेर लगाया जाएगा, बाहर निकाला जाएगा और दानेदार बनाया जाएगा।

2. ऊहापोह : भस्मीकरण से प्लास्टिक कचरे के लैंडफिल की आवश्यकता कम हो जाती है, हालांकि, ऐसी चिंताएं हैं कि प्रक्रिया में वायुमंडलीय पदार्थों को वायुमंडल में छोड़ा जा सकता है। प्लास्टिक में ऊर्जा सामग्री में से कुछ की वसूली के साथ इंकिनरेशन कैंब का उपयोग किया जाता है। बरामद की गई उपयोगी ऊर्जा इस बात पर काफी हद तक भिन्न हो सकती है कि इसका उपयोग बिजली उत्पादन, संयुक्त

ताप और बिजली के लिए किया जाता है, या कोफुइलिंगोफ ब्लास्ट फर्नेस या सीमेंट भट्टों के लिए ठोस ईंधन के रूप में।

प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन के लिए नई तकनीक

1. पॉलिमर मिश्रित बिटुमेन रोड : प्लास्टिक कचरे का उपयोग करके सड़क बिछाने में उपयोग की जाने वाली तकनीक का एक संक्षिप्त विवरण अविभाजित दिया गया आंकड़ा है।

2. सीमेंट भट्ठा में प्लास्टिक कचरे का सह–प्रसंस्करण

- सह प्रसंस्करण अपशिष्ट द्वारा प्राथमिक ईंधन और कच्चे माल के प्रतिस्थापन का संकेत देता है।
- अपशिष्ट पदार्थ जैसे सह–प्रसंस्करण के लिए उपयोग किए जाने वाले प्लास्टिक कचरे को वैकल्पिक ईंधन और कच्चे के रूप में संदर्भित किया जाता है।
- सामग्री (AFR)।
- मौजूदा सुविधा में उपयोग की जाने वाली पुनर्प्राप्ति विधि के लाभों का उपयोग अन्य प्लास्टिक अपशिष्ट प्रथाओं पर निवेश करने और अधिक सुरक्षित भरने की आवश्यकता को समाप्त कर रहा है।

3. तरल अपशिष्ट में प्लास्टिक अपशिष्ट का रूपांतरण

- यदि आवश्यक हो तो पूरी प्रक्रिया बंद रिएक्टर पोत में की जाती है।
- 2700 से 3000 से. तक गर्म करते समय अपशिष्ट प्लास्टिक तरल–वाष्प अवस्था में परिवर्तित हो जाता है, जिसे एकत्र किया जाता है।
- तरल ईंधन के रूप में संघनन कक्ष।
- टैरी तरल अपशिष्ट हीटिंग रिएक्टर पोत से ऊपर–नीचे होता है।
- ऑर्गेनिक गैस उत्पन्न होती है जिसका उपयोग बिजली के उत्पादन के लिए निर्धारित दोहरे ईंधन डीजल जनरेटर में किया जा सकता है।

प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन के लिए उठाए गए कदम

अहमदाबाद रेलवे स्टेशन पर प्लास्टिक की बोतल की पेराई मशीन : यह मशीन 1000 बोतलें प्रति घंटे कुचलने की क्षमता रखती है। पहले वे लोगों को इन बोतलों को बेचने के लिए नियुक्त करते थे और प्रति माह 5,000–10,000 रुपये का भुगतान करते थे। लेकिन, अब जिस कंपनी ने बॉटल क्रशिंग मशीन की स्थापना की है, वह उन्हें 1,00,000 रुपये का वार्षिक पट्टा दे रही है। यह न केवल स्टेशन को साफ रखने

में मदद करती है बल्कि अतिरिक्त राजस्व भी कमाती है। The machine को 2 अक्टूबर को स्वच्छ भारत अभियान के हिस्से के रूप में स्थापित किया गया था।

बेंगलुरु रेलवे स्टेशन पर प्लास्टिक की बोतल की पेराई मशीन : दक्षिण पश्चिम रेलवे (SWR) के बेंगलुरु डिवीजन ने भी KSR शहर, यशवंतपुर छावनी और कृष्णराजपुरम स्टेशनों पर प्लास्टिक कचरे की बोतलों को कम करने के लिए बॉटलक्रशर स्थापित किए हैं। लोगों को रुपये का कैश बैक मिल रहा है।

निर्माण और विध्वंस अपशिष्ट

विध्वंस स्थल और बहाली योजनाएं बड़ी मात्रा में ठोस अपशिष्ट हैं। कंक्रीट और अन्य भवन निर्माण सामग्री का पुनर्चक्रण मुश्किल और असामाजिक है। अधिकांश निर्माण सामग्री और घटकों का पुनः उपयोग करना संभव है। विध्वंस अपशिष्ट विशाल है जिससे निर्माण कार्यों में कचरे को कुचल, संसाधित और पुनः उपयोग किया जा सकता है। कंक्रीट, लकड़ी, कांच और स्टील जैसी निर्माण सामग्री की रीसाइक्लिंग मुख्य रूप से की लागत को कम करने का प्रयास है। नई सामग्रियों का निर्माण और निर्माण और प्राकृतिक संसाधनों की खपत को कम करना।

निर्माण और विध्वंस अपशिष्ट के प्रबंधन के लिए तंत्र

1. अपशिष्ट की कमी

- साइट पर आपूर्ति को रोकने के लिए ''सुनिश्चित आवश्यकतानुसार'' आधार पर सामग्री सुनिश्चित करना आदेश दिया गया है।
- साइट पर अत्यधिक स्क्रैप कचरे के निर्माण को कम करें।
- क्षतिग्रस्त की पीढ़ी को कम करने के लिए सही भंडारण और निर्माण सामग्री का संचालन सुनिश्चित करना।
- संचालन की सही अनुक्रमण सुनिश्चित करना और व्यक्तिगत जिम्मेदारी सौंपना।

2. निर्माण और विध्वंस अपशिष्ट की यांत्रिक छँटाई प्रक्रिया

1. मैकेनिकल छँटाई 2. बार स्क्रीनिंग 3. चुंबकीय पृथक्करण 4. एयर क्लासिफायरियर

3. पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग

- ईंटों, पत्थर की शिलाओं, इमारती लकड़ी, नाली, पाइपिंग रेलिंग आदि का पुनः उपयोग एक संभव हद तक उनकी स्थिति पर निर्भर करता है।
- प्लास्टिक, टूटे हुए कांच, स्क्रैप मेटल आदि का उपयोग उद्योगों को पुनर्चक्रित करके किया जा सकता है।
- मलबे, ईंट, टूटे हुए प्लास्टर/कंक्रीट के टुकड़े आदि का उपयोग भवन निर्माण की गतिविधि के लिए किया जा सकता है, जहाँ ट्रैफिक भारी चलने वाले भार का गठन नहीं करता है जैसे, समतल करना, गलियों के नीचे।
- बड़े बेकार टुकड़ों को भरने के लिए भेजा जा सकता है।
- सैनिटरी लैंडफिल के ऊपर आवरण सामग्री के रूप में महीन सामग्री, जैसे, रेत, धूल आदि का उपयोग किया जा सकता है।
- उत्खनन के लिए मिट्टी का उपयोग रचनात्मक रूप से विकास के भूनिर्माण में और सिविल इंजीनियरिंग परियोजनाओं में निर्माण और स्क्रीनिंग/नॉइज एबेटमेंट बीम के निर्माण के लिए भी किया जा सकता है।

4. पुर्नप्राप्ति और भराई

- ईंधन या बिजली के रूप में उपयोग करने योग्य गर्मी में गैर–पुनर्नवीनीकरण अपशिष्ट पदार्थ का रूपांतरण।
- औद्योगिक अपशिष्ट स्टेबलाइजर– सामग्री का पुनः उपयोग में कोई मूल्य नहीं है, हालांकि लाभकारी उपयोग के लिए नियोजित किया गया है।
- पुनः प्राप्ति के लिए सार्वजनिक भरण क्षेत्रों पर पुनः उपयोग करें।
- लैंडफिल कम से कम पसंदीदा विकल्प है, हालांकि यदि आवश्यक हो तो सभी कानूनों और विनियमन पर विचार करने के बाद इसे वापस लेना चाहिए।

हरित पट्टी (ग्रीनबेल्ट) विकास, शहरी बागवानी एवं भू दृश्य निर्माण (लैण्डस्केपिंग)

जे.पी. सिंह एंव प्रदीप कुमार

भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

हरित पट्टी भूमि उस एक क्षेत्र को कहते हैं जो कि अधिकांशतया बहुधा बड़े शहरों के चारों ओर एक खुला स्थान आरक्षित रखा जाता है। हरित पट्टी नीति का मुख्य उद्देश्य यह है कि जो भूमि वृहत शहरी क्षेत्रों के चारों ओर पड़ी रहती है और इसमें निर्धारित क्षेत्र वानिकी, कृषि तथा वन्यजन्तुओं को आवासीय परिवेश प्रदान करना है एवम् इसके साथ ही पर्यावरण की दृष्टि से बहुत ही लाभकारी होता है।

हरित पट्टी के लाभ :

1. वायु प्रदुषण नियंत्रण : हरित पट्टी विकास में मुख्यतः बहुवर्षीय काष्ठीय प्रजातियों का रोपण किया जाता है। झाड़ी/वृक्ष, कार्बन डाई ऑक्साइड तथा वायु के दूसरे प्रदूषकों को अवशोषित कर उनका निराकरण करते हैं और ऑक्सीजन को वायु में निस्तारण करते हैं जिससे वायु की गुणवत्ता में सुधार होता है। एक हरित पट्टी विकास वायु से इन कणिका तत्वों को लेकर निराकरण कर सकती है।

2. शोर नियंत्रण : हरित पट्टी ध्वनि की तीव्रता को कम करती है, यह एक अवरोध का कार्य करती है। वृक्ष या तो ध्वनि को विक्षेपित, अपवर्तित या अवशोषित करते हैं जिससे इसकी तीव्रता कम हो जाती है। ध्वनि तीव्रता की कमी ध्वनि स्त्रोत से कितनी दूरी पर है उस पर निर्भर करता है। वृक्ष आर्द्रता तथा जलवायु को ठीक प्रकार से संशोधित कर सकती है, जो कि ध्वनि तीव्रता को प्रभावित करते हैं।

3. मृदा अपरदन नियंत्रण में सहायक : हरित पट्टी में विभिन्न प्रकार की वनस्पति रोपण से मृदा की गुणवत्ता में सुधार होता है तथा मृदा के कणों को बांधे रखती है फलस्वरूप यह जल अपवाह में भी सहायक सिद्ध होती है।

हरित पट्टी के प्रारूप को प्रभावित करने वाले कारक :

जलवायुवीय कारक जैसे कि वायु वेग, पारिस्थितिक तंत्र के मिलाने की क्षमता, वृक्षों की ऊंचाई तथा वितान, स्थलाकृति, भूमि उपलब्धता का आकार, स्त्रोत से दूरी, मृदा व जल गुणवत्ता, प्रकृति तथा प्रदूषकों का विस्तार।

हरित पट्टी में उपयोगी पादप प्रजातियां :

हरित पट्टी रोपण में विभिन्न प्रकार के पौधों को प्रयुक्त किया जाता है। कुछ पादप गंध को प्रभावहीन बनाते हैं, कुछ झाड़ियां सौम्यता लेकिन सक्रिय खुशबू रखती है। हरित पट्टी में मुख्य रूप से जारूल (लेजरस्ट्रोमिया स्पेसियोसा), कदम (एन्थोसिफेलस कदम्बा), आम (मेन्जीफेरा इंडिका), अमलतास (केसिया फिसटुला), गुलमोहर (डेलोनिक्स रिजिया), अर्जुन (टर्मिनेलिया अर्जुना), बहेड़ा (टर्मिनेलिया बिलेरिका), पलास (ब्युटिया मोनोस्पर्मा), जामुन (साईजिजियम क्युमिनाई), महोगनी (स्वीटीनिया महोगनी), नीम (एजेरेडिक्टा इंडिका), बकायन (मीलिया एजेडेरक), सीरस (एलबीजिया लेबक) आदि प्रजातियां लगाते है। कुछ प्रजातियों का निम्न वर्णन किया गया है।

1. गंध बबूल (एकेसिया फारनेसियाना) : यह एक मेक्सिकन झाड़ी या लघु वृक्ष है, इसमें पीले रंग के खुशबूदार पुष्प आते हैं। इसकी केनोपी अधिक समृद्ध नहीं होती लेकिन गंध को प्रभावहीन करने में काफी प्रभावी होता है। इसकी मुख्य बाधा इसका मौसमी व कांटेदार प्रकृति है। इसके पुष्प इत्र का स्त्रोत हैं। यह पूरे भारतवर्ष में मिलता है। इसकी जैविक बाड़ में भी लगाते हैं।

2. कनेर (नीरम इंडिकम) : यह झाड़ी भी काफी उपयोग में ली जाती है। इस झाड़ी का कैनोपी अधिक भरी हुई तो नहीं होती लेकिन वाहनों द्वारा जो प्रदुषण होता है उसे अवशोषित करने में काफी सक्षम है।

3. करंज (पोंगेमिया पिन्नाटा) : यह भी हरित पट्टी विकास में महत्वपूर्ण वृक्ष प्रजाति है जो बहुधा उपयोग में लायी जाती है। इसके बीजों से निकला तेल साबुन निर्माण तथा औषधियों हेतु प्रयुक्त होता है। पत्तियाँ चारे व खाद में उपयोग में ली जाती हैं।

4. नीम (एजेरेडिक्टा इंडिका) : नीम वृक्ष प्रायः भारतवर्ष में सभी स्थानों पर रोपण किया जाता है। इसकी पत्तियाँ व बीज औषधीय गुण वाले होते हैं। जो जैविक कृषि के मुख्य घटक हैं।

5. एकेसिया एरूकलीफार्मिस : यह एक सदाबहार वृक्ष है जो कि इसके सुशोभित लटके फिल्लोडस व सुन्दर हल्के पीले पुष्पों के लिए वृक्षवीथि में लगाया जाता है।

6. खसघास (वेटिवेरिया जिजेनोआइडिस) : यह घास गंध को निष्क्रीय करने में अच्छी मानी जाती है। यह खुशबू चिकित्सा (आरोमा थेरेपी) में एक मुख्य प्रजाति है।

पादप प्रजातियों के भौगोलिक, पर्यावरणीय, आकृतिक, शारीरीय तथा कार्यिकीय पहलू पादप प्रजातियों द्वारा धूल/गर्द को लेने में प्रभावित करते है। अतः शहरी क्षेत्रों में हरित पट्टी विकास के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :

1. पादप प्रजाति उस स्थल/दशा के अनुकूल होनी चाहिए जिससे सतत् रूप से उससे उत्पादन लिया जा सके।

2. वृक्ष प्रजाति का जो पतझड़ (लीफ लिटर) है वह शीघ्रता से अपघटन हो जाना चाहिए जिससे वह मृदा में जैविक पदार्थ को बढ़ा सके जैसे कि गंध बबूल, गुलमोहर, बबूल, नीम।

3. वृक्ष प्रजातियां जो कि नत्रजन स्थिरीकरण द्वारा मृदा को समृद्ध करने की क्षमता रखती हों जैसे कि दलहन कुल की प्रजातियां।

4. पर्यावरण के उद्‌देश्य तथा साथ ही मानवजनों की आवश्यकताओं की आपूर्ति हेतु जो बहुउद्‌देशीय वृक्ष प्रजातियां है उनका विशेष महत्व है। हमें यह ध्यान रखना होगा कि ये प्रजातियां वहाँ की स्थानीय आवश्यकताओं की आपूर्ति करे जैसे कि नीम, बकायन, करंज, सीरस आदि।

5. साथ ही इस तरह की बहुवर्षीय प्रजातियों का रोपण भी होना चाहिए जो कि परम्परागत रूप से सांस्कृतिक धार्मिक प्रथाओं में भी अपना स्थान रखती है जैसे कि आम, सिरस, बेल, सफेद आक आदि।

शहरी बागवानी/उद्यानिकीकरण :

शहरी बागवानी को शहरी उद्यानिकीकरण या शहरी कृषि के नाम से भी जाना जाता है। यह शहरी पारिस्थितिक पद्धति का भाग है जो शहरी पर्यावरणीय विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। शहरी बागवानी में सभी प्रकार एंव किस्मों के पौधे लगाए जाते है। इसके अतंर्गत अनेक बागवानी अवधारणाएँ आती है जैसे कि पात्र (कंटेनर) बागवानी, भीतरी या घर के अन्दर बागवानी, सामुदायिक बागवानी, हरित छतें आदि।

पात्र या कंटेनर बागवानी में आंगन छज्जे/बालकॉनी आदि में विभिन्न प्रकार के पात्रों में पौधे लगाये जा सकते है। जिसमें गमले, बालटियां, पुराने प्लास्टिक ड्रम व टायर आदि पुरानी चीजें इस्तेमाल कर सकते हैं। घर के अन्दर भी बागवानी कर सकते हैं। यदि छतों पर स्थान उपलब्ध है यहाँ भी अलग अलग तरह के पौधे लगाए जा सकते हैं जिनमें छोटे फलदार पौधे, सब्जियाँ तथा फूल व छोटी सजावटी झाड़ियाँ। सामुदायिक बागवानी के अंतर्गत, जहाँ स्थान उपलब्ध है वहाँ पर विभिन्न प्रकार के पौधें लगाए जा सकते हैं।

शहरी बागवानी के अनेक प्रकार के पर्यावरणीय, सामाजिक व स्वास्थ्य संबंधी लाभ है। जैसे कि स्थानीय खाद्य स्त्रोत, परिवार व समुदायों को साथ लाना, शहरी बच्चों को पर्यावरण व जैवविविधता संरक्षण

के संबंध में शिक्षित करना, शहरों में हरित स्थलों का सृजन, मृदा अपरदन को रोकना, तुफान जल अपवाह रोकना, मनोरंजन स्थलों का सृजन करना, जैव विविधता को बढ़ावा देना।

भू दृश्य निर्माण (लैण्डस्केपिंग) :

लैण्डस्केपिंग सदियों से प्रचलन में रही है, इसका तात्पर्य है कोई भी गतिविधि जो कि भूमि के एक क्षेत्र की दृश्यमान विशेषताओं को रूपान्तरित करती है जिसमें कि जैविक तत्व जैसे कि पेड़–पौधें जो कि सामान्यरूप से बागवानी कहते है। बागवानी पेड़–पौधें उगाने की एक कला एवं शिल्प है जिसका उद्देश्य भूदृश्य में सुन्दरता का सृजन करना है। इसके साथ ही लैण्डस्केपिंग में जो प्राकृतिक तत्व जैसे कि भू–आकृति, भू खंड की आकार व ऊंचाई, जलाशय तथा अमूर्त तत्व जैसे कि मौसम व प्रकाशीय दशाएं आदि लैण्डस्केपिंग विभिन्न प्रयोजनों पर निर्भर करती है। एक सफलतम लैण्डस्केपिंग के लिए उस स्थल के प्रमुख तत्वों की स्पष्ट समझ आवश्यक है। इसके लिए विभिन्न प्राकृतिक विशेषताएं जैसे कि भू–आकृति, स्थलाकृति, मृदा गुणवत्ता, वायु, विद्यमान वायु, प्राकृतिक पेड़–पौधें व जन्तु की जो प्रणाली है उन सभी का ध्यान रखना चाहिए। लैण्डस्केपिंग में प्रायः पादपों, भू–आकृति व संरचनाएं पर ध्यान केन्द्रित करते है कि किस तरह पौधों का लगाया जाए, भू–आकृति को किस तरह का आकार दिया जाए तथा कौनसी उपयुक्त संरचना का निर्माण किया जाए। अतः लैण्डस्केपिंग एक कार्य है जिसमें विज्ञान और कला दोनों का होना बहुत जरूरी है।

यदि पश्चिमी राजस्थान की बात करते हैं तो हमारे यहाँ की देशीय पादप झाड़ियां/वृक्ष जैसे कि कैर, रोहिडा, फोग, झाऊ, लाणा, खारा लाणा आदि जब पुष्पन अवस्था में होते हैं तो प्राकृतिक भू दृश्य में एक अनुपम छवि दर्शाते हैं जो कि अति मनमोहक होती है। इसलिए पादप प्रजाति चयन में स्थानीय अनुकूलित प्रजातियों को समुचित स्थान मिलना चाहिए, जिससे उनका सतत् उपयोग तो होगा ही इसके साथ ही इन महत्वपूर्ण पादप प्रजातियों के सरंक्षण में भी महत्वपूर्ण योगदान रहेगा।

Cleaner Production & Waste Minimization

Gujarat Cleaner Production Centre

ENVIS Resource Partner: Cleaner Production & Clean Technology

Supported by: Ministry of Environment, Forest & Climate Change, Government of India

CLEANER PRODUCTION (CP) / WASTE MINIMIZATION (WM) CONCEPT & PRINCIPLES - स्वच्छ भारत

WHAT IS WASTE?

Waste (or **wastes**) is unwanted or unusable materials. Waste is any substance which is discarded after primary use, or is worthless, defective and of no use. There are two types of waste; one is Domestic Waste which generates at household lever while other one is Industrial Waste which generates from Industries.

Type of waste: 1. Domestic Waste (Residential, Commercial) 2. Industrial Waste are classified into Solid and Liquid waste

Solid Residential Waste: Electronic, Food, Plastic, Statioery, Biomedical, C&D, Furniture, Waste from Temple, Animal Waste, Street Sweeping etc.

Commercial Waste: sources: Institutions, Small scale Industries, Hotels, Markets, Slaughter houses, Hospitals, Medical, Temples etc.,: Electronic, Food, Plastic, Stationery, Biomedical, C&D, Furniture, Waste from Temple.

Industrial Waste: Which can be classified into Hazardous and Non-Hazardous: Hazardous Waste includes: Sludge from ETP/STP/CETP, Spent Acid, Oil and Grease Skimming, Spent Solvent, Spent Catalyst, etc. and Non-Hazardous Waste includes: Food Waste, Plastic Waste, Statinery Waste, C&D Waste, Furniture Waste, etc.

Liquid Residential & Commoercial Waste: Domestic Sewage from Residential & Commercial area, e.g. domestic washings, chemicalas, oils, wastewater from ponds, etc**. Industrial Liquid Waste**: Effluent or wastewater from industries, e.g. wastewater from different type of manufacturing industries**.**

END-OF-PIPE (EOP) TREATMENT & ITS DRAWBACKS: Conventional Waste Management is collect, treatment and disposal. It is a linear loop and requires huge capital investments as well as operation and maintenance.

INCEPTION OF CLEANER PRODUCTION (CP) CONCEPT

The concept of Cleaner Production (CP) was developed in the year 1992, during the preparation of the Rio Summit as a programme of United Nations Environment Programme (UNEP) and United Nations Industrial Development Organization (UNIDO) with aim to reduce environmental impact of the industries. Cleaner Production is a pro-active and integrated solution to pollution problems by eliminating or reducing pollutants at the source during the course of production processes. Cleaner production, with great vitality and buoyancy, begins a new era of "Pollution Prevention" in the history of environmental protection and will become the best approach for pollution control in this new century. Cleaner Production concepts have consequences for the whole life cycle of a product and can foster improvements in product design, selection of raw materials, efficiency in production and/or energy usage, safety during manufacture and consumer use, reparability, and recyclables. More specifically, Cleaner Production aims to reduce the consumption of natural resources per unit of production, the amount of pollutants generated, and their environmental impact, while making alternative products and processes financially and politically more attractive. *Cleaner Production is a forward-looking, 'anticipate and prevent' philosophy.*

BENEFITS OF CLEANER PRODUCTION: In EOP concept, there is a huge investment as mentioned above and there is no return on investment. However, in the approach of CP/WM there is a calculated payback period and the investment made will be return to the investor, since it is a closed loop, i.e., reduce, reuse, recycle and recover.

WASTE MINIMIZATION: Waste minimization is a set of processes and practices intended to reduce the amount of waste produced. By reducing or eliminating the generation of harmful and persistent wastes, waste minimization supports efforts to promote a more sustainable society. Waste minimization involves redesigning products and processes and/or changing societal patterns of consumption and production.

Rethink: First of all you have to rethink, it is the first step in the Waste Reduction hierarchy. Rethink the ways you are currently making choices, because there many simple and eco-friendly options. For instance an in-home composter for your organic waste instead of tossing your food scraps in the garbage. The more we can complete the first step, the less we have to Refuse, Reduce, Reuse & Recycle.

Refuse: As a consumer we always have a choice, we could for instance just say no! We can make better choices and learn how to shop smarter, this will help our planet! Refuse plastic grocery bags by bringing your own reusable bags to a store or refuse to buy items with excessive packaging is a good example.

Reduce: It sounds difficult to reduce our eco-footprint, however, there are healthy and smart alternatives we can make. We can pack a zero-waste lunch or bike to work instead of taking our car? Reducing the amount of waste we use and making greener choices, reduces the overall amount we take our landfill!
Reuse: Not every item that you want to bring to the recycle or throw away is considered "junk"? Through the eyes of another, it may not be waste, so think before you throw it away! Reuse it.
Recycle: Recycling is the last step in our waste reduction hierarchy. If you couldn't rethink it, refuse it, reduce it, reuse it and then recycle it. Recycling is processing used materials (waste) into new, useful products. This is done to reduce the use of raw materials that would have been used. Recycling also uses less energy and great way of controlling air, water and land pollution. Effective recycling starts with household (or the place where the waste was created).

CLEANER PRODUCTION: TOOLS

Cleaner Production tools are grouped into three major categories
1. Waste Reduction at Source
2. Recycling; and
3. Product Modification

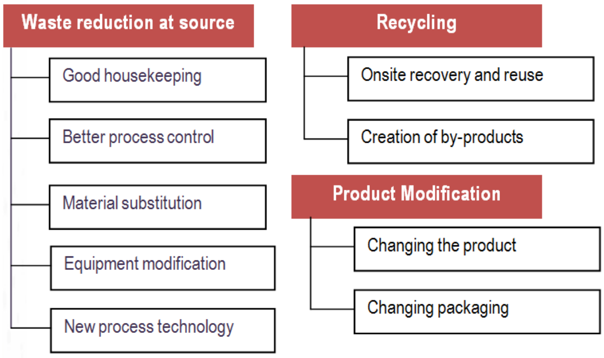

CLEANER PRODUCTION: METHODOLOGY

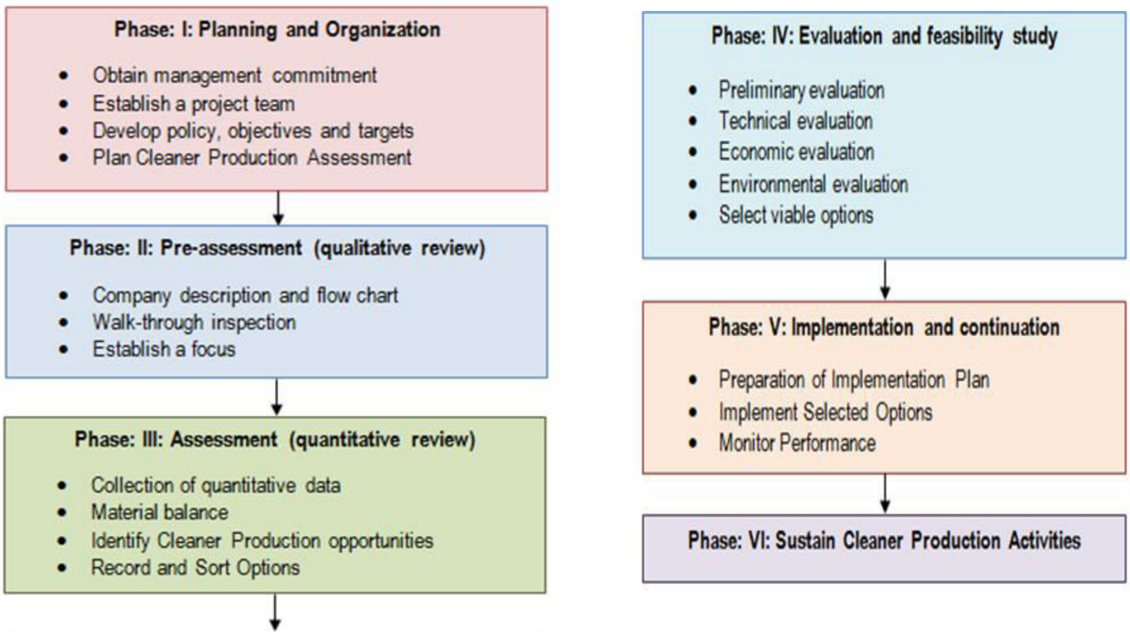

APPLICATION OF CLEANER PRODUCTION TOOLS

WASTAGE OF WATER

Water Saving Tips for Residential and Commercial Area

- Always turn off running water
- Take shorter showers
- Eliminate any and all leaks
- Reduce the flow of toilets & showerheads
- Check faucets and pipes for leaks. A small drip from a worn faucet washer can waste 35 liters of water per day. Larger leaks can waste hundreds of liters.
- Use a Broom not a Hose to Clean driveways and walkways.
- Turn off sink faucet while scrubbing dishes and pots.
- Change your teeth brushing and shaving behaviors
- Turn off The Water While Soaping Hands and Brushing Teeth.
- Wet your toothbrush and then turn the tap off
- Turn the tap on and off while shaving
- Water your Yard and outdoor plants early or late in the day to Reduce Evaporation. It saves water upto 100 litres.
- Wash vegetables and dishes in a filled sink instead of under a running tap.
- Use a sponge and bucket of water to clean your car rather than a hose. If you use the hose, ensure you use a shut off nozzle so the water is not constantly running.
- Collect rinse water from the washing machine for flushing the toilet or mopping the floor.
- Fill your washing machine on a full load
- Replace your old washer with a high efficiency machine
- Use dual flush toilet as it use 6 liters on full and 3 liters on a half-flush.
- Use aerators, flow fixtures and sensors in water tap
- Maximum harvest rain water

Water Saving Tips for Industrial Area

- Maintain quantity of water to be used in manufacturing process
- Reuse recycled water into process or for gardening, washing or any other purpose
- Regularly carry out water audit
- Construct storm water drain and reuse the stored water

WASTAGE OF ENERGY

Wastage of Energy at Home & Office

- Using Non-star rated appliances
- Using incandescent lamps / tube lights / decorative lights
- Keep appliances running when not in use
- Frequently opening the refrigerator doors
- Keeping TV / Computers ON while sleeping
- Keeping ON charging phones / laptops after charging 100%
- Keeping the plugs always in the socket
- Unnecessarily keeping AC / fans / coolers running
- Irregular maintenance of ACs
- Waste of energy in water heating

At Public Place

- Keeping the advertising hoardings ON throughout the night
- Waste of power in streetlights
- Using incandescent lamps as street lights

On Road

- Irregular maintenance of vehicle
- Keeping engine ON in traffic signals
- Inappropriate driving methods
- Less use of public transport

Energy saving tips

- Strictly Switch off appliances when not in use
- Use Star rated appliances only
- Use LEDs for lighting, they can save up to 80% power, having a life of 10-15 years
- Turn computers on Auto-standby mode if you have habit of sleeping while using it
- Keep Auto turnoff mode in TV if you have habit of sleeping while watching it
- Remove plugs from socket when charged fully or NOT in use
- Do not keep the AC / Cooler / Fans running when not in room, they are not meant to cool the room
- Until not very necessary, do not install Central AC system in home
- Regularly do maintenance service of electrical appliances as well as vehicles
- Insulate your geyser pipes
- Do not heat the water in open heater. Avoid using coil water heater.
- Electrical cooking pans / plates are a good option to gas stove for a small family.
- Cook on medium flame. Regularly clean the burners. Cook in covered utensil only
- Use spot lighting instead of lightning the full room
- Use natural sunlight during the day time
- Use reflective paints on interior walls
- Use Solar Water Heater , solar cooker, solar roof top PV cell and other renewable energy sources

Keeping up well with your refrigerator

- Buy Energy Star qualified refrigerator models only
- Keep at least 3 – 4 inches gap between refrigerator and wall
- Avoid opening the door frequently without use
- Adjust the refrigerator temperature settings.
- Allow hot foods to cool before placing them in the refrigerator.
- Keep the refrigerator full, NOT overfilled though.
- Check door seals (gaskets) for leakages

At Public Places

- Regular maintenance of vehicle
- Keeping engine OFF in traffic signals
- Acquire appropriate driving methods
- Use of public transport

On Road

- Use Public Transport
- Use bicycle
- Turn engine off on signals
- Regular maintenance of vehicle
- Driving in smoother way

In Industry

- Insulated steam pipe
- Maintain Air to fuel ration while using in furnace
- Use of new/latest machine equipments
- Carry out energy audit regularly
- Maximum use renewable energy

ELECTRONIC WASTE (E-WASTE)

Composition of E-waste: Iron & Steel - 50%, Plastics - 21%, Non-ferrous metal - 13%, Mercury, Arsenic, Lead etc.

Sources of E-waste: IT & Telecom Equipments, Large Household Appliances, Small Household Appliances, Consumer and Lighting Equipments, Electrical & Electronic Tools, Toys and Sports Equipments, Medical Devices, Monitoring and control instruments

Saving tips for minimization of E-waste: Inventory management, Production process modification, Volume reduction, Recovery and reuse, Sustainable product design

Valuable Metals That Could be recovered from a Mobile Phone (Example)

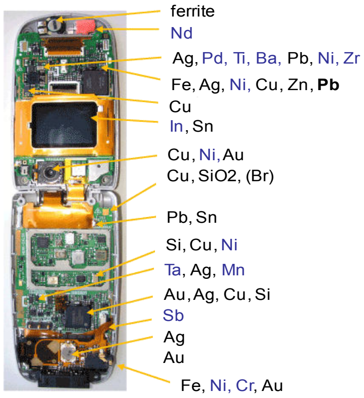

Recycling Process of Old Laptop (Electronic Chips can be used for many other applications)

Same way waste from the other electronic items such as computer, television, battery are being segregated and then recycled and reuse. There are total 150 recyclers in India who are registered for recycling of E-waste in India.

Quantity of Non-ferrous Metals Included in One Mobile Phone (Units in Gram)	
Gold	0.028
Silver	0.189
Copper	13.71
Palladium	0.014

FOOD WASTE

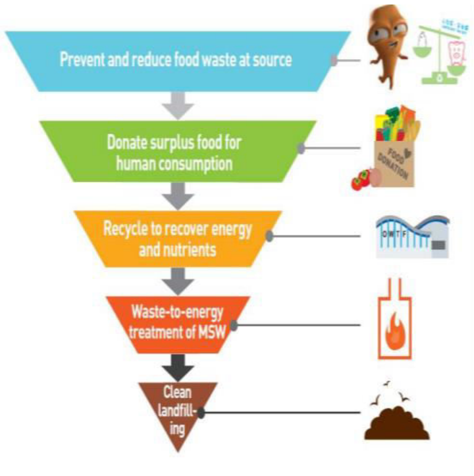

Causes of Food Waste

- Lack of appropriate planning
- Purchase and preparation of too much food
- Managerial, financial and technical constrains
- Over-preparation of food in restaurants, hotels and the food service industry
- Over-merchandizing and over-ordering in food stores and supermarkets
- Consumer behavior

Tips for minimizing Food Waste

At the store

- Shop smartly: Avoid impulse buys, use all before buying more.
- Buy exactly what you need: purchase the exact amount you will use.
- Be realistic.
- Buy funny-looking produce.

At home

- Monitor what you throw away
- Plan your meals around the products that are closest to their expiration.
- Designate one dinner each week as "use it up" meal.
- Eat leftovers!
- Use it all.
- Store better.
- Understand expiry dates.

During mealtime

- Check in with your belly.
- Always taste before taking a whole lot.
- Split the dish

At restaurants:

- Take home leftovers
- Split the dish
- Check in with your belly.
- Always taste before taking a whole lot.

Educate other people: Being aware of the issue of food waste can help make people more attentive to wasting less

Treatment of Food waste

1. Segregation & Door to door collection: Households may be given a set of two domestic bins one time only and motivated to segregate wet and dry waste at source and Panchayat/municipal Corporation may arrange door to door collection of wet and dry waste separately.

2. Managing recyclables in small villages: In small villages where door to door collection of wet and dry waste is not considered feasible, community bins may be provided at strategic locations in the village. The community may be motivated to deposit their dry recyclable waste into these bins. Panchayat may arrange weekly collection of recyclable from these bins and store the same in a shed and periodically sell the recyclables to recyclers.

3. Organic waste composting: Organic waste can be recycled at the household level to produce animal feed, biogas (i.e. anaerobic digestion small-scale; anaerobic digestion of organic waste) or compost. Among these options, composting is probably the most simple and common method for recycling household organic waste. Composting is the process of optimizing the environment in the waste for microbial activity to decompose organic matter into valuable nutrients for the soil. Household composting involves the following three stages: waste preparation, degradation of waste and finishing of waste.

PLASTIC WASTE

Sources of Plastic Waste Generation: Plastic is become now routine and it is being used in some percentage as given in the Image. Our daily habits of using plastics and throwing it become a serious concern for us.

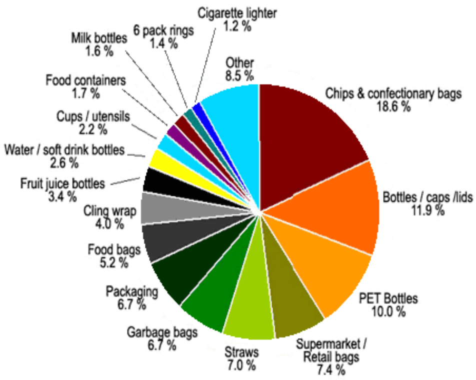

Plastic Waste Management: Disposal of plastic waste is a serious concern in India. New technologies have been developed to minimize their adverse effect on the environment

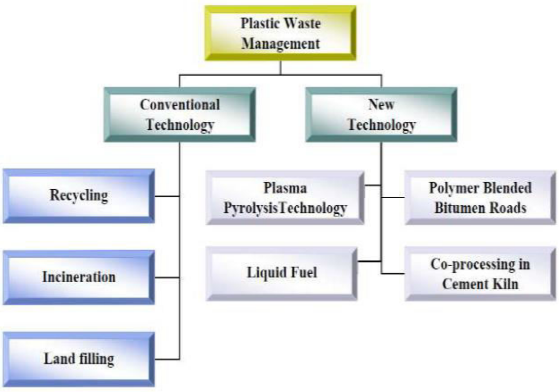

Conventional Technology for Plastic Waste Management

1. Recycling of plastics through environmentally sound manner: Plastics recycling technologies have been historically divided into four general types- primary, secondary, tertiary and quaternary.

Steps Involved in the Recycling Process

Selection: The recyclers/reprocessors have to select the waste/scrap which is suitable for recycling/ reprocessing.

Segregation: The plastics waste shall be segregated as per the codes mentioned in the BiS guidelines.

Processing: After selection and segregation of the preconsumer waste (factory waste) shall be directly recycled. The post consumer waste (used plastic waste) shall be washed, shredded, agglomerated, extruded and granulated.

2. Incineration

Incineration reduces the need for landfill of plastics waste, however, there are concerns that hazardous substances may be released into the atmosphere in the process. Incineration can be used with recovery of some of the energy content in the plastic. The useful energy recovered can vary considerably depending on whether it is used for electricity generation, combined heat and power, or as solid refuse fuel for co-fuelling of blast furnaces or cement kilns.

New Technology for Plastic Waste Management

1. Polymer Blended Bitumen Road: A brief description of the technique used in laying road using plastic waste is in below given figure**.**

2. Co-processing of Plastic waste in Cement Kiln

- Co-processing indicates substitution of primary fuel and raw material by waste.
- Waste material such as plastic waste used for co-processing are referred to as alternative fuels and raw material (AFR).
- One of the advantages of recovery method used in existing facility is eliminating the need to invest on other plastic waste practices and to secure land filling.

3. Conversion of Plastics Waste into liquid fuel

- The entire process is undertaken in closed reactor vessel followed by condensation, if required.
- Waste plastics while heating up to 2700 to 3000 C convert into liquid-vapour state, which is collected in condensation chamber in the form of liquid fuel.
- The tarry liquid waste is topped-down from the heating reactor vessel.
- The organic gas is generated which can be used in dual fuel diesel generator set for generation of electricity.

Steps taken for Plastic Waste Management

Plastic bottle crushing machine at Ahmedabad Railway Station: This machine has the capacity to crush 1000 bottles per hour. Earlier they used to employ people to collect these bottles and pay Rs 5,000-10,000 per month. But, now the firm that has installed the bottle crushing machine is paying them an annual lease of Rs 1,00,000. This is not only help maintain the station clean but also earn additional revenue. The machine was installed on October 2 as part of the Swachh Bharat Abhiyaan.

Plastic bottle crushing machine at Bengaluru Railway Station

The Bengaluru division of South Western Railway (SWR) has also installed bottle crushers at KSR city, Yeshwantpur,.. Cantonment and Krishnarajapuram stations to minimize the plastic waste bottles. People are getting cash back of Rs. 5 on their e-wallet if they drop a used water bottle in the bottle crusher installed at railway station.

STATIONERY WASTE

One of the primary concerns of most businesses and organizations is being cost effective and ensuring that the company funds are put to good use. The right way to achieve this is not by reducing procurement but by reducing wastage and misuse of office supplies and stationery, which can actually punch a big hole into the company funds and increase overhead costs in the long run. The two main areas of office supplies that the generally more prone to get wasted are stationery and paper. Stationery includes items like pens, notebooks, notepads, pencils, white papers, envelopes, staplers, highlighters, etc. You'll have to make sure the office is constantly stocked while also keeping track of what has been spent. Major stationery waste is wasted papers from households, schools, offices etc.
It is estimated that more than 3 Gallons (3 x 3.78) = 11.35 Litres of Water is required to make a Single Sheet of Paper.

Tips for Minimizing Stationery Waste

1. **Prevent cause theft:** Businesses can lose a sizeable amount of money every year by employees casually taking their office supplies home with them, deliberately or not. Set an example for your colleagues by keeping your office space organized and well-stocked. They will learn from you.
2. **Take action for serious theft:** This can be a tricky situation, but it is important to discourage theft by taking action against employees caught stealing expensive office supplies and stationery. Let them know that they have violated workplace regulations and tactfully ask them to pay for lost/damaged stationery.
3. **Restrict Access supplies:** Restrict access to office supplies by introducing paperwork. Requests for stationery should be sent via email or by filling in an e-form. Maintain an online record of these requests and share the information with a superior.
4. **Reuse Paper:** Encourage employees to use both sides of the paper before sending them to the shredder. Make notepads out of one-sided paper.
5. **Minimize the use of paper:** Send documents through email rather than printing them. Do not print employee handbooks and other documents; instead store them online and share links when required. Reduce margin settings to save space when printing.

Reuse of Recycle Paper: In India more than 550 mills make use of waste paper as the main raw material for making paper, paperboard and for production of newsprint. Waste paper is collected indigenously and also imported. In this country, every year around three million tonnes of waste paper is recovered, which is only about 20% of the total. When we compare this with other countries, the amount is comparatively very low. For instance, developed countries like Germany recovers 73% waste paper, Sweden 69%, Japan 60%, USA 49% etc.

BIO-MEDICAL WASTE

Any waste which is generated during the diagnosis, treatment or immunization of human beings or animals or in research activities pertaining thereto or in the production or testing of biological and including categories mentioned in Schedule I of the Biomedical Waste Management Rules, 2016. **Methods of disposal of bio-medical waste and their segregation according to Bio-medicaal Waste (M & H) Rules, 2016: Steps for Bio-Medical Waste Management.**

CONSTRUCTION & DEMOLITION WASTE (C & D WASTE)

Demolition sites & restoration schemes are large amounts of solid waste. Recycling of concrete & other building materials is difficult & uneconomical. It is possible to reuse most of the building materials & components. As the volume of demolition waste is huge allowing the waste to be crushed, processed, & reused as aggregate in building works. The recycling of construction materials like concrete, timber, glass, & steel is primarily an attempt to reduce the cost of production of new materials & construction & also reduce the consumption of natural resources.

Mechanism for management of C & D Waste

1. Reduction of Waste

- Ensuring materials are ordered on an "as needed" basis to prevent over supply to site;
- Minimize the creation of excessive scrap waste on site;
- Ensuring correct storage and handling of construction materials to minimize generation of damaged materials/waste;
- Ensuring correct sequencing of operations and assigning individual responsibility

2. Mechanical Sorting Process of Construction & Demolition Waste

1. Mechanical Sorting 2. Bar Screening 3. Magnetic Separation 4. Air Classifier

3. Recycling and Reuse

- Reuse (at site) of bricks, stone slabs, timber, conduits, piping railings etc. to the extent possible and depending upon their condition;
- Plastics, broken glass, scrap metal etc. can be used by recycling industries;
- Rubble, brick bats, broken plaster/concrete pieces etc. can be used for building activity, such as, leveling, under coat of lanes where the traffic does not constitute of heavy moving loads;
- Larger unusable pieces can be sent for filling up
- low-lying areas;
- Fine material, such as, sand, dust etc. can be used as cover material over sanitary landfill.
- Excavated soil can also be used creatively in the landscaping of developments and for the construction of embankments and screening/noise abatement beams in civil engineering projects.

4. Recovery and Landfill

- Conversion of non-recyclable waste material into usable heat in form of fuel or electricity.
- Industrial Waste Stabilizer- Material having no value in reuse, although employed for beneficial use in stabilization
- Reuse public fill at public filling areas for reclamation.
- Landfill is the least preferred option although if required it should done after considering all the laws and regulation.

Re-use of C&D Waste

Alkali-activated building materials can be made from C&D Waste

Other reuse options…..

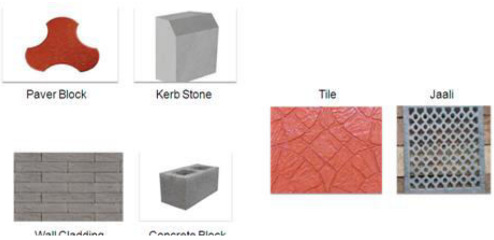

Construction Materials from processed C&D waste

Street furniture from processed C&D waste

Pre-cast structures from processed C&D waste

LABORATORY WASTE

Industrial Laboratories and Environment

Research, teaching and clinical laboratories produce a variety of waste chemicals that may be subject to regulatory management standards. If improperly managed in the laboratory, waste chemicals could pose a risk to human health and the environment.

Laboratory Waste Management

Practice for Laboratory Waste Management covers the following topics:

- Collection of waste chemicals
- Container Labeling and Marking
- Container Management
- Unused, Unopened, or Unknown Chemicals
- Chemical Inventory
- Sink Disposal of Chemical Substances

1. Collection of waste chemicals: Waste chemicals collected either during the operation of a process or otherwise accumulated in the laboratory must be placed into containers that are in good condition, compatible with the contents, and able to contain the contents without leaking.

2. Container Labeling and Marking

Container Contents

- Containers used to collect waste chemicals must be clearly marked with the words "Waste (name of chemical)"
- Containers must be marked or labeled at the time waste is first placed in the container

3. Container Management

Waste Collection Dates

- Containers must have an "open date" listed on the container label, and when full or no longer being filled, a "fill date".
- The "open date" is the earliest date that waste is placed in the container whereas the "fill date" is the date that the container is filled and will no longer be used to accumulate waste.
- Unused, unwanted, or unopened chemicals that are to be discarded must be labeled with the words "Waste (name of chemical) and the date that they were determined to be unwanted or unusable.
- Small or odd shaped containers that are difficult to place a label on must be placed in a larger sealed container and labeled on the outside. (zip-lock bags, plastic containers, etc.)
- Containers holding chemicals that cannot be identified by chemical name, chemical constituents, or process generating the waste must be labeled as "Waste Unknown" with the date that they are considered to be no longer needed.
- Waste containers must be compatible with their contents.
- Waste containers must be kept closed except when adding or removing wastes.
- Waste containers should be kept clean with no visible contamination on the outside of the container.
- Waste labels and markings must be readable and not defaced.
- Areas where waste chemicals are accumulated must have secondary containment sufficient to collect any incidental spills from container failure.
- Waste containers should not be overfilled. Full containers must have at least a 10% headspace to allow for expansion.
- Filled waste containers must be stored in a secure area under the control of the operator
- Waste containers must be stored for pick up in the room in which they were generated
- Filled containers of chemical wastes must be removed from the laboratory within 90 days of the accumulation start date or the date a chemical becomes a waste. In addition, no more than 190 liters of chemical waste may be stored in a laboratory at any one time.

4. Unused, Unopened, or Unknown Chemicals: Chemicals identified by the Lab as no longer needed and that are unused, unopened, or unknown must be removed from the laboratory no later than 30 days after being designated as no longer needed.

5. Chemical Inventory: Designated personnel need to develop and maintain a chemical inventory. The inventory should be reviewed and updated quarterly: Chemicals identified as expired or no longer needed should be

- removed from storage
- placed into the Laboratory's chemical waste storage area
- properly labeled and marked, and
- removed from the laboratory within 30 days.

6. Sink Disposal of Chemical Substances

- Certain classes of chemicals cannot be poured down the drain – they must be collected for disposal as hazardous waste. Some of which include:
- Any flammable liquids with a flashpoint less then 140°F - including but not limited to any quantity of gasoline, kerosene, naptha, benzene, toluene, xylene, fuel oil, ethers, ketones, aldehydes, chlorates, perchlorates, bromates, carbides, hydrides, and sulfides. This list does not include aqueous solutions of compounds that have a flashpoint greater than 140°F.
- Explosive chemicals
- Mercury and mercury compounds
- Radioactive materials
- Photographic used fixer solutions unless they are first passed through a silver recovery system
- Rinsate from highly hazardous P-listed wastes or any other chemical that would be classified as a hazardous waste.
- Ethidium Bromide buffer solutions at concentrations greater than 10 µg/ml etc

FURNITURE WASTE

1. Donate the item: If you don't need your old furniture, donate it to charity or give it to someone who needs it. There are several websites, such as Freecycle that allow you to list unwanted items that people can collect from you if they are interested. You can also ask a store to pick it up, or you can take it to their store location and drop it off.

2. Sell the item: If you're planning to get rid of some other items, add your furniture to a garage sale or neighborhood yard sale event. You'll generate some cash. Just make sure they're still in usable condition. You can also sell your furniture on websites such as Craiglist, OLX etc.

3. Refinish or reupholster it: Before you decide to get rid of it, consider refinishing your furniture to get a brand new look. Take the furniture to a professional restoration expert. Use a little imagination and turn your old furniture into something new and amazing. Some stores are also accepting old furniture when you are buying a new one. They will deduct the prize amount of old furniture from the total prize of new furniture.

4. Repurpose it: Some creative ways to repurpose your old furniture:

- Use a ladder to hang towels or blankets.
- Reinventing an old door as a headboard for your bed.
- Repurpose a wooden packing crate as a side table to stack magazines.
- Reuse old lockers as shoe storage.
- Elevate your mattress with wood pallets.
- Use old travel trunks as bedside tables, coffee tables, side tables or display pieces.

5. Recycle it

You can recycle the material of the furniture itself. If it's made of wood, metal or some other recyclable material, you can take it straight to your nearest large recycling bin or community recycling facility.

WASTE FROM TEMPLE

Temple waste mainly consists of organic waste like flowers, leaves, coconut shells, residues of inscence sticks, fruits etc. which find their way ultimately into bins or some water bodies and thereby result in the pollution and hygiene problems. The major waste generates from the temple is coconut shell.

Utilization of coconut Shells: Coconut is one of the extensively used offering in the temples and after removing its edible portion, the shell is generally thrown into the dustbins. These shells ultimately find their way into some water body or on some open areas/places thereby causing environmental problems. There is a vast scope of using the coconut shell as a potential or a replacement material in the construction industry. Nagarajan et al; (2014) worked on the utilization of coconut shell in place of cement in concrete as cement emits large amount of CO_2. The collected coconut shells were burnt in open air (uncontrolled combustion) for three hours and the acquired product was incinerated in muffle furnace at 800° C for 6 hours to produce coconut shell ash. They concluded from their studies that the ash thus obtained can be used as partial replacement of cement.

Utilization of Flower Waste: Apart from coconut shell, the foremost used offering in temples is flower. After fulfilling their purpose, these flowers also become environmental menace just like the other offerings. Such flower waste can be

used in different manners to produce valuable products and thereby may also contribute towards saving the environment from pollution caused by inadequate disposal of flowers offered to the deities. Techniques like Vermicomposting, composting, extraction of essential oils, making of holi colours and bio-gas generation can be done for utilization of Flower Waste.

PRESENT WAY FOR CONSERVATION OF ENVIRONMENTAL PARAMETERS THROUGH CLEANER PRODUCTION/WASTE MINIMIZATION AND WASTE DISPOSAL

Storm Water Drainage

A storm drain, storm sewer, surface water drain/sewer, or storm water drain is infrastructure designed to drain excess rain and ground water from impervious surfaces such as paved streets, car parks, parking lots, footpaths, sidewalks, and roofs. Storm drains vary in design from small residential dry wells to large municipal systems.

Different type of Strom water drains

Reuse of Collected water in SWD (Storm Water Harvesting)

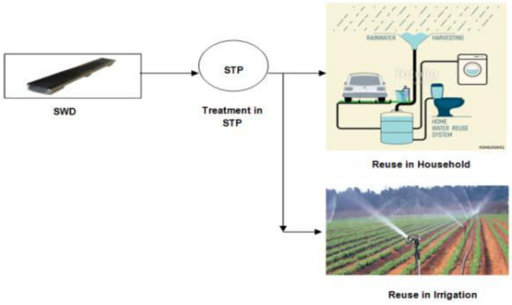

Storm water harvesting or storm water reuse is the collection, accumulation, treatment or purification, and storing of storm water for its eventual reuse. It differs from rainwater harvesting as the runoff is collected from drains or creeks, rather than roofs. Storm water runoff also picks up and carries with it many different pollutants that are found on paved surfaces such as sediment, nitrogen, phosphorus, bacteria, oil and grease, trash, pesticides and metals. Hence it is necessary to treat storm water in STP and after that treated storm water can be reused. The most popular use for harvested storm water is for irrigation, placing just a small portion of this with harvested storm water can result in a significant reduction in water costs. Also it can be used for routine activities like toilet flushing, cleaning, washing etc.

Rain Water Harvesting

Rainwater harvesting is a technology used for collecting and storing rainwater from rooftops, the land surface or rock catchments using simple techniques such as jars and pots as well as more complex techniques such as underground check dams. Rainwater harvesting is the accumulation and deposition of rainwater for reuse on-site, rather than allowing it to run off.

Uses of rain water: Recharge under ground water, Gardening, Livestock, Drinking purpose, for irrigation purpose

How to Harvest Rain Water: (i) Surface runoff harvesting: (ii) Roof top rainwater harvesting:

In just 3 Hours of Rain, Chennai Apartment Collects 1 Lakh Liters of Water

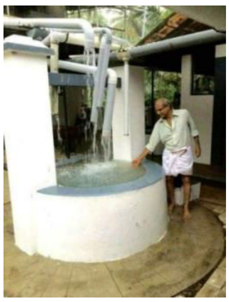

- In the state of Tamil Nadu, rainwater harvesting was made compulsory for every building to avoid ground water depletion.

- In Rajasthan, rainwater harvesting has traditionally been practiced by the people of the Thar Desert.
- At present, in Pune (in Maharashtra), rainwater harvesting is compulsory for any new society to be registered.

Sewage Treatment Plant (STP)

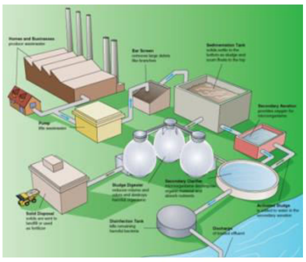

Sewage treatment is the process of removing contaminants from wastewater and household sewage, both effluents and domestic. It includes physical, chemical, and biological processes to remove physical, chemical and biological contaminants. Its objective is to produce an environmentally safe fluid waste stream and a solid waste suitable for disposal or reuse. The objective of sewage treatment is to produce a disposable effluent without causing harm to the surrounding environment, and prevent pollution.

Treatment scheme of STP

Sewage treatment generally involves three stages, called Primary, Secondary and Tertiary treatment

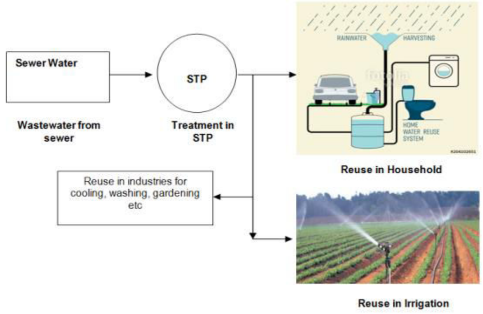

Reuse application of treated water of STP

The most popular use for treated water of STP is for irrigation and for routine household activities like toilet flushing, cleaning, washing etc.

Policy for Reuse of Treated Wastewater

Policy for Reuse of Treated Wastewater has been prepared by Narmada, Water Resources, Water Supply and Kalpsar Department, Government of Gujarat
The policy lays down following objectives:

- To reach minimum 80%coverage and collection of sewage in all municipal towns
- To reach a level of 100% treatment of collected sewage asper the prescribed standards
- To reuse at least 25% of total fresh water consumption from treated wastewater (TWW) within the time limit set under policy by every municipal body
- To reuse 70% of TWW by 2025
- To reuse 100% of TWW by 2030

Common Bio-Gas Plant

Biogas plant is an airtight container that facilitates fermentation of material under anaerobic condition. Other names given to this device are 'Biogas Digester', 'Biogas Reactor', 'Methane Generator' and 'Methane Reactor. Recycling and treatment of organic wastes (biodegradable material) through anaerobic digestion (fermentation) technology not only provides biogas as a clean and convenient fuel but also an excellent and enriched bio-manure. The BGP also acts as mini bio-fertilizer factory; hence some people refer it as 'Biogas fertilizer plant' or 'Bio-manure plant' Anaerobic digestion of organic matter produces a mixture of methane (CH_4) and carbon dioxide (CO_2) gas that can be used as a fuel for cooking, lighting, mechanical power and the generation of electricity, or a replacement for other fuels. Now a days Common Bio-gas Plant is constructed to minimize the individual construction cost of single plant. Common Bio-gas Plant having large capacity can work efficiently than a smaller Bio-gas Plant.

Municipal Solid Waste Management Facility

Effective Municipal Solid Waste Disposal is depend up on proper Municipal Solid Waste Management and Solid Waste management is nothing but:
1. Storage: For at source waste reduction, segregation of waste plays an important role by using different bin for category wise (plastic, electronic, stationery, etc) and nature wise (wet waste and dry waste) segregation of waste. Various dustbins are used for storage of waste like Galvanized steel dust bin, Paper sack and Public bins
2. Collection: House-to-house collection and - Collection from the public bins
3. Transport and Handling: Waste handling and separation involves activities associated with waste management until the waste is placed in storage containers for collection. Handling also encompasses the movement of loaded containers to the point of collection. Waste is transferred from a smaller collection vehicle to larger transport equipment.
4. Recycling: Recycling refers to the collection and refuse of waste materials such as empty beverage container. The materials from which the items are made can be processed into new products. Materials for recycling may be collected separately from general waste using dedicated bins.

5. Disposal and monitoring of waste materials: Dumping, Controlled Tipping or Sanitary Landfill, Incineration, Composting, Manure pits, Burial

Applications of Renewable Energy Infrastructure

Use of renewable energy like solar, wind and other renewable energy provisions; energy efficiency measures; provisions for heating and cooling; energy efficiency measures which includes:

Solar street lamps and external lighting fixtures

Solar panels (PVs) on roof tops of buildings

Example of Solar Cooker, Water Heater and proposed shielded flood lights

- Solar power should be used for the cooking purposes at central canteen at the common canteen for workers.

Example of renewable energy application for steam generation at Akshar Dham temple, New Delhi for community cooking

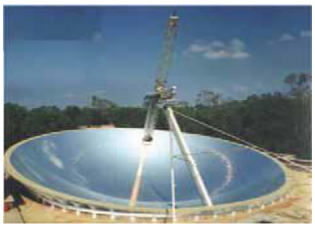

Solar Bowl at the solar kitchen- Community kitchen at Auroville

GREEN BELT DEVELOPMENT / LANDSCAPING / URBAN GARDENING

Green belt land is an open space around bigger cities. The main purpose of the green belt is to protect the land from urban sprawl, and maintain the designated area for forestry, agriculture as well as to provide habitat to wildlife. Green belt offers a number of benefits for population. Areas that are designated as green belt must not be built upon, however, that does not mean that no buildings can be erected in green belt. GREENBELT is a policy and land use designation used in land use/land cover planning. Greenbelt plays an important role for conservation of ecology. Greenbelt can be developed the form like garden, landscaping, open space etc.

Gujarat Cleaner Production Centre

ENVIS Resource Partner: Cleaner Production & Clean Technology

Supported by: Ministry of Environment, Forest & Climate Change, Government of India

Block No. 11 & 12, 3rd Floor, Udyog Bhavan, Sector-11, Gandhinagar-382017, Gujarat, India

Telephone: + 91 79 23244147, Email: gcpc-env@nic.in, gcpc11@yahoo.com, Website: www.gcpcenvis.nic.in

Partners in Green Skilling

ICAR-Central Arid Zone Research Institute
Jodhpur-342003, Rajasthan

Training manual developed by :
ENVIS Centre on Combating Desertification
(ENVIS Resource Partner)
ICAR-Central Arid Zone Research Institute
Jodhpur-342003, Rajasthan